प्रकाशक

श्री पुण्य सुवर्ण ज्ञानपीठ

कुन्दीगर भैरव का रास्ता,

जयपुर सिटी ।

प्रथम संस्करण

१००० प्रति

प्रकाशन व्यय

३११६-३७

मुद्रण व्यय—	९२४-००
कागज ३३॥) रीम—	८२३-५०
ब्लाक—	१५२-६९
,, मुद्रण व्यय—	१२६-००
चित्रनिर्माण व्यय—	७५-००
आर्ट पेपर—	१७९-८८
बाइंडिंग व्यय—	७७५-००
आवरण पृष्ठ—	६०-००
कुल व्यय—	३११६-३७

वैशाली प्रिंटिंग प्रेस, घी वालों का रास्ता जोहरी बाजार जयपुर.

प्रकाशकीय वक्तव्य

आज हमें 'पुण्य जीवन ज्योति' नामक जीवनचरित्र पाठकों के करकमलों में भेंट करते हुये अत्यधिक आनन्द हो रहा है। प्रस्तुत चरित्र परम विदुषी श्रीमती सज्जन श्रीजी म. सा. के अथक परिश्रम का परिणाम है। उन्होंने कई कठिनाइयों का सामना करते हुये इसका आलेखन किया है।

आशा है पाठकगण मननपूर्वक पढ़कर लेखिका के परिश्रम को सार्थक बनाएंगे। इस पुस्तक के प्रकाशन में पूज्य साध्वीजी महोदयाओं ने द्रव्य सहायता दिलवाकर हमारे प्रकाशन कार्य में अनुपम सहयोग दिया है। अतः हम विनम्र धन्यवाद अर्पण करती हैं।

निवेदक
शिखरूबाई जैन
मं-श्री पुण्यश्रीजी स्मारक ग्रन्थमाला

द्रव्य सहायक

१२०६) पूज्य प्रवर्त्तिनी श्रीमती ज्ञानश्रीजी म. सा. के उपदेश से
३०१) श्रीमती शिखरू बाई
२०१) से० श्रीमती गुलाबसुन्दरी बाफना कोटे वाले
२०१) श्रीमती मदनकुंवर बाई गोलेछा
१०१) श्रीमती मीनाबाई बैराठी
१०१) सेठ हमीरमल जी गोलेछा
१०१) श्रीमती सोहन बाई झाड़चूर हैदराबाद वाले
१०१) श्री जतनलाल जी डागा की धर्मपत्नी सौ. अनोप कंवर बाई
५१) श्रीमती कमलादेवी बांठिया
५१) सेठ अमरचन्दजी नाहर

२००) श्रीमती चम्पाश्रीजी म. सा. के उपदेश से फलोधी उपाश्रय
१०१) श्रीमती कल्याण श्री म. सा. के उपदेश से
१०१) श्रीमती विनय श्रीजी म सा. " "
१०१) श्रीमती लालश्रीजी म. सा. " "
५०) श्रीमती लब्धि श्रीजी म. सा. " "
१००) श्रीमती प्रीतिश्री जी म. सा. " "
५०) श्रीमती कस्तूर श्रीजी म. सा. के " "
५०) श्रीमती पवित्रश्रीजी म. सा. के " "
२५) श्रीमती इन्द्रश्रीजी म. व वसन्त श्रीजी म. सा. " "
५०) श्रीमती दत्तश्रीजी म. सा. " "
५०) श्रीमती रविश्रीजी म. सा. " "
७५) श्रीमती धर्मश्रीजी म. सा. के उपदेश से पिस्ताबाई वैरागन
१०१) श्रीमती रतिश्रीजी म. सा. रंभाश्रीजी म. सा. के उपदेश से जतन बाई वैरागन
१०१) श्रीमती रतिश्रीजी म. रंभाश्रीजी म. के उपदेश से पतासी बाई वैरागन
५१) श्रीमती उत्तमश्रीजी म. सा. के उपदेश से राधाबाई धमतरी वाले
२००) श्रीमती विज्ञानश्रीजी म सा. विचक्षण श्रीजी म. सा. के उपदेश से
१००) श्रीमती कुमुदश्रीजी म. सा. के उपदेश से
५१) श्रीमती सुव्रतश्रीजी म. सा. देवेन्द्रश्रीजी के उपदेश से
१००) श्रीमती हीराश्रीजी म. सा. माणक श्रीजी म. सा. के उपदेश से
१०१) श्रीमती रमणीक श्रीजी म. सा. के उपदेश से
१०१) श्रीमती वर्द्धनश्रीजी म. सा. के उपदेश से

योग—३०६८

विषय सूची

क्रमांक	विषय			पृष्ठांक
१.	लेखिका का परिचय	....	....	
२.	समर्पण	....	....	
३.	गुरुवर्यात्रयी का परिचय	....	....	
४.	भूमिका	....	....	
५.	आत्म निवेदन	....	....	
६.	मङ्गलाचरण	....	....	
७.	दिव्य विभूतियों की महत्ता	....	....	१
८.	जैन धर्म में महिलाओं का स्थान	....	....	७
९.	जन्म और बाल्यकाल	....	....	१६
१०.	विवाह	....	....	२५
११.	वज्रपात से अपूर्व लाभ	....	....	३०
१२.	सत्संगति का प्रभाव	....	....	३६
१३.	समुदाय का परिचय	....	....	४६
१४.	वैराग्य का उद्भव	....	...	५२
१५.	सङ्कल्प की दृढ़ता व आज्ञा प्राप्ति	....	....	५७
१६.	दीक्षा महोत्सव	....	....	७०
१७.	पवित्र जीवन के पथ पर	....	....	७७
१८.	विहार का महत्व	....	...	८७
१९.	शास्त्राध्ययन और शिक्षा	....	....	९२
२०.	बीकानेर का चातुर्मास	....	....	९६
२१.	फलोधी में दीक्षाएं	....	....	९९
२२.	जन्मभूमि में आगमन	....	....	१०६
२३.	फलोधी में कलशारोहण व उद्यापन		....	१०९
२४.	कुचेरा में अभूतपूर्व उपकार	....	....	११२

२५. महातपस्वी जी की दीक्षा १२०
२६. श्री सिद्धाचलादि तीर्थों की यात्रा १२६
२७. भावी प्रवर्त्तिनी की दीक्षा १३८
२८. सतीत्व का चमत्कार १५०
२९. भगवान् आदीश्वर की प्रतिष्ठा
में चमत्कार १६४
३०. प्रिय शिष्या का वियोग १७१
३१. श्री सिद्धाचल का संघ १९७
३२. श्रीमत त्रैलोक्यसागरजी म.सा.
की पुनीत प्रव्रज्या २०९
३३. दीक्षाओं की धूम २२८
३४. गोडवाड़ में उपकार २५९
३५. जोधपुर में पदार्पण २९६
३६. मालव भ्रमण और रतलाम
में शासन प्रभावना ३०२
३७. मक्षी तीर्थ की यात्रा ३१९
३८. वर्तमान आचार्यश्री का
महाभिनिष्क्रमण महोत्सव ३३९
३९. कोटा में चातुर्मास ३५७
४०. ग्वालियर में अभूतपूर्व प्रवेश ३६७
४१. राज परिवार को प्रतिबोध ३७२
४२. जयपुर में पदार्पण ३७८
४३. महा प्रस्थान ४००
४४. चरितनायिका के कुछ विशिष्ट
गुणों की झलक ४१७
४५. परिशिष्ट सं० १ .... ४२७
४६. परिशिष्ट सं० २ .... ४३३
४७. परिशिष्ट सं० ३ ....

वन्दे वीरम्

अभिनन्दनम्

जैनशासन तारिके ! गुणधारिके,
वर विमल धी,
काव्य प्रतिभावती हो तुम,
मुक्तवाक् कहते सुधी ॥
सरल स्वच्छ सुकरुण हृदया,
विनय विद्यागुणप्रदा,
साहित्य स्रष्ट्री साध्वी सज्जन
श्री जयतु सा सर्वदा ॥ १ ॥

—चरणरज

बालशिष्या स्वयम्प्रभाश्री

लेखिका का संक्षिप्त परिचय

प्रस्तुत ग्रन्थ की लेखिका विदुषी सरल स्वभावी आर्या श्रीमती सज्जन श्रीजी म. हैं। 'यथा नाम तथा गुण वाली लोकोक्ति बहुत कम पर चरितार्थ होती है, किन्तु आप पर तो पूर्ण चरितार्थ हो रही है। आप सज्जनता एवं गाम्भीर्य की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं। शीतल स्वभावी व शान्तचित है। आज मैं यहा इन्ही गुणो से प्रेरित हो इन का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयत्न कर रही हू।

बाल्यकाल

आपका जन्म जयपुर मे प्रसिद्ध जौहरी गुलाबचन्द जी साहब लूणिया के यहां उनकी धर्मपत्नी धर्मपरायण श्रीमती महताब बाई की कूक्षि ने वि. सं. १९६५ की वैशाख पूर्णिमा को हुआ। आपके माता पिता बहुत धर्मपरायण एवं शान्त प्रकृति हैं। आप इनकी उस समय इकलौती पुत्री थी। अतएव बचपन बहुत लाड़-प्यार से बीता। आपका परिवार धर्मप्रेमी एवं सुसंस्कृत था, अतः आप पर भी परिवार की छाप पडना स्वाभाविक ही था क्योंकि बालक की प्रारम्भिक पाठशाला परिवार ही होता है और उसके भले बुरे वातावरण का प्रभाव उस पर पड़ना स्वाभाविक ही है। यही हुआ भी, आपने श्राविका योग्य ज्ञान बचपन मे ही प्राप्त कर लिया।

शिक्षा

आपकी प्रारंभिक शिक्षा परिवार मे ही हुई और जो कुछ भावी जीवन के लिये सीखना था, विशेषतः परिवार मे सीखा और कुछ व्यावहारिक शिक्षा एक जैन पाठशाला मे प्राप्त की। इस प्रकार आपका शैक्षणिक जीवन प्रारम्भ हुआ।

गृहस्थाश्रम में प्रवेश

उस समय जहा स्त्री शिक्षा का अभाव सा था, वहां बालविवाह भी बहुत जोरो पर था और इस विषय मे संतान को अपने माता पिता पर

ही निर्भर रहना पड़ता था। ठीक यही इनके साथ भी हुआ। अनिच्छा होते हुए भी ग्यारह वर्ष की अल्पायु मे आपका विवाह दीवान श्री नथमल जी गोलेछा के पौत्र श्री कल्याण मलजी साहब के साथ बड़ी घूमधाम से हो गया। यह परिवार उस समय जयपुर रियासत का एक सुसंपन्न घराना था। इस प्रकार आपका गृहस्थाश्रम प्रारम्भ हुआ और आप एक योग्य व दक्ष गृहिणी बनी।

यद्यपि बाल्यावस्था मे साधु साध्वियों का पूर्ण सम्पर्क रहा, थोडो २ त्याग की भावना भी कभी कभी आती रही, किन्तु भोगावलि उदयवश आपको गृह कारागार मे फंसना ही पड़ा।

वैराग्योदय एवं सफलता

विवाह तो हो गया पर आपकी विचारधारा तेरहपन्थी सम्प्रदाय की ओर थी अतः धार्मिक संघर्ष का सामना करना पड़ा क्योकि श्वसुर पक्ष वाले स्थानक वासी सम्प्रदाय के अनुयायी थे।

विवाह के कुछ समय पश्चात् ही आपको अपनी भुवासास (प्रसिद्ध दीवान बहादुर सेठ केशरी सिंह जी सा. की धर्मपत्नी) के पास रहना पड़ा, वहां शुद्ध सनातन जैन श्वेताम्बर धर्म की आराधना होती थी। ये विभिन्नताए' देख कर आपको वास्तविकता की जिज्ञासाउत्पन्न हुई और आपने स्वयं शास्त्रों का अवलोकन करके निर्णय किया कि शास्त्रानुसार सही परम्परा 'सनातन जैन धर्म' मे ही है। वही पर मूर्तिपूजक संघ के साधु साध्यिो से तत्वचर्चा का भी सुयोग मिला। उपाध्याय सुमति सागरजी म. सा. आदि एवं विदुषी साध्वी रत्न श्रीमती ज्ञानश्रीजी म. सा. उपयोग श्रीजी म. सा. आदि वही विराजमान थे। शास्त्रों के पठन से आपकी वैराग्य भावना भी जाग्रत हो गई और आपने त्यागमय जीवन में प्रवेश करने की इच्छा व्यक्त की, किन्तु सधवा को दीक्षा की आज्ञा मिलना सहज नही होता। आपके ऊपर कई प्रतिबन्ध लगा दिये गये।

आप अपना जीवन त्याग एवं तपस्यामय ढंग से व्यतीत करने लगी और गार्हस्थ जीवन से सदैव उदासीन रह कर लक्ष्य प्राप्ति के प्रयत्न मे ही तत्पर हो गई। आपने गृहस्थावस्था मे ही 'नवपद आवलिका तप, वर्षितप आदि कई तपस्याए की। पतिदेव को भी प्रेरणा करती रहती थी। उन्होने भी प्रेरित होकर धर्म क्रियाओ मे मन लगाया। उपधान तप का आराधन दोनो ने साथ ही किया। आपकी भावना दिन २ वृद्धिगत हो रही थी। आपने नम्रतापूर्वक दीक्षा लेने की पतिदेव से आज्ञा मागी, पर मिली नही। पर आपने अवके दृढता का अवलम्बन लिया। वीर पुत्र आनन्दसागर जी म. सा. एवं मणिसागर जी म. प्र. ज्ञानश्रीजी म. सा. उपयोगश्रीजी म. सा. आदि के सत्प्रयत्नो से आपकी अभिलाषा पूर्ण हुई और तदनुसार वि. सा. १९९९ को आषाढ शु. २ को मुहूर्त मे भगवती दीक्षा हुई। इस प्रसंग पर कोटे वाले बाफना परिवार भी उपस्थित थे। उसी दिन सेठ कल्याणमल जी सा. ने अपने निवास स्थान पर गृह देरासर मे भगवान् ऋषभदेव की भव्य प्रतिमा की स्थापना कराई। आप प्र. श्रीमती ज्ञानश्रीजी म. सा. को शिष्या बनी।

साधु जीवन

अब आप आत्म साधना के पवित्र पथ पर आरूढ हुई। उसी चातुर्मास मे आपने साधु प्रतिक्रमण, लघु सिद्धान्त कौमुदी एवं अमर कोश का अभ्यास कर लिया।

चातुर्मास पश्चात् आप अपनी परमोपकारिणी बृहद् गुरुभगिनी श्रीमती उपयोग श्रीजी म. सा. आदि ६ साध्वीजी के साथ विहार करती हुई मारवाड़ पधारी। २००० के संवत मे फा. शु. ५ के दिन लोहावट मे पूज्य आचार्य देव श्रीमज्जिन हरिसागर सूरीश्वरजी म. सा. के कर कमलो से आपकी बड़ी दीक्षा हुई। बाद में आप पुनः जयपुर पधार गई और संस्कृत, प्राकृत, न्याय, काव्य आदि का अभ्यास करती रही।

वि.सं. २००२ का चातुर्मास आपने कोटा मे धूम-धाम से किया। सेठ साहब ने इस अवसर पर धार्मिक कार्यो मे दश सहस्रमुद्रा का सद्व्यय कर के पुण्योपार्जन किया।

वि. सं. २००५ मे आपने मासक्षमण का उत्कृष्ट तप किया। आपके साथ ही श्रीमती जिनेन्द्र श्रीजी म. ने और मैंने भी मासक्षमण किया था।

अट्ठानई महोत्सव, रथयात्रा, रात्रिजागरण, साधर्मी वात्सल्य आदि बड़ी धूम-धाम से हुए थे।

आप त्याग तपस्या के साथ जन जागरण एवं साहित्य साधना मे भी सदा तत्पर रहती है। विविध शास्त्रो का अध्ययन मनन आपके स्वभाव का एवं दिनचर्या का प्रमुख अंग है।

आपने अब तक 'पुण्य जीवन ज्योति' के अतिरिक्त कई छोटी मोटी रचनाएं की हैं। कुछ विधिविधानो 'ज्ञान पंचमी' उपधानदेववन्दन आदि का सम्पादन भी किया है। आपने प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन की 'विशारद' परीक्षा संस्कृत लेकर दी है। आपको संस्कृत, प्राकृत, गुजराती, राजस्थानी आदि कई भाषाओं का अच्छा ज्ञान है।

आप अच्छी लेखिका, वक्ता और कवयित्री है। स्वभाव से ही शान्त एवं सरल हैं, अभिमान तो आपको छू भी नही गया। गुरुसेवा, साहित्य सेवा आदि मे सदा अप्रमत्त भाव से संलग्न रहती है। आपको एक बाल-शिष्या-शशिप्रभा श्री म. हैं।

मुझ पर भी आपके अपरिमित उपकार है। अस्तु, शासन देव से यही विनम्र प्रार्थना है कि आपको दीर्घायु करें। आप चिरकाल आत्म साधना एवं जन कल्याण करती रहें।

चरणानुगता :—
कमला देवी जैन
सिद्धान्त साहित्य विशारद

जयपुर
चैत्र कृ. ७, २०१७

"जब मैं साध्वी सज्जन श्री जी म.से मिला"

–हेमचन्द्र सोजतिया, जयपुर

साधारणतया मेरा साधु सन्तों से वहुत कम सम्पर्क रहता है क्योंकि विद्यार्थी जीवन मे रहने के कारण समय कम मिलता है और जो समय मिलता है वह मित्रों में गुजर जाता है। अधिक समय नहीं हुआ, हमारे घर पर एक मित्र आये थे। उन्होंने इच्छा प्रकट की कि वे यहां ठहरी हुई साध्वियों के दर्शन करना चाहते हैं। यद्यपि मैं इस कार्य के लिए तैयार नहीं था, परन्तु उनके आग्रह ने मुझे उनके साथ जाने के लिए वाधित कर दिया। सबसे पहले हमारी मुलाकात कल्याण श्री जी महाराज से हुई। इसका प्रमुख कारण यह था करीब वीस साल पहले कल्याण श्री जी हमारे गांव (भानपुरा) में पधारी थीं और वे हमारे परिवार के सभी सदस्यों से परिचित हो गई थीं। धीरे धीरे यह मुलाकात बढ़ती गई। साधु संगति की सार्थकता मुझे उस दिन जान पड़ी जब कि मेरे छोटे भाई ने मुझे कहा कि भैया मुझे संस्कृत पढ़ा दो। मैं आश्चर्य में पड़ गया कि इसे संस्कृत कैसे पढ़ाऊं, क्योंकि मैंने कभी संस्कृत पढ़ी ही नहीं थी। परन्तु सहसा मुझे ध्यान आया कि साध्वियों में से अवश्य ही कोई न कोई संस्कृत की जानने वाली होंगी। प्रायः यह देखा जाता है कि जैन समाज के अधिकांश साधु साध्वियां संस्कृत में विशिष्ट योग्यता रखते हैं। इसी उद्देश्य

की पूर्ति के लिए मैं फिर साध्वियों के पास गया। पूछने पर मालूम हुआ कि सज्जन श्री जी म. संस्कृत की अच्छी ज्ञाता हैं।

शायद लोग किसी भी व्यक्ति की पहचान, उसकी वाणी, व्यवहार, सदाचार आदि से करते हैं जो कि एक लम्बे समय तक सम्पर्क में रहने के बाद ही हो सकती है। सच मानिये, जब मैंने शान्तिमय भव्य, तेजस्वी मुद्रा को देखा तो उनके आगे नतमस्तक हो गया। साध्वी जी की उच्च कोटि की विद्वता एवं निर्मल चरित्र ही उनकी योग्यता का परिचायक था। संयोग समझिये अथवा मेरा सद्भाग्य, मुझे एक संभ्रान्त, जैन धर्म को उन्नति के पथ पर अग्रसर करने वाली साध्वी श्री सज्जन श्री जी म. के सत्सङ्ग का अवसर मिला। इस प्रकार परिचय आगे बढ़ता गया। मुझे दिन पर दिन यह महसूस होने लगा कि ऐसी महान् विभूति का जीवन परिचय जानना चाहिए जिससे मैं ही नहीं वरन् समाज और देश भी लाभ उठा सके।

आपका जन्म वि० सं० १९६५ की वैशाख पूर्णिमा के दिन जयपुर के एक सम्पन्न परिवार में हुआ। आपके परिवार वाले धार्मिक प्रवृति के होने के कारण बचपन से ही आपको धार्मिक शिक्षा मिली। आपके परिवार वाले तेरापंथी धर्म के प्रति श्रद्धा रखते थे। इस कारण से शुरू में आपका सम्पर्क तेरापंथी साधु-साध्वियों से ही अधिक रहा। इस प्रकार बाल्यावस्था से ही आपका धार्मिक प्रवृति के प्रति काफी झुकाव रहा। धार्मिक शिक्षा

के साथ २ आपको साधारण शिक्षा भी मिलती रही ! बचपन में आपको पुस्तकें पढ़ने का बहुत शौक था जो कि आज तक भी वैसा ही बना हुआ है।

परिवार के सभी सदस्य रुढ़िवादिता से ग्रसित होने के कारण आपका विवाह भी जल्दी ही होना स्वाभाविक था । १२ वर्ष की अवस्था में ही आपका विवाह जयपुर के एक धनाढ्य परिवार में हुआ। परन्तु विवाह के पश्चात् आपके विचारों में एक विशेष परिवर्तन हुआ। विवाह के कुछ समय बाद ही आपको कोटा जाना पड़ा जहां कि आपको अपने निकट सम्बन्धी के यहां एक लम्बे समय तक रहना पड़ा। जहां आप रही थीं उनका धर्म मन्दिर का था। इस कारण से आपके विचारों ने भी मोड़ लिया। अगर इसे मोड़ की बजाय विचारों में क्रान्ति कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। आप इस धर्म के प्रति इतनी आकर्षित हुईं कि आपने इसको अपना भी लिया। कोटा से लौटने के पश्चात् आपने अपने पिताजी के घर पर अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया। इस छोटी सी अवस्था में ही आपने अनेक शास्त्रों को पढ़ डाला। इस प्रकार के व्यस्त अध्ययन ने आपको धार्मिक विचारों की ओर अग्रसर किया। धार्मिक प्रवृति की बहुलता के साथ ही साथ ससुराल की परिस्थितियों ने आपके विचारों में "दीक्षा की भावना" का विकास किया। यद्यपि मानव बहुत कुछ सोचता है परन्तु सोचे हुए कार्यों में सफलता प्राप्त कर लेना एक मुश्किल कार्य है। आप में भी दीक्षा की चेतना तो आ

गई परन्तु लेना आसान कार्य नहीं था क्योंकि परिवार के सभी सदस्यों के विचारों में "दीक्षा" दूर की चीज थी। परन्तु आत्मा की आवाज और विचारों की क्रान्ति को कौन रोक सकता था? २० वर्ष के लगातार संघर्ष तथा अनेक कठिनाइयों के झेलने के वाद, आपके ससुराल वालों को दीक्षा की अनुमति देने के लिए वाध्य होना पड़ा। वर्षों की भावना सफल हुई। पति आदि सर्व परिवार को त्याग कर आपने दीक्षा ली। वि० सं० १९९९ आषाढ शुक्ला २ को श्रीमती ज्ञान श्री जी म. तथा उपयोग श्री जी म. के कर कमलों से आपकी दीक्षा हुई। मन को शान्ति मिली और जीवन को एक आधार मिला।

उपरोक्त सभी चीजें तो आपके स्वयं के उत्थान के लिए हुई परन्तु आपके इस साधुत्व के जीवन से जैन समाज को जो लाभ हुआ वह आसानी से भुलाया नहीं जा सकता है। आप समाज तथा लोक सेवा में तत्पर हैं। आप एक अच्छी कवि व साहित्यकार भी हैं जो कि आपको उनके द्वारा लिखित पुस्तकें पढ़ने से मालूम हो जायगा। इसके साथ ही साथ आप भाषण देने में अत्यन्त कुशल हैं। आप कुशाग्र वुद्धि साध्वी हैं। यही कारण है कि आपका मस्तिष्क नवीन २ वातें विचार करता है जो नूतन और मौलिक होती हैं। आप वाल विवाह, दहेज प्रथा आदि के पक्ष में नहीं हैं। आप इस प्रकार की कुरीतियों को मिटाने में संलग्न है। आप समाज तथा लोगों के वीच भेद भाव की भावना को दूर करने के लिए प्रयत्नशील हैं। आप अपने भाषणों में चरित्र निर्माण के

पक्ष में विचार रखती रहती हैं। आपका विचार है कि मानव का विकास उसके चरित्र पर आधारित है। इसके साथ ही साथ आपने यह भी कहा कि मनुष्य को ऐसे कार्य नहीं करने चाहिए जो स्वयं की उन्नति तथा राष्ट्र के विकास में बाधक हो। देश के उत्थान के विषय में आपके विचार बड़े ही सरस तथा सुन्दर हैं। आपने कहा कि "प्रत्येक मनुष्य को सन्तोष के सिद्धान्त का पूर्णतया पालन करना चाहिए। अगर मनुष्य अपनी इच्छाएं बढ़ाता रहा और साधन इच्छाओं की गति के अनुसार नहीं बढ़े तो मानवीय विकास एक दुर्लभ कार्य होगा। इन्हीं उद्गारों के साथ आप मानव समाज को विकास के पथ की ओर अग्रसर करने में लगी हुई हैं।

सज्जन श्री जी म. के विषय में जितना लिखा जाय उतना ही कम है। उनके बारे में कुछ भी लिखने में, मैं तो अत्यन्त असमर्थ हूं, जो कुछ बन पड़ा है, वह उनके चरणों में समर्पित है। यही कामना है कि वे दीर्घायु हों और हम सबका कल्याण करती रहें।



।। वन्देवीरम् ।।

विदुषी साध्वीरत्न श्रीमती विनय श्री जी महाराज विरचित

महत्तरा आर्यारत्न श्रीमती पुण्य श्री जी म. सा. का

स्तुत्यष्टक

सुपुण्या पुण्यश्रीः प्रकृतिमधुरा या कृतीमती,
सुवृत्ताङ्गैः सम्यक् चरणकरणै रुत्तमगतिः ।
सुपुण्यानां जाता सतत बहुमान्या मतिमतां,
सदा पुण्यश्रीः सा सविनयहितात्मा विजयताम् ।।१।।

शुभां मन्दरालीमभिलषितदां यां जनयतो,
स्तथा कल्याणैक स्थितिमथ जगत्यां घटयतोः ।
गुणैः साम्यं रम्यं सपदिमरुमेर्वोः समभवत्,
सदा पुण्यश्रीः सा सविनयहितात्मा विजयताम् ।।२।।

उपादेयं हेयं किमिति पदमस्ति त्रिभुवने,
विवेकोत्सेकेन स्फुटमति हितं तत्प्रगदितम् ।
यया भारत्येव प्रियमपि च सत्यं लघु सतां,
सदा पुण्यश्रीः सा सविनय हितात्मा विजयताम् ।।३।।

सद्‌ङ्ग्यै गङ्गाया इव भवजतापं शमयितुं
परं पापापोहं जनयितु महो सज्जनगणः !
समग्रायाग्रे गे प्रकटमिह यस्यै स्पृहयति,
सदा पुण्यश्रीः सा सविनयहितात्मा विजयताम् ॥४॥

अहो स्फूर्जद्दर्पो हरिहर विधीनामपि मनो–
विजेता कन्दर्पश्चकित इव नश्यत्यनुदिनम् ।
सुदूरं यस्याः सुव्रतजनधुरायाः शुभमतेः,
सदा पुण्यश्रीः सा सविनयहितात्मा विजयताम् ॥५॥

गरीयांसं यस्याः प्रसृमरयशोराशिमभितः,
श्रितं श्रीशैरीशैः कविभिरिति दृष्ट्वा हिमगिरिः ।
जलस्रोतो दम्भाद् गलति जडरूपोप्य जनि च,
सदा पुण्यश्रीः सा सविनयहितात्मा विजयताम् ॥६॥

गुणा यस्या कान्ताः सुखदसुमनः संगनिरताः,
अगम्या दुश्छिद्रैरपि परिणताश्चापरिमिताः ।
रमन्ते मालायामिव खलुमिथः प्रेमनिहिताः,
सदा पुण्यश्रीः सा सविनयहितात्मा विजयताम् ॥७॥

यदीये सत्पट्टे विमलकपपट्टे स्थिरतरा,
सुवर्णश्रीर्मान्या विलसति वदान्या गुरुतया ।
हरन्ती दौर्गत्यं घनमसुमतां साम्प्रतमिह,
सदा पुण्यश्रीः सा सविनयहितात्मा विजयताम् ॥८॥

इत्थं सत्सुखसागरात्म भगवच्छ्रीमद्गणाधीशितुः,
पूज्या श्रीहरिसागरैक सुगुरोराज्ञामुयायिन्यसौ ।
पुण्यश्रीः परमप्रभावप्रथिता भव्यात्मभिः संस्तुता,
कुर्यात् सर्वगुणप्रधानविनयश्रीशोभमं जीवनम् ॥६॥

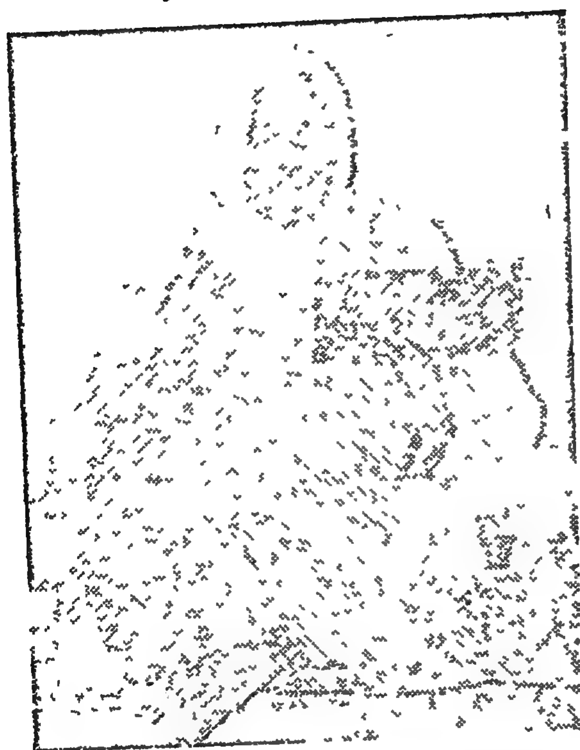


विदुषी साध्वीरत्न श्रीमती कल्याण श्रीजी महाराज रचित प्रवर्तिनी श्रीमती पुण्यश्रीजी महाराज की स्तुति

(उपजाति वृत्तम्)

पुण्यश्रियं मूर्तिमतीं सुपुण्यां हितैषिणीं पूज्यतमां जनानाम् ।
आर्या प्रधानां गुणसन्निधानां, पुण्यश्रियं नौमि गुरुं गुरूणाम् ।१।
सूर्यप्रभावत् सुमनस्समूहं, प्रकाशयतीं सुविकाशयंतीम् ।
महोदयां भूततमोपहर्त्रीं, पुण्यश्रियं नौमि गुरुं गुरूणाम् ॥२॥
सुखाम्बुधेस्साधुगुणाम्बुधेर्या. वेलेव सन्तापहरीं प्रकर्त्रीम् ।
सतां सुमान्यां प्रकृतौ वदान्यां, पुण्यश्रियं नौमि गुरुं गुरूणाम् ॥३॥
श्रीमन्महावीरजिनेश्वरस्य, विस्तारयन्तीह सुशासनं या ।
सरस्वतीवात्मगतिं ददानां, पुण्यश्रियं नौमि गुरुं गुरूणाम् ॥४॥
दीव्यत्सुवर्णश्रियमेव लोके, प्रबोधहेतुं स्वपदाश्रितां या,
प्रकुर्वतीं तां सुधियं समन्तात् पुण्यश्रियं नौमि गुरुं गुरूणाम् ॥५॥

इत्थं प्रवर्त्तकपदं दधतीं सुपूज्यां,
पुण्यश्रियं गुरुगुरुं य इह स्तुवन्ति ।
पुण्यश्रियं वरविलासयुता जनास्ते,
कल्याणकोटिकलितां कमजां लभन्ते ॥६॥



लेखिका की परमोपकारिणी गुरुवर्या
स्व. श्रीमती उपयोग श्रीजी म. सा.

ॐ

* सादर समर्पण *

जिन करुणा कोमल हृदया ने
गृहस्थी के गहरे गर्त्त से निकाल कर
भागवती प्रव्रज्या के पथ पर गतिशील बनाया।
सज्ज्ञान की संजीवनी दे कर जीवन में
स्फूर्ति, ज्योति और उत्साह का संचार किया।
जिन वात्सल्यमयी महानुभावा ने
वात्सल्य का निर्मल नीर सींच कर
शुष्क मानसवृक्ष को पल्लवित पुष्पित किया।
जिनकी सतत प्रेरणा से पुण्य जीवन ज्योति का निर्माण हुआ।

उन्हीं अनन्य उपकारिणी परमश्रद्धेया पूज्येश्वरी
गुरुवर्या दिवंगता श्रीमती उपयोग
श्री जी महाराज साहबा के
कल्याण कर कमलों में—

आपश्री की अकिंचन लघुतम शिष्या—

—सज्जनश्री

वन्दे वीरम्

श्री पुण्यगुण गीतिका गुच्छक

(राग—पीर पीर क्या करता रे तेरी पीर०)

हे पुण्यनाम ! गुणधाम ! तुम्हारी महिमा विश्व विख्यात ॥स्थायी॥
ज्यों शुभ्र ज्योत्स्ना शशि की, सुन्दर सुषमा है निशि की,
भगवति ! गुणगरिमा तुम्हारो है जिनशासनद्युति अवदात ॥हे०१॥
तुम त्रिजगवन्द्य सच्चरिता, तव महिमा है सुरसरिता,
तापनिवारिणी शान्तिकारिणी निर्मलकारिणी गात ॥हे०॥२॥
हिमगिरि सदृश उत्तुङ्गा, तुम महिमा अगम अलंघ्या,
मतिहीना दीना मुझसी क्योंकर कहो ? पहुँचे हे मात ! ॥हे०॥३॥
तव महिमा मुझ मन भाये, सुन सुन मानस हर्षाये,
विकसाते सरसिज श्रेणी को ज्यों स्वर्णिम पुण्य प्रभात ॥हे०॥४॥
बाला शिष्या अनभिज्ञा, सविनय मांगे सत्प्रज्ञा,
तुम ज्ञान विज्ञान प्रदायिनी हो यों कहता सज्जनव्रात ॥हे०॥५॥

[२]

(राग—शुद्ध सुन्दर अति मनोहर०)

पुण्य मन्दिर में विराजें पुण्यलोक विहारिणी ।
आपका है पुण्यपावन नाम सन्मतिकारिणी ॥स्थायी॥

खरतरगणे समुदित तरणिवत् तेजपुञ्जविराजिते !
महामहोदया पुण्यश्रीसा प्रवर्तिनी पदधारिणी ॥पु०॥१॥

प्राज्ञगणमान्ये ! सुधन्ये ! बोधजन्ये ! भगवती !
अज्ञ बाल अबोधजन में तत्वज्ञान प्रसारिणी ॥पु०॥२॥

वात्सल्यमयि मुद्रा दरशहित तरसते ये नेत्र हैं ।
दीजिये दर्शन हमें हे नयनमन सुखकारिणी ॥पु०॥३॥

आपके शिक्षा भरे उपदेश सुनने श्रवणयुग ।
हैं समुत्सुक द्रुत सुना दो देशना भवतारिणी ॥पु०॥४॥

हृदयहर्म्य मे वास करिये स्वर्गभूमि निवासिनी ।
आपकी पुण्यस्मृति ही सब पापताप निवारिणी ॥पु०॥५॥

पुण्यमय इन पादपद्मों में नमन स्वीकारिये ।
नमित शिर पर वरदकर रखिये सुगुण सञ्चारिणी ॥पु०॥६॥

हो उदय जय हो विजय हो तव विनेयावर्ग की ।
ज्ञानोपयोग प्रदायिनी 'सज्जन' जन मनोहारिणी पु०॥७॥

[३]

(राग—तुमको लाखों प्रणाम)

पूज्या पुण्या श्री सा जय हो जय जय हो ।
गुणवन्ता गुरुणी सा आपकी जय जय हो ॥ स्थायी ॥

धन्या गिरासर ग्राम मनोहर, जन्मभूमि तव पावन सुन्दर,
प्रकटीं जन मन सुखकर जय हो जय जय हो ॥पू०॥१॥

पुनीत पारख कुल अवतंसी, भक्त हृदय मानसर हंसी,
सतीगण शिर उत्तंसी जय हो जय जय हो ॥पू०॥२॥
खरतरगण नभ विमल तारिका, घोर अविद्या तिमिरवारिका,
धवलोज्ज्वल यशधारिका जय हो जय जय हो ॥पू०॥३॥
पुण्यश्लोका वन्दितलोका, भवजलतारण कारण नौका,
सुविहितव्रता विशोका जय हो जय जय हो ॥पू०॥४॥
देश विदेशे सतत विहारिणी, भारत महिलाजन उद्धारिणी,
जैनधर्म प्रचारिणी जय हो जय जय हो ॥पू०॥५॥
स्वर्वासिनि करो करुणादृष्टि, ज्ञानसुधा की अविरल वृष्टि,
ज्यों हो अभिनव सृष्टि जय हो जय जय हो ॥पू०॥६॥
जिन सिद्धान्त की विश्वविजय हो, शिष्यागण का अभ्युदय हो,
'सज्जन' बोले जय हो जय हो जय जय हो ॥पू०॥७॥

[४]

(राग—चिन्ताचूर चिन्तामणि०)

दर्शन गुरुणी सा अब तो दिखा दो मुझे।
ज्ञान अमृत का प्याला पिला दो मुझे ॥स्थायी॥
हो जैन शासन नायिका विज्ञायिका सद्धर्म की।
खरतरगणे प्रवरायिका, सुविधायिका सत्कर्म की ॥
सिद्धि पाने की सुविधि बता दो मुझे ॥द०॥१॥

पुण्याभिधाने ! पुण्यशीले ! पुण्यचरिते ! पुण्य धी।
पुण्यमयि ! साध्वीशिरोमणि अग्रणी कहते सुधी।
पुण्यकार्यों में शीघ्र लगा दो मुझे ॥टे०॥२॥

अज्ञानतम फैला हृदय में स्वात्म का नहीं बोध है।
आत्मशक्ति का इसी से हो रहा अवरोध है।
उज्ज्वल ज्ञान प्रकाश दिखा दो मुझे ॥टे०॥३॥

आप ही माता पिता गुरु आप ही सर्वस्व हो।
आप ही हृदयेश्वरी हो आपका वर्चस्व हो।
मांगे 'सज्जन' यह ही दिला दो मुझे ॥टे०॥४॥



ॐ

गुरुवर्या त्रिवेणी का संक्षिप्त परिचय

परमश्रद्धेया श्रीमती उद्योत श्री जी महाराज साहबा

आप फलोधी के श्री रत्नचन्द जी गुलेछा की धर्मपत्नी थीं। आपका नाम नानी बाई था। पति के निधन से आपका मन असार संसार से विरक्त हो गया। आपने मकसी पार्श्वनाथ की यात्रा का अभिग्रह कर लिया कि यात्रा करके ही घृत खाना। उस युग में न रेल थी और न मोटरें। आप ऊंट पर जोधपुर तक आईं। वहां पर पूज्यवर श्रीमान् राजसागर जी म. सा. की आज्ञानुयायिनी श्रीमती रूप श्री जी म. आदि के दर्शन किये। आप वैराग्यवासित हृदया तो थी ही। अब साध्वी जी का योग मिलने से ही आपने अपनी भावना को साकार बनाने का निश्चय किया। अपने तीन पुत्र, पांच पौत्र और तीन पौत्रियां आदि परिवार के स्नेह बन्धन से मुक्त होकर वि. सं. १९१८ की माघ शुक्ला ५ को आपने भागवती दीक्षा धारण की। आपकी अभिलाषा सूत्र पढ़ने की थीं, पर सत्गुरु का सयोग न मिलने से पूर्ण नहीं हो रही थी।

आप डेढ़ वर्ष जोधपुर में ही रहीं। १९२० का चातुर्मास अजमेर, १९२१ का किशनगढ़, १९२२ का फलोधी में किया, यहीं

पर आपको परम त्यागी खरतर नभोमणि श्रीमत्सुखसागर जी म. सा. का स्वर्ण संयोग मिला। आपने इन्हीं पून्येश्वर से डेढ़ वर्ष तक शास्त्रज्ञान प्राप्त किया। पूज्य सुखसागर जी म. सा. तो विहार कर गये, परआप गुरुवर्या के पास से अकेली ही आई थीं, अत. फलोधी में ही विराजीं। यहां पर आपने एक श्राविका को दीक्षित किया, जिनका नाम लक्ष्मी श्री जी दिया। मकसी तीर्थ की यात्रा बाद में की है और तब तक घृत का त्याग रहा। यात्रा का वृतान्त पुण्य जीवन ज्योति में है।

प्रातः स्मरणीया श्रीमती लक्ष्मी श्री जी म. सा.

ये फलोधी के ही जीतमलजी गुलेछा की सुपुत्री श्रीमती लक्ष्मीबाई थीं। इनका विवाह तत्रस्थ श्रीमान् श्रीकनीराम जी श्रावक के पुत्र सरदारमल जी के साथ हुआ। बाल विधवा हो जाने से आपको गृहस्थाश्रम न रुचा और आपने पूज्य सुखसागर जी म. सा. की देशना से प्रतिबोध पाकर वि. सं. १६२४ की मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी को पारमेश्वरी प्रव्रज्या स्वीकार कर ली। आपने उक्त पूज्यवर से शास्त्राध्ययन करके अच्छी योग्यता प्राप्त की थी। अब आप अपनी गुरुवर्या के साथ विचरने लगीं। १६२५ का चातुर्मास जयपुर किया और धर्मोपदेश देकर कइयों को धर्माराधन में तत्पर किया। चातुर्मास बाद विचरते हुए आपने पुनः फलोधी में पदार्पण किया। १६२६ का फलोधी, १६२७ का बीकानेर, १६२८ का पाटण यहां से श्री शत्रुंजय की यात्रा करके आपने १६२६ का चोमासा अहमदाबाद किया और १६३० का चातुर्मास किया नागौर में।

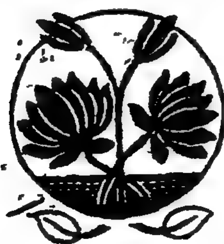
इस वर्ष पूज्येश्वर सुखसागर जी म. सा. आदि भी नागौर में पधार गये थे। शास्त्राध्ययन की सुविधा होने से दोनों पूज्यवर्याओं ने चार मास तक वहीं अध्ययन किया और एक श्राविका ने यहां दीक्षा ली, उनका नाम मग्न श्री जी हुआ।

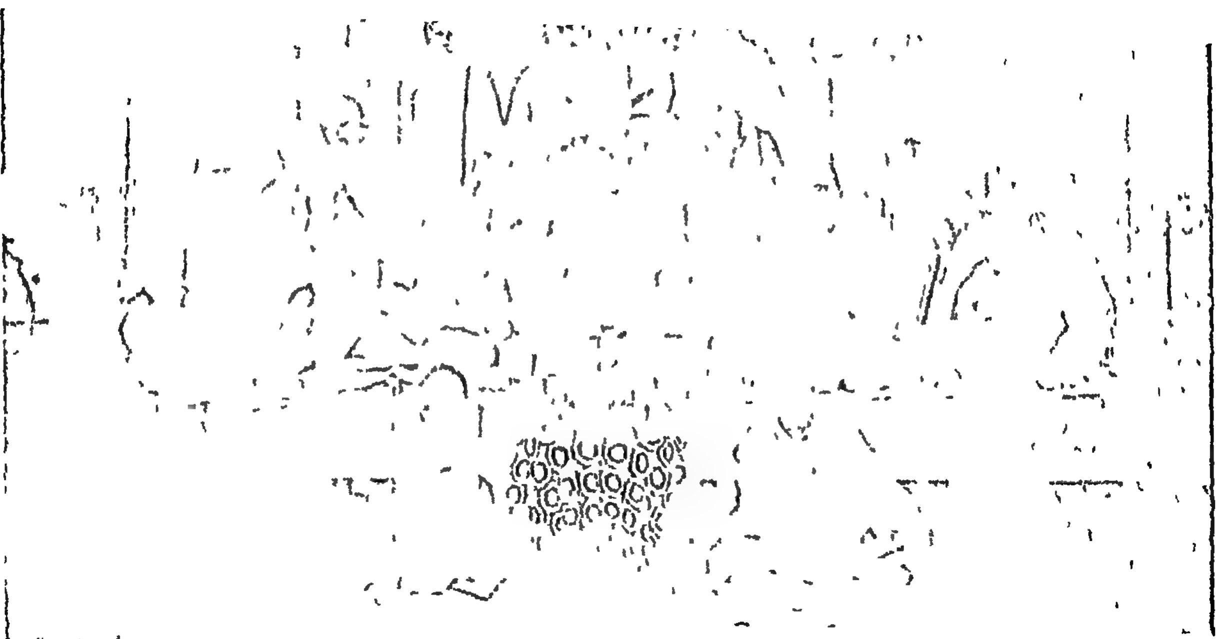
परमादरणीया पूज्यपाद श्रीमती मग्न श्री जी म. सा.

ये गच्छीपुरा के श्री शिवदानमल जी चतुर महता की सुपुत्री और नागौर के श्रीचन्द जी दफ्तरी की विधवा धर्मपत्नी थीं। इन्होंने वि. सं. १६३० की मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया को भागवती दीक्षा लेकर श्रीमती लक्ष्मी श्री जी म. सा. का शिष्यत्व स्वीकार किया। यही हमारी चरितनायिका की गुरुवर्या थीं।

इन तीनों ही पूज्यवर्याओं का जीवन तप, त्याग, संयम और ज्ञान से सुशोभित था।

इनमें केवल एक का ही चित्र उपलब्ध हुआ जो यहां प्रस्तुत है।





सम्प्रदाय का वर्तमान मुनि मण्डल श्री आचार्येन्द्र के साथ



भूमिका

प्रकृति द्वारा मानव को अन्य प्राणियों की अपेक्षा बहुत सी ऐसी विशेषताएं प्राप्त हैं जिस से अन्य प्राणियों की अपेक्षा उस का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है। साधना के द्वारा नर से नारायण बनने का उपाय और सद्भाग्य उसे ही प्राप्त है। इसी लिए प्रत्येक धर्म-संप्रदायों के विचारकों ने मानव जीवन को दुर्लभ और बहुमूल्य बतलाया है। जीवन का चरम लक्ष्य-मुक्ति की प्राप्ति, मानव ही प्राप्त कर सकता है। भौतिक सुख-साधन तो मानव की अपेक्षा देवों को अधिक प्राप्त है पर आध्यात्मिक जागरण उन्हें प्राप्त नहीं है, इसीलिए कहा जाता है कि देव भी मानव जीवन के लिए तरसते हैं, लालायित रहते हैं।

उत्तराध्ययन-सूत्र में भगवान महावीर ने चार बातें दुर्लभ बतलाई हैं—मनुष्यत्व, सत्शास्त्र या सदुपदेश श्रवण, श्रद्धा और संयम में वीर्योल्लास या साधना के मार्ग में प्रवृत्त होना। इस से एक महत्वपूर्ण तथ्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित होता है कि केवल मनुष्य के रूप में जन्म ले लेना ही विशेष महत्व की बात नहीं है, पर मनुष्यत्व अर्थात् मानवता को प्राप्त करना ही दुर्लभ है। हम देखते हैं कि अरबों–खरबों प्राणी मनुष्य देह को धारण किए हुए इस संसार में पशुओं से भी गया बीता जीवन बिताते हैं। तब हमें भगवान महावीर ने जो सब से पहले दुर्लभ

बात मनुष्यत्व या मानवता बतलाई है, इसकी सार्थकता और महत्ता स्वयं प्रकाशित है। पर मानवता का विकास हो कैसे ? यह एक महत्व का और गम्भीर प्रश्न है। इस का कुछ उत्तर तो हमें आगे बताई हुई दूसरी, तीसरी और चौथी दुर्लभताओं पर वचार करने से मिल जाता है। हम देखते हैं कि आस पास के वातावरण और संगति का प्रभाव हमारे पर बाल्यकाल से ही गहरे रूप में पड़ने लगता है। इस लिए सत्पुरुषों का दर्शन, उन के प्रति आदर भावना, उनके वचनों को श्रद्धा एवं ध्यान पूर्वक सुनना, जीवनोत्थान के लिए बहुत ही महत्व के साधन बतलाए गये हैं। सत्पुरुष सब समय और सब स्थानों में मिलने दुर्लभ होते हैं। अतएव उनके अनुभव—उद्‌गार और तत्व—साक्षात्कार जिन शास्त्र—सिद्धान्त आगम ग्रन्थों में संकलित हैं, उन शास्त्रों के श्रवण से भी जीवन को सत्प्रेरणा मिलती है। सत्पुरुषों के वचनों से मनुष्य अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य का बोध प्राप्त करता है और अपकृत्यों को छोड़ कर सुकृत्यों का आचरण कर वास्तविक मानव अर्थात् मानव—गुण सम्पन्न सच्चा मानव बनता है और साधना के मार्ग में आगे बढ़ते हुए नर से नारायण, मानव से महामानव, पुरुष से महापुरुष और आत्मा से परमात्मा का पद प्राप्त कर लेता है। जिस प्रकार केवल मनुष्य जन्म धारण ही महत्व की बात नहीं है, उसी तरह सत्पुरुषों के वचन और शास्त्रों का श्रवण भी उतना लाभप्रद नहीं। अतः उसके बाद श्रद्धा और संयमाचरण को उत्तरोत्तर दुर्लभ बताया है।

अर्थात् शास्त्र-श्रवण श्रद्धा पूर्वक हो और केवल सुन कर ही न रहा जाय, पर सत्पुरुषों या शास्त्रों ने जिन कामों का निषेध किया है, उन पापों से विरत होकर सद् अनुष्ठानों में प्रवृत्ति की जाय, तभी शास्त्र श्रवण सफल हो सकता है।

महापुरुषों का आदर्श चरित्र ही महान् प्रेरणादायक होता है, बिना कुछ कहे भी उनकी मुखाकृति और आचरण की छाप इतनी जबरदस्त पड़ती है कि मानव तो क्या पशु-पक्षी भी अपना वैर विरोध भूल कर एक अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करते हैं। उनका पावन चरित्र अन्य पुरुषों के उपदेशों से भी अधिक प्रभाव डालता है, क्योंकि चरित्र का बल एक महान् बल है। उन का मौन भी महान् उपदेश है, जिनकी कथनी और करणी एक समान है उन्हीं का प्रभाव अधिक और स्थायी पड़ता है। जिनकी करणी कथनी के समान नहीं है, उनका दिया हुआ उपदेश केवल वाणीविलास है। वह श्रोता के हृदय-स्थल को नहीं छू पाता, इसी लिए उनका प्रभाव भी स्थायी व गहरा नहीं हो पाता। महापुरुषों के संपर्क में आने और उन की सत्कृपा प्राप्त करने की तो बात ही अलग है, उनके नाम स्मरण और जीवन के पावन-प्रसंगों को पढ़ व सुनकर भी मनुष्य का काया-पलट हो जाता है। चिर कालीन पापी क्षण भर में महान् धर्मात्मा बन जाता है। जब मनुष्य महापुरुषों के जीवन के साथ अपने जीवन की तुलना करने लगता है तो अपनी वास्तविक स्थिति का उसे पता चलता है, उस का गर्व-खर्व हो जाता है और अपनी कमजोरियां उस

के सामने स्पष्ट हो आती हैं । वास्तविक जीवनोत्थान का पथ क्या है ? इसका उसके सामने चित्र-सा खिंच जाता है और कष्ट के समय धैर्य, शान्ति और सहनशीलता रखने की उसे प्रेरणा मिलती है । दृढ़ता के साथ सत्पथ में आगे बढ़ने का महान् संदेश महापुरुषों के चरित्र से मिलता है । इसलिए महापुरुषों के पावन चरित्र अधिकाधिक प्रचारित किये जाने आवश्यक हैं। प्रस्तुत ग्रंथ ऐसा ही एक प्रेरणादायक जीवन-चरित है जिसे पुनः २ पढ़ कर त्याग, वैराग्य, संयम, तप और साधना का बोध पाठ ग्रहण करना चाहिये । चरित्र-नायिका एक सती साध्वी और आदर्श नारी है और लेखिका भी उन्हीं की प्रशिष्या विदुषी साध्वी है। अतः इस जीवन-चरित का महत्व और भी बढ़ जाता है। एक पुण्यमयी साध्वी ने किस तरह स्व-पर कल्याण में अपना सारा जीवन लगा दिया और उसका कितना मधुर और महान् फल मिला, यह इस ग्रंथ से पाठक स्वयं जान सकेंगे। जिस प्रकार एक ज्योति से अनेक ज्योतियां प्रकट होती हैं उसी तरह आदर्श साध्वी-रत्न पुण्य श्रीजी ने अनेकों नारियों को संयम-पथ पर आरूढ़ किया, अपने धर्म संदेश से हजारों भावुक आत्माओं में दिव्य ज्योति प्रगट की, उसकी महत्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत ग्रंथ से मिलेगी। इस ग्रन्थ में प्रसंगवश और भी अनेक साधु व साध्वियों की जीवनी दे दी गई है। इस से उसका महत्व और भी बढ़ गया है।

स्त्री और पुरुष इस संसार-चक्र के दो पहिये हैं। दोनों का

अपना अपना महत्व है और दोनों के सम्मिलन से सृष्टि-चक्र सुचारु रूप से अनादिकाल से चलता आ रहा है। साथ ही उत्थान और पतन का चक्र भी प्रकृति के अटल नियमानुसार चलता रहता है। इसलिए विश्व के इतिहास में कहीं २ और कभी २ स्त्री जाति का महत्व बढ़ा है तो कभी पुरुषों का! जब जिसका महत्व बढ़ा उसने अपनी शक्ति का विकास किया और दूसरे को अपने अधीन बनाने का प्रयत्न किया। भारत में किसी समय स्त्री जाति अग्रगण्य थी, पर सहस्राब्दियों से पुरुष का महत्व इतना बढ़ता चला गया कि स्त्री-शक्ति का विकास रुक गया, अवरुद्ध हो गया। इसलिए वैदिक काल से हम पुरुषों की ही प्रधानता या विशेषता का वर्णन पाते हैं। स्त्री पुरुष के सदा अधीन रही है। वह अनुचरी रही, पर स्वामित्व नहीं प्राप्त कर सकी। सेवा, सहनशीलता, त्याग और तप ने उसकी आभा को प्रदीप्त किया पर समान या अग्रस्थान उसे नहीं मिला। समाज और धर्म दोनों क्षेत्रों में वह पुरुष के साथ रही, पर नेतृत्व और अग्रगण्य पद पुरुष ही पाता रहा।

जैन-तीर्थंकरों ने इस दिशा में एक क्रान्तिकारी कदम उठाया है। उन्होंने धार्मिक क्षेत्र में स्त्री को पुरुष के समान ही अधिकार दिए। अपने चतुर्विध संघ की स्थापना में साधु के साथ साध्वी और श्रावक के साथ श्राविका को भी उन्होंने समान स्थान दिया। उनके धर्म शासन में मोक्ष का भी दोनों को समान

अधिकार मिला। इस अवसर्पिणी काल में तो 'मल्ली' नामक एक राजकुमारी ने तीर्थंकर पद को भी सुशोभित किया है। स्त्री जाति को इतना महत्वपूर्ण स्थान देना जैन-धर्म की एक महान् विशेषता है। तीर्थंकरों के अनुयायी साधु और श्रावकों की संख्या से साध्वी और श्राविकाओं की संख्या करीब दुगनी थी। इस से धार्मिक क्षेत्र में स्त्रियों ने पुरुषों से भी अधिक संख्या में सफलता प्राप्त की। इस का स्पष्ट परिचय मिल जाता है। समस्त धर्म-ग्रन्थों का सम-भाव से अध्ययन करने वाले श्री सांवलिया विहारीलाल वर्मा ने 'जैन धर्म में स्त्रियों के समानाधिकार' नामक लेख में लिखा है कि भारत के महान् धर्म-प्रवर्तकों में एक भगवान महावीर स्वामी (समस्त तीर्थंकरों) ने ही स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार दिया। आप समझते थे कि संन्यास का, ब्रह्मचर्य का, मोक्ष का अधिकार समान रूप से स्त्री और पुरुष दोनों को है। अतः महावीर स्वामी की संघ-व्यवस्था अद्भुत थी। आपने प्रारम्भ से ही ४ संघ बनाये थे-१ मुनि, २ आर्यिका, ३ श्रावक, ४ श्राविका। चारों संघों का स्वतन्त्र और दृढ़ संगठन था, उन के नेता भी भिन्न भिन्न थे। इसी संघ-व्यवस्था ने आज भी जैन-धर्म को भारत में जीता जागता रखा। संसार के किसी धर्म के पुरुष साधु-संतों की तुलना में स्त्री-साध्वी संतनियों की संख्या कभी बराबर ही नहीं हुई, पर जैन धर्म में तो साधु-श्रावकों की संख्या से साध्वी और श्राविकाओं की संख्या दुगनी थी। यह सब महावीर स्वामी की उदार भावना का फल था जिसकी

तुलना संसार के धार्मिक तथा इतर इतिहास में मिलना दुर्लभ है।

महामना विनोबा जी ने लिखा है:—

"महावीर का इतिहास एक अद्भुत इतिहास है। महावीर संप्रदाय में स्त्री-पुरुषों का किसी प्रकार का कोई भेद नहीं किया गया है। पुरुषों को जितने अधिकार दिये गए हैं, वे सब अधिकार स्त्री को भी दिये गये थे। मैं इन मामूली अधिकारों की बात नहीं कहता हूं, जो इन दिनों चलता है और जिन की आजकल बहुत चलती है। उस समय ऐसे अधिकार प्राप्त करने की आवश्यकता भी महसूस नहीं हुई होगी। परन्तु मैं तो आध्यात्मिक अधिकारों की बात कर रहा हूं। पुरुषों को जितने आध्यात्मिक अधिकार मिलते हैं उतने ही स्त्रियों के भी अधिकार हो सकते हैं। इन आध्यात्मिक अधिकारों में महावीर ने कोई भेद बुद्धि नहीं रखी, जिसके परिणाम स्वरूप उनके शिष्योंमें जितने श्रमण थे, उनसे ज्यादा श्रमणियां थीं। वह प्रथा आज तक जैन धर्म में चली आयी है। आज भी जैन संन्यासिनियां होती हैं। जैन धर्म में यह नियम है कि संन्यासी अकेले नहीं घूम सकते हैं। ऐसे संन्यासी और संन्यासिनियों के लिए नियम है। तदनुसार दो-दो बहनें हिंदुस्तान में घूमती हुई देखते हैं। बिहार, मारवाड़, गुजरात, कोल्हापुर, कर्नाटक और तामिलनाड की तरफ इस तरह घूमती हुई बहनें देखने को मिलती हैं, यह एक बड़ी विशेषता माननी चाहिए।

महावीर के पीछे चालीस साल के बाद गौतम बुद्ध हुए, जिन्होंने स्त्रियों को संन्यास देना उचित नहीं माना। स्त्रियों को

संन्यास देने में धर्म-मर्यादा नहीं रहेगी ऐसा अन्दाजा उनको था, लेकिन एक दिन उनका शिष्य आनन्द एक बहन को ले आया और बुद्ध भगवान के सामने उसे उपस्थित किया और बुद्ध भगवान से कहा कि 'यह बहन आपके उपदेश के लिए सर्वथा पात्र है, ऐसा मैंने देख लिया है। आप का उपदेश अर्थात संन्यास का उपदेश इसे मिलना चाहिये। तो बुद्ध भगवान ने उसे दीक्षा दी और बोले कि हे आनन्द, तेरे आग्रह और प्रेम के लिए यह काम मैं कर रहा हूं। लेकिन इस से अपने संप्रदाय के लिए एक बड़ा खतरा मैंने उठा लिया है? ऐसा वाक्य बुद्ध ने कहा और वैसा परिणाम हाथ में आया भी। बौद्धों के इतिहास में बुद्ध को जिस खतरे का अंदेशा था, वह पाया जाता है, यद्यपि बौद्ध धर्म का इतिहास पराक्रमशाली है। उस में दोष दिखते हुए भी देश के लिए अभिमान रखने लायक है। लेकिन जो डर बुद्ध को था, वह महावीर को नहीं था, यह देख कर आश्चर्य होता है। महावीर निडर दीख पड़ते हैं। इस का मेरे मन पर बहुत असर है। इसलिए मुझे महावीर की तरफ़ विशेष आकर्षण है। बुद्ध की महिमा भी बहुत है। सारी दुनियां में उनकी करुणा की भावना फैल रही है, इसीलिए उन के व्यक्तित्व में किसी प्रकार की न्यूनता होगी, ऐसा मैं नहीं मानता हूं। महापुरुषों की भिन्न २ वृत्तियां होती हैं, लेकिन कहना पड़ेगा कि गौतम बुद्ध को व्यावहारिक भूमिका छू सकी और महावीर को व्यावहारिक भूमिका छू नहीं सकी। उन्होंने स्त्री पुरुषों में तत्वतः भेद नहीं रखा।

वे इतने दृढ़प्रतिज्ञ रहे कि मेरे मन में उनके लिए एक विशेष ही आदर है। इसी में उनकी महावीरता है।

इसी तरह गुजरात के एक नामी जैनेतर विद्वान् के उद्‌गार कहीं पढ़े थे कि जैनधर्म ने स्त्रियों को पुरुषों के समान ही धार्मिक अधिकार देकर स्त्री शक्ति का महान् आदर किया है।

वास्तव में ही स्त्री शक्ति का समुचित विकास मानव समाज के लिए बहुत ही लाभदायक है क्योंकि बालक पर प्रारम्भिक और सब से अधिक प्रभाव माता का ही पड़ता है। यदि वह सदाचारिणी और ज्ञानवती हुई तो बालक के जीवन को भी उस से सत्प्रेरणा मिलेगी और बाल्यकाल के संस्कार यदि अच्छे पड़े तो भावी जीवन में भी उनका अच्छा असर रहेगा। अनेक सती साध्वी स्त्रियोंने तो पुरुषों को पतन से बचाया है और धर्म पथ मे लगाया है। बाहर के व्यापारादि में पुरुष व्यस्त रहते हैं। अतः घरेलू जीवन की सुख-शान्ति और समृद्धि, शिक्षित और सदाचारिणी स्त्रियों पर ही निर्भर है। जैन धर्म की साध्वियों ने तो स्त्री-जीवन पर बड़ा गहरा प्रभाव डाला है। जैन घरों में जो धार्मिक संस्कार और नैतिक जीवन की प्रधानता रही उसमें इन साध्वियों का भी बहुत बड़ा हाथ रहा है। प्रस्तुत चरित्र की चरितनायिका 'पुण्य श्रीजी' ने कितना व्यापक धर्म-प्रचार किया, इसका परिचय प्रस्तुत ग्रंथ से पाठकों को मिल जायगा।

आदर्श चरित्र, महान् तेजस्वी प्रतिभा एवं पुण्यमूर्ति पुण्य श्रीजी का दर्शन करने का सौभाग्य मुझे अपने बाल्य जीवन में

उनकी जीवन संध्या के समय, जयपुर में मिला था। सं० १९७६ में मैं अपने बड़े भ्राता अभयराज जी के पास जयपुर में था। तब मेरी आयु केवल ९ वर्ष की थी। भाई अभयराज जी अस्वस्थ होने से वहां वैद्यवर लक्ष्मी रामजी से इलाज करवा रहे थे। मैं अपने पूज्य पिताजी व माताजी के साथ वहां गया हुआ था। माताजी के साथ मैं प्रायः उपाश्रय में जाता था, उसी समय पुण्यश्रीजी म. के दर्शन हुए थे। उनके स्वर्गवास के समय तथा उपाध्याय कवीन्द्र सागर जी की दीक्षा के समय यथास्मरण मैं वहीं था। साधु-साध्वियों की उस समय की वहां की चहल पहल आज भी मेरी धुंधली स्मृति में है। सचमुच ही वे पुरुष भाग्यशाली होंगे जो पुण्यश्रीजी जैसी महान् आत्मा के सत्संग में रहे होंगे। वर्तमान में खरतरगच्छ में जो साध्वियों का इतना बड़ा समुदाय है वह उनके ही महान् पुण्य का परिणाम है। उनके दीक्षित होने के पूर्व जहां इनी-गिनी ही साध्वियां थीं, वहां आज उनकी संख्या १५०-२०० के लग-भग की है। खरतरगच्छ में साधु समुदाय बहुत थोड़ा है। इसलिए इन साध्वियों के कारण ही बहुत से धर्म क्षेत्र फल-फूल रहे हैं। कई साध्वियां बड़ी विदुषी, व्याख्यानदात्री, प्रभावशालिनी हैं।

इस पुण्य जीवन ज्योति ग्रन्थ की लेखिका विदुषी साध्वी सज्जन श्रीजी भी एक आदर्श साध्वी हैं, जिनका जीवन ज्ञानोपासना में संलग्न है। मैं आर्या-रत्न विचक्षण श्रीजी आदि से

बराबर निवेदन किया करता हूं कि हमारी साध्वियों में वक्तृत्व कला का तो अच्छा विकास हुआ है, पर साहित्य-सृजन में अभी वे वाञ्छित प्रगति नहीं कर पाई हैं। इसलिए पढ़ी लिखी साध्वियों को प्राचीन ग्रन्थों के अनुवाद, विवेचन और स्वतन्त्र रचना करने के लिए अधिकाधिक प्रेरणा दी जाय। अतः जब २ मैं जयपुर जाता हूं तो सज्जनश्रीजी को ग्रन्थनिर्माण में संलग्न देख कर बड़ी प्रसन्नता का अनुभव करता हूं। इस ग्रन्थ के छपने से पूर्व इसकी पांडुलिपि भी मुझे इन्होंने दिखलाई थी और सुझाव मांगे थे। मुझे उनकी लेखन शैली बहुत सुन्दर लगी। इस बार जब मैं गया तो उन्होंने 'वह ग्रन्थ छप गया है' बतलाया और उसके छपे हुए फर्मे मुझे देते हुए आज्ञा दी कि इस क भूमिका लिख दीजिए इस पर मैं बड़े संकोच में पड़ गया। बड़े २ आचार्यों और विद्वानों के रहते हुए मुझ जैसे साधारण व्यक्ति को वे इतना सम्माननीय स्थान क्यों दे रही हैं ? पर उनका आग्रह टाल नहीं सका और योग्यता न होते हुए भी उनकी आज्ञा का पालन करना अपना कर्तव्य समझ कर कुछ श्रद्धा के फूल इस भूमिका के रूप में चढ़ा रहा हूं।

बीकानेर

वसन्त पंचमी, २०१७

अगरचन्द नाहटा

वन्देवीरम्

आत्मनिवेदन

अनन्त सुख की परिशोध में प्रयाण करने वाले भव्य प्राणियों को एक पथप्रदर्शक की अनिवार्य परमावश्यकता होती है, क्योंकि अनन्त सुख के स्थान का पथ अत्यन्त विकट है और अनादिकाल से मोहघूर्णित दशा में निवास करने वाले प्राणी उस अज्ञात पथ पर चलने को सहसा कटिबद्ध भी नहीं होते। उनकी मोहतन्द्रा तत्वज्ञान के प्रकाश में टूटती है और वे आत्म भान कराने वाले महात्मा के नेतृत्व में संयम के पवित्र पथ पर श्रद्धा का संवल लेकर चल पड़ते हैं।

भारतवर्ष की वसुन्धरा को ऐसे महापुरुषों व सती साध्वी सन्नारियों को जन्म देने का गौरव सम्प्राप्त है, जिनके पवित्र जीवन की ज्योति आज भी पथभ्रान्तों का मार्गदर्शन करती है, जिनकी दार्शनिक उपलब्धियां, अनुभव प्राप्त विशिष्ट ज्ञान और मङ्गल प्रवचन विश्व के कल्याण का पथ प्रशस्त कर रहे हैं, जिनके कारण आर्यभूमि की कीर्त्ति दिगदिगन्त में व्याप्त है। संसार की अगणित विभीषिकाओं से भयत्रस्त मानवता त्राहि त्राहि करती हुई जिनके अमर सिद्धान्तों-अहिंसा, सत्य और संयम की शरण लेने को उत्सुक है।

ऐसी ही एक महान् आत्मा का पुनीत जीवन प्रवाह गिरासर की पुण्यभूमि से निःसृत होकर भारत के विभिन्न भागों में प्रवहमान हुआ और अनेक भव्यों की आत्मभूमि को समृद्ध बनाता हुआ जयपुर में आकर समाप्त हो गया।

नितान्त त्याग, वैराग्य और ज्ञान की उज्ज्वल ज्योति से दीप्त था इन महा श्रमणी का अद्भुत जीवन !

यह जीवन आत्म साधना का निर्मल आदर्श है। ऐसे महान् आदर्श जीवन को शब्दबद्ध करने के मेरे इस कार्य को अनधिकार चेष्टा ही कहना उपयुक्त है, क्योंकि न तो मैंने विशिष्ट शास्त्रों का अध्ययन किया है और न लेखन कला में ही निपुण हूं। तथापि मैंने अपनी पूज्येश्वरी गुरुवर्या महोदयाद्वय की कृपा प्रसादी स्वरूप पाथेय लेकर इस दुर्गम पथ पर चलने का साहस किया है। इसमें स्वनामधन्या पूज्येश्वरी प्रातः स्मरणीया श्रीमती पुण्यश्रीजी महाराज साहबा का पवित्र जीवन लिखा गया है।

आज के इस जड़वाद के युग में चकाचौंध बनी हुई आर्य जनता के आन्तर चक्षु निमीलित से हो रहे हैं। भौतिक विज्ञान की उपलब्धियों ने मानव को दानव बनने की प्रेरणा दी है। मानव की बुद्धि इतनी बाह्य बन गई है कि उसकी दृष्टि में केवल अधिकार, भोग और अर्थ ही महत्वपूर्ण रह गये। मानवीय गुण-दया संयम, सहानुभूति आदि की जीवन में वह आवश्यकता ही नहीं समझ रहा। आज की अश्लील और विकारोत्पादक मनोरञ्जक

सामग्री-सिनेमा, क्लब और यथार्थवाद के नाम पर लिखा गया साहित्य आर्य संस्कृति के मूल पर ही कुठाराघात कर रहे हैं। धर्मनिरपेक्ष सरकार भी भारत की त्याग प्रधान आध्यात्मिक संस्कृति की ओर से पराङ्मुख होकर आमिषाहार को प्रोत्साहन दे रही है और सरकारी तौर पर मत्स्योद्योग, कुक्कुटशालाएं तथा मशीनरीयुक्त आधुनिक वधशालाएं (स्लाटर हाउस) बन गई हैं तथा बन रही हैं। आध्यात्मिक संस्कृति नाम शेष होती जा रही है, सात्विक आहार विहार और विचारों को प्रायः स्थान ही नहीं मिल पा रहा। ऐसी स्थिति में सभी के लिए मानस वृत्तियों का ऊर्ध्वीकरण, अन्तस्तत्व का प्रकटीकरण और जीवन में नैतिकता का आचरण अनिवार्य है। आध्यात्मिक संस्कृति का पुनरुत्थान हुए विना सुख शान्ति केवल स्वप्न ही है। विश्वशान्ति भी आध्यात्मिक जागृति विना असम्भव है। केवल भौतिक उन्नति से सुख शान्ति की आशा रखना मृगमरीचिका है। आध्यात्मिक विश्वासों के विना मानव की पशुता विकसित होकर अनर्थ की परम्पराओं को बढ़ाती है।

आज के युग में आध्यात्मिक भावनाओं को बल देने वाले साहित्य की अनिवार्य आवश्यकता है। 'पुण्य जीवन ज्योति' का आलेखन भी इसी उद्देश्य को सम्मुख रख कर किया गया है। पूज्यपाद स्व. गुरुवर्या श्रीमती पुण्य श्रीजी म. सा. का जीवन उन्नत विचारों से व आचारों से परिपूर्ण था। वे भव्य आध्यात्मिक

भावनाओं की मूर्त्त रूप थीं। उन महाश्रमणी का जीवन शासन-सेवा, त्याग, तप आदि की उज्ज्वल ज्योति से दीप्त था। पवित्र ब्रह्मतेज से उनका आनन जगमगाता रहता था। परोपकार की पुनीत सौरभ से सुवासित उनकी जीवनी प्रत्येक के लिए आदरणीय अनुकरणीय और आचरणीय है।

उन आदर्श आर्यारत्न के गुणगान करके स्वात्मा को कृतकृत बनाने के लिए ही मैंने इसकी रचना की है। इसका पठन मुमुक्षु भव्यात्माओं को अपूर्व साधनाबल प्रदान करेगा व उन्हें मुक्ति पथ पर चलने की तीव्र भावना उत्पन्न होगी। ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

यह चरित्र संस्कृत महाकाव्य रूप में आज से अर्द्ध शताब्दि पूर्व आर्या शिरोमणि पूज्येश्वरी स्वर्गीया श्रीमती सुवर्ण श्रीजी महाराज साहिबा ने जोधपुर वास्तव्य आशुकविरत्न पं. नित्यानन्द शास्त्री महोदय से संस्कृत महाकाव्य रूप में निर्माण कराया था। किन्तु वह प्रकाशित ही नहीं हो सका था और दुर्भाग्यवश अप्राप्य भी हो गया था।

उक्त पंडितजी किसी कार्यवश जयपुर आये थे। उनसे पूछने पर ज्ञात हुआ कि जोधपुर में एक लेखक के पास उसकी प्रतिलिपि है, आपको आवश्यकता हो तो मूल्य देकर ले सकते हैं। यह जान कर मुझे ऐसा परमाह्लाद हुआ मानों खोई हुई निधि उपलब्ध हो गई हो।

पूज्यवर्या प्रवर्त्तिनीजी महोदया की एवं स्व. श्रीमती उपयोगश्रीजी महाराज साहबा की आज्ञा से सुश्राविका श्रीमती शिखरू बाई ने डेढ़ सौ रुपये में इसे खरीद कर मुझे दिया। आद्योपान्त अवलोकन करने पर ज्ञात हुआ कि चरित्र संस्कृत की शब्द छटा से युक्त है परन्तु अधूरा है। उसमें केवल वि० सं० १९६७ तक की घटनाएं ही अंकित हैं। इस अपूर्ण चरित्र को प्रकाशित करना कुछ उचित नहीं लगा। दूसरे इसका उपयोग केवल संस्कृत भाषा विज्ञ ही कर सकते थे। मेरा विचार हुआ कि इसे आधुनिक शैली से राष्ट्रभाषा हिन्दी में लिखकर प्रकाशित किया जाय तो उत्तम हो। स्व. परमोपकारिणी गुरुवर्या श्रीमती उपयोग श्रीजी म. सा. के सम्मुख मैंने अपनी भावना व्यक्त की। उन्होंने इसे पसन्द किया और लिखने का सत्परामर्श दिया, साथ ही सतत प्रेरणा भी करती रहीं। इसी बीच वि० सं. २०१५ में व्याख्यान भारती जैन कोकिला विदुषी आर्यारत्न पूज्यवर्या श्रीमती विचक्षण श्रीजी म. सा. का भी पूज्येश्वरी प्रवर्तिनीजी साहबा के दर्शनार्थ जयपुर में पदार्पण हुआ और मेरे सौभाग्य से डेढ़ वर्ष पर्यन्त उनका यहां निवास रहा। संस्कृत चरित्र के अनुवाद की एक कापी उनके संग्रह में से भी प्राप्त हुई, पर उसकी भाषा ठीक नहीं थी और वह केवल अनुवाद मात्र था। उसे भी प्रकाशित करने का किसी का मन नहीं हुआ।

दो वर्ष पूर्व मैंने इसका लेखन कार्य आरम्भ कर दिया था। किन्तु घटनाओं की असम्बद्धता और अपूर्णता जो उक्त संस्कृत

चरित्र में थी- उनका सिल-सिला जोड़ने में काफी कठिनाइयां समुपस्थित हुईं और मैं असमञ्जस में पड़ गई, पर कार्य जो आरम्भ कर दिया था उसे पूर्ण तो करना ही चाहिये। समुदाय की वयोवृद्धा पूज्या साध्वी वर्ग-पूज्येश्वरी प्रवर्तिनीजी साहब, श्रीमती चम्पा श्रीजी म. सा. विदुषी रत्न श्रीमती विनय श्रीजी म. सा. एवं कल्याण श्रीजी म. सा तथा स्वंगु श्रीमती उपयोग श्रीजी म. सा. आदि के पूछ २ कर नोट लिख लिए गये। कई नवीन घटनाएं ज्ञात हुईं तथा अप्राप्य नौ वर्ष का वृत्त भी ज्ञात हो गया।

इस प्रकार मेरा उत्साह वृद्धिगत हो गया, और लेखन व मुद्रण कार्य साथ ही चलने लगा।

लिखे हुए को दूसरी बार देखने का भी समय नहीं मिला। और मेरा यह प्रथम प्रयास है अतः त्रुटियां रह जाना स्वाभाविक है।

स्व. पूज्यवर्या श्रीमती उद्योत श्रीजी म. सा. के स्वर्गवास के संवत् तिथि प्रयत्न करने पर भी उपलब्ध नहीं हो सके। संस्कृत चरित्र और प्राप्त सामग्री में थे नहीं। फलोधी के वयोवृद्ध जनोंसे भी पूछा गया, सभी ने अनभिज्ञता प्रकट की। स्व. सूरीश्वर श्रीमज्जिन हरिसागर जी म. मा. की दीक्षा का वृत भी संस्कृत चरित्र में न होने से नहीं आ सका। उसे फुट नोट में देना पड़ा है। और भी कई त्रुटियां रह गई होंगी। आशा है विद्वद्जन हंसक्षीर न्याय अपना कर अपनी उदारता का परिचय देंगे।

प्रकाशन कार्य में संमुदायस्थित पूज्या आर्यागण ने सहायता दिलवा कर अपने कर्त्तव्य के प्रति सजगता का आदर्श उपस्थित किया है, वह अत्यन्त आदरणीय, अनुकरणीय एवं प्रशंसनीय है। मैं उन सभी के प्रति सभक्ति कृतज्ञता प्रकट करती हूं जिन्होंने मुझे इस कार्य में सहायता और प्रेरणा करके मेरे उत्साह को बढ़ाया है।

बाल ब्रह्मचारिणी विदुषी साध्वीवर्या श्रीमती चन्द्रकला श्रीजी ने 'पुण्य पुष्पोद्यान के पुष्प, नामक तृतीय परिशिष्ट लिख कर दिया अतः वे भी धन्यवादार्ह हैं।

बड़े दुख का विषय है कि—

पुस्तक प्रकाशन से पूर्व परमपूज्य प्रखरवक्ता वीर पुत्र श्रीमज्जिन आनन्दसागर सूरीश्वरजी म. सा. का स्वर्गवास हो गया। समुदाय की व शासन की भारी क्षति हुई है। पुस्तक लेखन व मुद्रण काल में पूज्यवर विद्यमान थे अतः पुण्य जीवन ज्योति में 'वर्तमान आचार्य' लिखा गया है। अब समुदायधीश पूज्येश्वर उपाध्याय महोदय 'यथा नाम तथा गुण कविशिरोमणि श्रीमान् कवीन्द्रसागरजी म. सा. हैं। पाठकों को ध्यान में रहे इसलिए सूचित करना आवश्यक समझा है।

जैन समाज के सुप्रसिद्ध साहित्य सेवी श्री अगरचन्दजी-नाहटा ने इसकी भूमिका लिखी है अतः वे भी धन्यवाद के पात्र हैं। अलंविस्तरेण।

वीर शासन सेविका—
सज्जनश्री



मंगलाचरण

नन्दन्तु नाभयेमुखा जिनेन्द्राः
श्री पुण्डरीकादिमहा गणेशाः ।
दादाभिधाना जिनदत्तमिश्राः
पूज्येश्वराः श्री सुखसागराद्याः ॥१॥

श्रीवर्द्धमानाननिःसृता या
स्याद् वाद कल्लोलवती पुनातु ।
यस्यावगाहान्मनसः प्रपङ्क,
सञ्जायते क्षिप्रतरं प्रणष्टम् ॥२॥

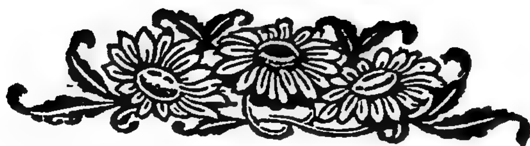
जैनेन्द्रशासने सम्यक् शिक्षादीक्षा प्रदायिनी ।
भारत्येव विभाति या पुण्यश्री जयतात्सदा ॥३॥

नत्वा ज्ञानश्रियं भक्त्या सदुपयोगशालिनीम् ।
यया ज्ञानप्रदानेन नेत्र मुन्मीलितं मम ॥४॥

स्वान्तः सुखाय बोधाय संभवेद् भविप्राणिनाम् ।
पुण्यश्रीचरितं वक्ष्ये पुण्यजीवन ज्योतिदम् ॥५॥

गुरुमहिमा

विदलयति कुबोधं बोधयत्यागमार्थं,
सुगति कुगति मार्गौ पुण्यपापे व्यनक्ति ।
अवगमयति कृत्याकृत्य भेदं गुरुर्यो,
भवजलनिधिपोत स्तं विना कश्चित् ॥



पुण्य जीवन ज्योति



जन्म–	दीक्षा–	स्वर्गवास–
सं० १९१५	सं० १९३०	सं० १९७६
वैशाख सुदि ८	वैशाख सुदि ११	फाल्गुन सुदि

ॐ

णमुत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स

पुण्य जीवन ज्योति

उत्थान

दिव्य विभूतियों की महत्ता

सुनील विस्तृत आकाश के सुविशाल प्राङ्गण में अगणित तारे उदित होकर अस्त होते रहते हैं, संसार पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, इसी कारण उनके उदयास्त को जानने का भी कोई प्रयत्न नहीं करता। कुछ विशिष्ट तारे—ग्रह नक्षत्रादि ही ऐसे हैं जिनकी गतिविधियों का निरीक्षण होता है। इनमें सौम्य कान्ति वाले प्रशान्त तेजस्वी रोहणीपति चन्द्रदेव जब तमिस्रा निशा के अन्धकार को भेदते हुए गगन की रङ्गभूमि में पदार्पण करते हैं तब अखिल विश्व रजत ज्योत्स्ना मे स्नान करके जग-मगा उठता है, सूर्य की प्रखर किरणों के आतप से सन्तप्त निखिल चराचर प्राणिवर्ग अपूर्व शीतलता का अनुभव करता है। वनराजी भी अपूर्व शोभा को धारण करती हुई अपनी सुगन्धि से वातावरण को प्रफुल्लित, आनन्दमय और शान्त बना देती है। एक कवि ने भी कहा है :—

"एकश्चन्द्र स्तमो हन्ति, नहि तारागणोऽपि च ।"

'चन्द्रमा अकेला ही अन्धकार का नाश कर देता है, तारों का समूह भी नहीं कर सकता' ।

वास्तव में बात भी ऐसी ही है। चन्द्रोदय होने पर अखिल भूमण्डल की स्थिति में भारी परिवर्तन हो जाता है। समुद्र में ज्वार आता है, वनौषधि जगत् अमृतपान कर रोगान्तक शक्ति का सञ्चय करता है, पुष्प फलादि एवं धान्यादि में रस का संचार हो जाता है। कुमुद विकसित होकर अपना परिमल बिखेरने लगते हैं, चांदनी खिलकर अपनी सौरभ से सारे वातावरण को सुगन्धमय बना देती है और कवियों की प्रतिभा उल्लसित होकर मधुर काव्य प्रणयन में तत्पर हो जाती है।

सुधावर्षी सुधाकर भी संसार की एक अद्भुत विभूति है, इसमें सन्देह नहीं। यह तो हुई आकाश के एक सौम्य प्रकाश-पुंज की बात। इसी प्रकार भूमण्डल पर भी ऐसे प्रकाशपुंज समय समय पर उदय होते रहते हैं, जिससे संसार अज्ञानान्धकार का नाश होकर ज्ञान की उज्ज्वल आभा प्रसृत हो जाती है, मानव जाति को अलौकिक प्रकाश मिलता है और वह कर्त्तव्या-कर्त्तव्य को जानकर कर्त्तव्य-परायण होने का प्रयत्न करने लग जाता है तथा प्रयास करके इष्ट प्राप्ति कर लेता है।

जिस प्रकार आकाश के प्रांगण में सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारे समय समय पर उदय और अस्त होते रहते हैं, उसी प्रकार जगत् के सुविशाल प्राङ्गण में भी अनन्त जीव विविध शरीर धारण करके जन्म लेते, कुछ समय रहते और मृत्यु को प्राप्त होते रहते हैं। सब जीवों के विषय में किसी को कोई जिज्ञासा

नहीं होती। कुछ विशिष्ट व्यक्ति ही ऐसे होते हैं, जिनका जन्मना, रहना और मरना भी विशिष्टता रखता है।

जन्म लेना और मरना संसार का अनिवार्य नियम है। इस नियम से सभी जीव परिचालित और नियन्त्रित हैं।

संसार मे अगणित प्राणी जन्म लेते हैं, कुछ दिन भोग-विलास की अन्धकारपूर्ण वीथियों में भ्रमण करते, स्थान स्थान पर ठोकरें खाते टकराकर एक दिन चल बसते हैं। उनका सुख-दुःख, हंसना-रोना अपने तक ही सीमित रहता है, यदि वह आगे बढ़े भी तो अपने परिवार तक या आस पास के परिचित इने गिने प्राणियों तक ही जाता है। वे प्राणी स्वयं भी जगत् के प्राणियों के सुख दुःख की, अभाव अभियोग की, या हंसने रोने की परवाह नहीं करते, उनके किसी भी कार्य मे संविभागी नहीं बनते, फलतः जगत् के प्राणी भी उनकी उपेक्षा कर देते हैं। ऐसे लोगों के जन्म मरण से या उपस्थिति से संसार का कुछ बनता बिगड़ता नहीं।

संसार में उसी का जन्म लेना सार्थक माना जाता है जो राष्ट्र और धर्म की उन्नति के लिए अपना सर्वस्व परित्याग कर अपने सुख दु ख को भूलकर जीवन भर इसी कार्य में संलग्न रहता है और दूसरों के लिए एक आदर्श प्रस्तुत कर जाता है। कहा भी है :—

"परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।
सजातो येन जातेन याति वंशसमुन्नतिम्॥"

अर्थः—इस परिवर्तनशील संसार में कौन जन्मता और मरता नहीं है? किन्तु उसी का जन्म लेना सार्थक है जिसके जन्म लेने से वंश की सम्यग् उन्नति हो।

अधिकांश व्यक्ति केवल अपने ही तुच्छ स्वार्थों के घेरे में बन्द रहते हैं। वे इस भौतिक जगत् के कीट बन जन्म लेते हैं और कुछ दिन रह कर विलीन हो जाते हैं। ऐसे लोग अज्ञान-वश भोगोपभोग के कारागार में से बाहर निकलने की न तो इच्छा करते हैं न प्रयत्न ही। अपितु उसी में रहना पसन्द करते हैं। यदि कोई दयालु उन्हें इस दुःखपूर्ण स्थिति से उबारना भी चाहे तो वे उसका विश्वास ही नहीं करते और उल्टा उसे ही पागल समझ बैठते हैं। कोई विरले महान् आत्मा ही ऐसे होते हैं जो ज्ञानियों के वचन पर श्रद्धा रखकर वाह्य जगत् की ओर से दृष्टि हटाकर आन्तरिक जगत् को देखने का प्रयास करते हैं।

करोड़ों में एक आत्मा ऐसा होता है जो उदीयमान शरत् शशांकवत् अज्ञान की तमिस्रा निशा को विदीर्ण कर अपने जन्म से ही आनन्द और ज्ञान की ज्योतियां प्रसृत करता है। वह शीतल आलोक का पुञ्ज होता है। उसके दिव्यदर्शन से त्रयताप सन्तप्त प्राणियों को अपूर्व शान्ति मिलती है। जन मन की जड़ता विलीन हो जाती है, मूर्छित शुभभावनाएं उल्लसित हो जाती हैं। भव्यमुकुलित मनः कुमुद विकसित होकर मृदु मोहक सौरभ से वातावरण को सुगन्धमय बना देता है और जब वह पूर्ण कलावान् चन्द्रवत् विश्वआकाश के मध्य में विराजमान होकर वाणीरूपी सौम्य किरणें बिखेरने लगता है तब तो कहना ही क्या ? जन जीवन में शान्ति की एक नवीन लहर उमड़ पड़ती है।

ऐसे उच्चकोटि के आत्मा मानवरूप में अवतीर्ण होते हैं। वे पुरुष हों चाहे महिला, वाह्यलिंग का कोई विशेष महत्व नहीं, केवल उनके अलौकिक गुणों का ही महत्व है।

राजर्षि भर्तृहरि का यह कथनः—

"गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्ग न च वयः"

बिल्कुल सही है।

उन्होंने स्पष्ट कहा है—गुण ही पूजा योग्य हैं, गुणियों के लिङ्ग और वयस् का विचार नहीं करना चाहिये। बाह्य वेशभूषा, अवस्था या पुंसत्व तथा स्त्रीत्व का कोई महत्व नहीं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में एक ऐसी ही महान् आत्मा की जीवन रूप-रेखा को अंशतः लिखने का प्रयास किया जा रहा है। गुणियों के गुणों का सम्पूर्णतः वर्णन तो साक्षात् सुरगुरु या सरस्वती भी नहीं कर सकते फिर मुझ जैसी तुच्छ बुद्धि भला कब समर्थ हो सकती है।

चरितनायिका एक ऐसी सती साध्वी रत्न थीं जो जन्म लेकर अपने समाज, देश और राष्ट्र की समुन्नति के लिए जीवन भर प्रयास करती रहीं, अपने आपको इसी कार्य के निमित्त उत्सर्ग कर दिया। उन्होंने पवित्र त्याग मार्ग का अनुसरण करके भारतीय महिलाओं के सम्मुख ऐसा आदर्श उपस्थित किया जिससे वे उनके पद चिन्हों पर चलकर अपने जीवन को सार्थक बनाती हुई मानव जीवन के महान् लक्ष्य 'मुक्ति' की ओर अग्रसर हो सकती हैं।

वे हमारी परमाराध्या, प्रात-स्मरणीया, शासन प्रभाविका, महाप्रभावशालिनी, पुनीतचरित्रा, निःस्पृही, महातेजस्विनी एव चरित्रशीला, श्रेष्ठा, साध्वीरत्न थीं। उन्होंने ससार की समस्त सुविधाओं को किशोरावस्था मे ही 'जब कि जगत के किशोरवय बालक बालिकाएं मोहनिद्रा मे सोते हुये अपना भान भूले रहते हैं और विवेकहीन बने हुए क्रीड़ा में ही तल्लीन रहते हैं' ठुकरा कर तप-त्याग, वैराग्य और साधना के कण्टकाकीर्ण दुर्गमपथ

पर सहर्ष पांव रख दीर्घकाल तक उसी पथ पर चलकर अपने जीवन को सार्थक बना लिया था।

उनका साध्वी जीवन स्वच्छ, उज्ज्वल एवं आदर्श था। अतः वह अनेक युगों तक साधक साधिकाओं का पथप्रदर्शक बनकर उन्हें योग्य मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित एवं उत्साहित करता रहेगा, इसमें सन्देह नहीं।

ऐसी त्यागमूर्ति विभूतियां किसी एक देश, राष्ट्र या समाज की ही अमूल्य सम्पत्ति न रहकर सम्पूर्ण विश्व की महान् बहुमूल्य और रत्य निधि बन जाती हैं। सारा संसार उन्हें अपना ही मान लेता है।

जिस राष्ट्र, देश या समाज को ऐसी निधि के उद्भव करने का सत्सौभाग्य सम्प्राप्त हो वह सचमुच ही बड़ा भाग्यशाली है। वह भी एक तीर्थस्थल बन जाता है। भारत और जैन समाज ऐसी निधियां प्रकट करके आज भी संसार का पूज्य बना हुआ है। अखिल विश्व में भारत का अपना एक विशिष्ट स्थान है। यहां की त्याग तपोमय संस्कृति ने जगत् का ध्यान सदा ही अपनी ओर आकर्षित किया है।

जैन समाज भी ऐसी अपूर्व प्रतिभाशालिनी साध्वी रत्नों को पाकर संसार में अपना एक विशिष्ट स्थान बना चुका है तथा भविष्य में भी उसकी समाज रचना के कारण यह स्थान सुरक्षित है।

चरितनायिका का भी अपना एक विशिष्ट स्थान है। यह आज भी माना जाता है। वे त्यागतप की जङ्गमप्रतिमा थीं।

उन स्वनाम धन्या महाप्रतापशालिनी स्वर्गभूमि निवासिनी महासाध्वी पूज्येश्वरी के पुनीत चरणों में इस नगण्य प्रशिष्या का कोटिशः अभिवन्दन।

जैन धर्म में महिलाओं का स्थान

जैन धर्म मे महिलाओं को भी वही स्थान प्राप्त है जो पुरुषों को है। आद्यतीर्थङ्कर ऋषभदेव से लेकर भगवान् महावीर वर्द्धमान महाप्रभुने दोनों को ही साधना के समान अधिकार व अवसर प्रदान किये थे। जब हम इतिहास का अनुशीलन करते हैं तो ज्ञात होता है, कि महिलाएं कई गुणों में पुरुषों से भी अग्रगामिनी रही हैं। उनका महत्व कई स्थानों पर पुरुषों से विशेष विवृद्ध हो गया है। शिक्षा में, संयम में, व्रतपालन में, सतीत्वरक्षा में, सेवा में, सहनशीलता और स्वार्थ त्याग मे ये सदा ही आगे रहीं और रहती हैं। सहनशीलता, लज्जा और सेवा तो उनके जन्मजात गुण हैं जो किसी में कम और किसी में अधिक प्रमाण में रहते ही हैं। दूसरे विशिष्ट गुण संस्कार व परिस्थितियों पर अवलम्बित हैं। सतीत्वरक्षा के लिए भारत की नारियों का 'जौहर' तो संसार को आज भी चकित कर रहा है।

अत्यन्त प्राचीन समय की ओर दृष्टिपात करें तो भगवान युगादिदेव ऋषभ महाप्रभु की दोनों पुत्रियों—ब्राह्मी व सुन्दरी के दर्शन होते हैं जो विद्या, शील और त्याग की जीती-जागती प्रतिमाएं थीं। ब्राह्मीने तो ऋषभदेव भगवान् को केवल ज्ञान होने पर ही दीक्षा धारण कर ली थी, किंतु चक्रवर्ती भरत ने तत्कालीन प्रथानुसार सुन्दरी को अपनी पत्नी बनाने की अभिलाषा से त्यागमार्ग के अनुसरण से रोक लिया था। पर वे तो अपने पूज्य पिता के पदचिह्नों पर चलने का दृढ़ सङ्कल्प कर चुकी थीं। चक्रवर्ती उन्हें राज्य सम्पत्ति और संसार के भोगविलासों की ओर

आकृष्ट करने में असफल रहे। सुन्दरी ने साठ हजार वर्ष तक आयम्बिल तप करके अपने शरीर को सुखा डाला। चक्रवर्ती भरत को इस तप व त्याग की साक्षात् ज्वलन्त मूर्त्ति के आगे नतमस्तक होना ही पड़ा। भरत ने उसे सहर्ष साध्वी जीवन स्वीकार कर लेने की अनुमति दे दी। कुमारी 'मल्लि' तो तीर्थंकर के सर्वोच्चपद पर प्रतिष्ठित हुई थीं।

जब हम प्रातः स्मरणीया अद्भुत प्रेमिका सती शिरोमणि राजिमती का जीवन 'जो शास्त्रों के स्वर्णपृष्ठों पर अंकित है, अवलोकन करते हैं तो मस्तक श्रद्धा से अपने आप झुक जाता है। उन्होंने पुनीत संयम के पथ पर चलते हुए रथनेमि को अस्थिर-विचलित होते हुए, उसकी वासना की दबी हुई चिनगारियों को उभरते हुए अवलोकन किया तो तत्काल ही अपने पवित्र उपदेशामृत की वर्षा से ऐसा शान्त किया कि फिर वे कभी न उभरीं, न चमकीं। यही तो उस महासती की विशिष्टता या महत्ता थी जो आज भी वह प्रत्येक स्त्री के लिए अनुकरणीया व आदरणीया है। उनमें संयम का वह तीव्र तेज था जो रथनेमि को पुनः संयम के पवित्र पथ पर दृढ़ता से आरूढ़ कर सका। पतिदेव के मार्ग का अनुसरण करने वाली सतियों में वे अग्रगण्या थीं। अद्भुत पातिव्रत्य था उनका, उपदेश शक्ति भी अलौकिक थी।

इसी प्रकार आबाल ब्रह्मचारिणी राजकुमारी चन्दनबाला के जीवनवृत्त पर दृष्टिपात करते हैं तो विस्मय और करुणा से अभिभूत हो जाना पड़ता है। सचमुच ही वह एक महाशक्ति

स्वरूपा थी। राजकुल में जन्म लेकर भी बाल्यावस्था में ही वे मातृ-पितृ विहीना हो गईं, मातृ-भूमि से तथा माता से बलात् पृथक् करदी गईं। उसने अपनी जननी को सतीत्व रक्षार्थ प्राणोत्सर्ग करते देखा था, आततायी के पञ्जे में आकर वे सरे बाजार बेची गईं, उन पर कष्टों, उपसर्गों के पर्वत टूट पड़े, फिर भी उस वीर बालिका ने अद्भुत सहनशीलता का परिचय देकर सबको अवाक् कर दिया।

उस जमाने में स्त्रियों का चांदी के चन्द टुकड़ों के लिये क्रय-विक्रय होता था। पुरुष अपने सर्वाधिकार सुरक्षित रख-कर महिलाओं को पांव की जूती से अधिक महत्व न देता था। धर्मानुष्ठानों में भी उनका कोई अधिकार स्वीकृत न था, वे केवल पुरुषों की विलास सामग्री समझी जाती थीं। उनका अपना कोई स्वत्व या सत्ता नहीं थी। कुमारी चन्दना को भी इस दशा का भोग्य बनना पड़ा था। उन्होंने स्वयं इस दयनीय अवस्था का अनुभव किया था। अतः उन्होंने इसे सुधारने की प्राणपण से चेष्टा की। संसार के भौतिक सुखों को लात मारकर वे नारी जाति का उद्धार करने के लिए भगवान् महावीर के सङ्घ में सम्मि-लित हो गईं। उनको भोग्य वस्तु मानने वाले सत्तान्ध नृप देखते ही रह गये। एक राजकुमारी भी इस प्रकार के त्याग, तप और संयम के मार्ग पर पुरुषों के समान चल सकती है, यह उन्होंने अपने आचरण से प्रत्यक्ष दिखा दिया। भगवान् महावीर के चतुर्विध संघ में समस्त आर्याओं की आप नेत्री थीं।

हम शास्त्रों में लोगों के चरित्रों को पढ़ते हैं तो पता लगता है कि कमलकोमला असूर्यम्पश्या वे राजरानियां भी कि जिनके एक संकेत मात्र पर सहस्रों सेवक सेविकाएं अपने प्राण तक न्यौछावर करने को प्रस्तुत रहती थीं; भगवान् महावीर प्रभु के धर्म की शरण में आकर चन्दन बाला की अनुगामिनी बन आत्म कल्याण के साथ-साथ पर कल्याण करती हुई, राजवैभव में पले हुए कोमल शरीर के सुख दुःख की परवाह न करके तीव्र तप द्वारा कर्ममल को नष्ट करती थीं। भगवान् का पवित्र सन्देश देने गांव-गांव नगर-नगर पादविहार करतीं। भयङ्कर अटवियों, विषम पार्वतीय घाटियों को पार करतीं, मात्र भिक्षावृत्ति से संयम के साधनरूप शरीर का निर्वाह करती थीं।

वे श्रेष्ठ पत्नियां, महाराज कन्याएं भी जिनके ऐश्वर्य को देख कर बड़े२ सम्राट् चकित हो जाते थे, तप त्याग-संयम के पुनीत पथ की पथिकाएं बन शीत, ताप, क्षुधा, पिपासा, अपमान, अनादर से निरपेक्ष, आत्मस्वरूप में तन्मय हो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्र की आराधना करती हुईं अपने अमूल्य दुर्लभ मानव जीवन को सार्थक करती थीं।

भगवान् वर्द्धमान महाप्रभु के श्राविका संघ की मुख्यायें—महाश्रद्धावती, उदात्त विचारों के गगनाङ्गण में विचरण करने वाली गृहस्थ रमणियां—जयन्ती, रेवती, सुलसा आदि श्राविकायें क्या कम विदुषियां थीं। 'भगवती' सूत्र में इनकी विद्वता, श्रद्धा व भक्ति का अच्छा वर्णन मिलता है।

श्राविका शिरोमणि जयन्ती ने भगवान् से कैसे गम्भीर प्रश्न किये थे? रेवती की भक्ति देवों की भक्ति का भी अतिक्रमण करने वाली थी। सुलसा की अडिग श्रद्धा देखकर मस्तक श्रद्धावनत हो जाता है।

जयन्ती मृगावती महारानी के साथ भगवान् महावीर प्रभु के दर्शन करने आती है। धर्मोपदेश सुन हर्षित हो नमस्कार वन्दना कर अंजलिपूर्वक सविनय प्रश्न करती है:—

जयन्ती—भगवान्! जीव भारीपन को कैसे प्राप्त होता है?

भगवान—जयन्ती! प्राणातिपातादि अठारह पापों का सेवन करने से निश्चय ही जीव भारी बनता है। (विस्तृत वर्णन उक्त सूत्र के प्रथम शतक में है)।

जयन्ती—प्रभो! क्या 'भवसिद्धित्व', जीव का स्वाभाविक भाव है या पारिणामिक भाव है?

श्री महावीर—जयन्ती भवसिद्धित्व जीव का स्वाभाविक भाव है, पारिणामिक नहीं।

जयन्ती—भन्ते! क्या सभी भवसिद्धिक जीव सिद्ध होंगे?

भगवान—हां जयन्ती, सभी भवसिद्धिक जीव सिद्ध होंगे।

जयन्ती—भगवन्! यदि सारे ही भवसिद्धिक जीव सिद्ध होंगे तो क्या वह लोक भवसिद्धिक जीवों से खाली हो जायगा?

भगवान्—नहीं, ऐसा कहना ठीक नहीं। (जीव अनन्त हैं) घनीकृत लोक की एक प्रादेशिकी श्रेणी के अंगुल के असंख्यातवें

भाग में भी जब अनन्त जीव हैं तो उनका अन्त कभी आने वाला नहीं है।

जयन्ती ने पुनः प्रश्न किया—भन्ते! सुप्तत्व अच्छा है या जागृत रहना?

भगवान्—कितने ही जीवों का सोना ठीक है, किनने ही का जागना।

जयन्ती—ऐसा क्यों फरमाते हैं?

भगवान्—अधार्मिक, अधर्मानुग, अधर्मिष्ट, अधर्माख्याति, अधर्मप्रलोकी, अधर्म प्ररञ्जन, अधर्मसमुदाचार, अधार्मिक जीविका वाले, जीवों का सोते रहना ठीक है, क्योंकि वे निद्रा में बहुत से प्राणभूत जीव सत्वों की विराधना न करेंगे। उन जीवों को दुःख और शोक या परितापना न करेंगे। इसलिए ऐसे जीवों का सोना अच्छा है तथा धार्मिक धर्मानुग आदि जीवों का जागना अच्छा है क्योंकि वे स्वयं धर्म का आचरण करेंगे तथा दूसरों को भी धर्माचरण में प्रवृत्त करेंगे। अतः उनका जागृत रहना अच्छा है।

इसी तरह निर्बल सबल का प्रश्न, दक्ष-अलस का प्रश्न भी समझ लेना चाहिये। सारांश यह कि धार्मिक का सबल रहना अच्छा है। अधार्मिक निर्बल रहना, धार्मिक का दक्ष-उद्योगशील रहना, अधार्मिक अलस-आलसी रहना शुभ है, इन्द्रियवशित्व के कषायविष्ट आदि के भी प्रश्न किए हैं, जो उनकी तत्वजिज्ञासा परिचायक हैं तथा साथ ही सूक्ष्मबुद्धि के भी सूचक हैं।

श्रमणोपासिका सुलसा की सतर्कता एवं अडिग श्रद्धा के विषय में भी हमें विस्मित रह जाना पड़ता है। अम्बड़ ने उसकी कई प्रकार से परीक्षा की। ब्रह्म, विष्णु महेश बना, तीर्थंकर का रूप धारण कर समवसरण की लीला रच डाली; किन्तु सुलसा को आकृष्ट न कर सका। वह उसके चक्र में नहीं फंसी। वह जानती थी भगवान् महावीर दूसरे देश में हैं। इतने शीघ्र कैसे पधार सकते हैं, यह तो कोई मायावी है।

क्या साधारण नारियां ऐसे मार्मिक प्रश्न कर सकती हैं? क्या अम्बड़ जैसों के सामने इस प्रकार अडिग-अचल रहती हैं?

उस युग में महिलाएं कितनी शिक्षित थीं, उनकी विचारशक्ति कितनी प्रबल थी, इसका अनुमान हम उपर लिखे उदाहरणों से भली भांति लगा सकते हैं।

स्त्रियों की जागृति का प्रधान कारण भगवान् महावीर का वैदिकधर्म ('जातिवाद' 'यज्ञियाहिंसा' स्त्रीशूद्र का धर्म मे, वेद में अनधिकार, एक पतिव्रत धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्माचरण का निषेध) के विरुद्ध वह आन्दोलन था, जो उन्होंने अपनी कैवल्य प्राप्ति के बाद आरम्भ किया था। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की थी कि सब जीव समान हैं, जाति कर्मानुसार होती है, यज्ञ की हिंसा नरक मे जाने से नहीं बचा सकती, धर्म करने का अधिकार, शास्त्र पढ़ने का अधिकार, स्त्री हो चाहे पुरुष, ब्राह्मण हो या शूद्र, सभी को है। मुक्ति प्राप्त करने का अधिकार प्रत्येक प्राणी को है। स्त्रीत्व या नपुंसकत्व अथवा पुंस्त्व इसमें बाधक नहीं। आत्मा को मुक्त करने की साधना सभी कर सकते हैं।

उन्होंने अपने चतुर्विध संघ में जातिवाद को स्थान नहीं दिया। स्त्रियों का उन्होंने साध्वी संघ और श्राविका संघ बनाया। स्त्रियों की संख्या पुरुषों से बहुत अधिक थी। उनके संघ में साधु तो १४००० ही थे, साध्वियां ३६००० हजार थीं, इसी तरह श्रावकों की संख्या १५६००० तो श्राविकाओं की ३१८००० तक पहुँच गई थी। साधु साध्वियों के व्रतों, नियमों व आचारों में कोई भिन्नता नहीं। दोनों को ही पंचमहाव्रत समान रूप से पालन करने पड़ते हैं, नियम और आचार भी एक से ही हैं। श्रावक श्राविकाओं के व्रत भी जो बारह हैं, समान ही हैं।

यों हम देखते हैं कि ये अबला कहलाने वाली स्त्रियां त्याग की दृष्टि से, तपस्या के विषय में और बुद्धि की विचक्षणता में प्रबल महाशक्तियां थीं उन्होंने ऐसे ऐसे अद्भुत कार्य कर दिखाए हैं, ऐसी ऐसी तपस्याएं की हैं, सतीत्व रक्षा में ऐसी वीरता दिखाई है कि यह सब सुनकर आज का मानव दंग रह जाता है।

मानवी रूप में वे साक्षात् भवानी थीं, देवियां थीं: उनकी पुण्यगाथाओं से भारतीय साहित्य की शोभा में चार चाँद लगे हुए हैं। वे साहित्याकाश की जगमगाती ज्योति तारिकाएं हैं। भारतीय महिला समाज की मुकुट मणियां हैं, उन पर देश को गर्व है। वे हमारी आराध्या, प्रातः स्मरणीया और वन्दनीया महासतियां हैं।

आज भी ऐसी त्याग व तप की, विद्या व वाग्मिता की जीवित प्रतिमायें हैं जो मानव जगत् को अमूल्य प्रेरणा देकर

सत्पथ पर लाने का सतत प्रयत्न करती रहती हैं। सांसारिक भोग विलासों, सुख सुविधाओं को त्याग कर, तप और संयममय जीवन व्यतीत करती हुई, अपनी चर्या, वाणी और व्यवहार से मनुष्यजाति को अज्ञान के गहरे गर्त्त से निकाल कर ज्ञानालोक में विचरण कराती हैं।

ऐसी ही एक ज्ञान, वैराग्य त्याग –तप की पवित्र प्रतिमा का दर्शन आगे के पृष्ठों मे करिये।



जन्म और बाल्यकाल

शून्यारण्य में चलने वाले किसी पथिक को, जब कि उसका गन्तव्यपथ आंधी तूफान से धूलधूसरित हो जाता है, पगडण्डी का चिन्ह मिट जाता है, क्या दशा हो जाती है। इसका अनुमान भुक्तभोगी को ही हो सकता है, वह बेचारा पथिक दिङ्मूढ़ बन किसी मार्ग दर्शक की प्रतीक्षा करने लगता है या विवश हो बिना पगडण्डी के ही चलता हुआ भयानक अटवी में भटकता रहता है, भाग्यवश कोई पथप्रदर्शक मिल जाय तो वह सीधी राह चल कर अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँच सकता है।

यही बात संसृति अरण्यानी में यात्रा करने वाले जीवों की है। वे भी निर्लक्ष्य इस महारण्य में पथप्रदर्शक के अभाव में पथ भूल कर कभी विषय की कंटीली झाड़ियों में फंसकर, कभी मिथ्यात्व के गहरे गर्त्त में गिरकर, कभी कषाय दावाग्नि में पड़कर असह्य कष्टों को सहन करते हैं। उन पर अचिन्तनीय विपत्ति की शिलाएं टूट पड़ती हैं। जब कोई करुणाद्रचित्त महात्मा उनकी इस दशा पर दया लाकर उन्हें दुःखों से निकलने का उपाय बतलाता है तब उनमें से कुछ विश्वास करके उस उपाय के अवलम्बन से अपने आपको उक्त कष्टकर अवस्था से मुक्त कर लेते हैं। अधिकांश अविश्वासी अपनी उसी दशा में मग्न रहते हैं।

ऐसी ही एक महान् आत्मा का जन्म राजस्थान में जैसलमेर के पास गिरासर गांव में हुआ था, जिनका पुनीत जीवन आप लोगों के सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है—

भारतवर्ष में राजस्थान प्रान्त अपनी विशेषताओं के कारण बड़ा प्रसिद्ध है, यह उन बांके वीरों की निवास भूमि है जिन्होंने देश और धर्म की रक्षा के लिये बलिवेदी पर अपने आपको सहर्ष भेंट किया, यह उन नारियों को जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त कर चुका है जिन्होंने सतीत्व रक्षार्थ जौहर किये हैं। यह धर्मवीर, कर्मवीर दानवीर, रणवीर, और स्वामिभक्त एवं देव गुरु धर्म के भक्तों की जन्मभूमि है जिन पर सारे देश को गर्व है। प्रणवीर प्रताप के नाम से कौन अपरिचित है ? स्वामिभक्त दानवीर भामाशाह और वीर धाय पन्ना को कौन नहीं जानता ? पद्मिनी की वीरता और सतीत्व रक्षा के लिए अपूर्व जौहर का अपनाना किसने नहीं सुना? रणबांकुरे राठौर दुर्गादास का नाम किसके कर्णगोचर नहीं हुआ? कृष्णभक्त मीरां का पवित्र नाम भारत के अधिवासियों की जिह्वा पर आज भी चढ़ा हुआ है। इतिहास के स्वर्ण पृष्ठों पर यहां के उन महान् पुरुषों का नाम रत्नवत् शोभित है। भारत को इन महापुरुषों पर आज भी गर्व है ।

राजस्थान के पश्चिमी प्रदेश में जयसलमेर का अपना एक विशिष्ट स्थान है । यहां के प्राचीन जैन मन्दिरों की तक्षणकला बड़ी उच्चकोटि की है, प्राचीन हस्तलिखित अन्यत्र अप्राप्य आगम शास्त्र तथा अन्य ग्रन्थों का भण्डार भी है जिनके दर्शन करने सहस्रों यात्री प्रतिवर्ष वहां जाते हैं। एक लाख तीस हजार नवीन जैनों की वृद्धि करने वाले युगप्रधान दादा साहिब जिनदत्त सूरि जी महाराज की चादर आज भी वहां सुरक्षित है जो भारत की ८०० वर्ष पुरानी वस्त्र निर्माण कला का परिचय देती है।

इसी जयसलमेर के पास गिरासर गांव में इस विभूति का जन्म हुआ था। उपर्युक्त गांव में श्री जीतमल्लजी पारख नाम के एक सद्गृहस्थ निवास करते थे। आप बड़ी भद्र प्रकृति वाले थे और धर्म ध्यान में तत्पर, न्यायपूर्वक आजीविका का उपार्जन करके अपने परिवार का पालन पोषण करते थे। आपके शीलादि गुणों से विभूषित, सुरूपवती 'कुन्दनदेवी' नामक धर्मपत्नी थीं जो श्री जिनेन्द्रदेव की पूजा, सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषधादि धर्मानुष्ठानों का आचरण करती हुई पतिभक्ति तथा गृहादि कार्यों में कुशल थीं। आपका स्वभाव सरल था और कुटुम्ब, समाज तथा ग्रामनिवासियों के साथ व्यवहार बड़ा स्नेहपूर्ण और मधुर था। आप स्वभाव से ही विनयशीला, उदार और लज्जावती थीं। आप "यथा नामस्तथा गुणाः" की उक्ति को चरितार्थ करने वाली थीं। जैसे कुन्दन का सोना विशुद्ध होता है, उसका वर्ण तथा कान्ति साधारण स्वर्ण से अधिक शोभित होते हैं वैसे ही कुन्दनदेवी भी सामान्य स्त्रियों की अपेक्षा आचार, व्यवहार आदि में विशिष्ट गुण धारण करने वाली थीं।

रत्नों की खान में से ही रत्न निकल सकते हैं, अन्यत्र नहीं। हमारी चरितनायिका की माताजी रत्नों की खान थीं तभी तो ऐसे रत्न उत्पन्न हुए।

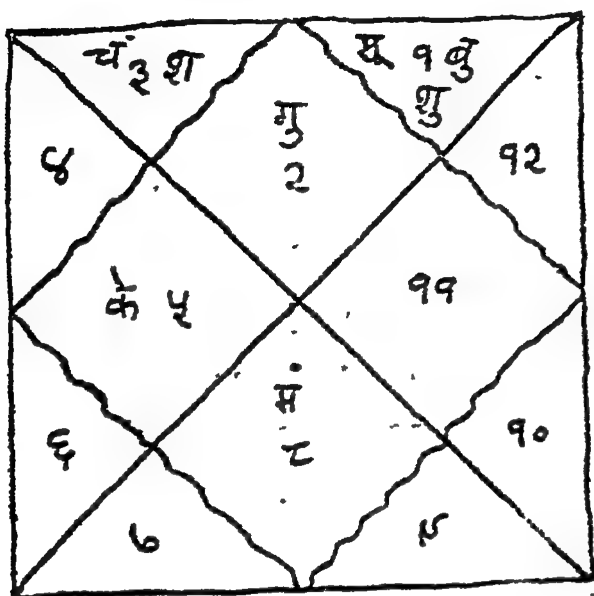
आप चरितनायिका की माता बनने से पहले तीन संतानों के मातृपद को सुशोभित कर चुकी थीं जिनके नाम क्रमशः मूलचन्दजी बुधमलजी व मूलीबाई थे।

चरितनायिका का पुण्यशाली आत्मा जब गर्भ में अवतीर्ण हुआ तब आपने प्रसन्नमुख सिंह का स्वप्न देखा था।

इस पुण्यपुञ्ज जीव के गर्भावस्थित होने पर कुन्दन बाई का शरीर अद्भुत कान्ति धारण करने लगा। उनके मानससरोवर में सुपात्र तथा दीन दुखियों को दान देने की भावनोर्मियां उच्छलित होने लगी। भगवान् जिनेन्द्रदेव के दर्शन, पूजन, गुण-गान की अभिलाषा रूप राजहंस क्रीड़ा करने लगे। त्यागी, वैरागी, साधु-साध्वीवर्ग की वाणी श्रवण के मनोरथमय कमल विकसित हो गये। जीवमात्र को अभय बना दूं ऐसी आकांक्षा रूप सारस युग्म कूजन करने लगा। उपशम संवेग रूप चक्रवाक युगल किलोलें करने लगे। साधर्मिक वात्सल्य के भावनारूप कुमुद खिल उठे। उनकी जीवनचर्या सामान्य स्त्रियों से पृथक् दृष्टि-गोचर होती थी। वे सदा हंसमुख, प्रसन्नचित्त और प्रमुदित रहने लगीं। गर्भ स्थित पुण्यात्मा का प्रभाव उन्हें धर्मकृत्यों में पहले की अपेक्षा अधिक तत्पर रखने लग गया था। वे तीर्थों के दर्शन, स्पर्शन की महत्वाकांक्षा करने लगीं, पर उस युग मे यात्रा सुलभ न थी। अतः यह मनोरथ पूर्ण न हो सका। दूसरे दोहद यथा-शक्ति पूर्ण किये गये।

समय पर कुन्दन बाई के पुत्री रत्न का जन्म हुआ। शुभ मिति वैशाख शुक्ल ६ चन्द्रवार, सं० १९२५ विक्रमी को प्रातःकाल, इष्ट घटी ५-१० पर वृष लग्न में जबकि ग्रहस्थिति निम्न प्रकार थी, हमारी पुण्यशीला चरित नायिका ने

गिरासर की भूमि को अपने पदार्पण से पावन किया।



बालिका का नाम 'पन्ना कुमारी' रखा गया। पन्ना कुमारी श्रेष्ठ पन्ने के समान ही नेत्रानन्ददायिनी थी। पूर्णिमा के चन्द्र जैसा गोल और तेजस्वी मुख, अङ्ग-प्रत्यङ्ग कोमल, हाथ-पांव सुडौल, कमान सी खिंची हुई छोटी-छोटी भौंहें, कमलदल सदृश बड़ी और तीखी आंखें, पतले पतले अधरोष्ठ यह थी उस बालिका पन्ना कुमारी की रूपरेखा।

बालिका माता-पिता के हर्ष के साथ २ शुक्लपक्ष की इन्दुकला के समान दिन दिन बढ़ने लगी। बालोचित स्खलितगति और मन्मनभाषा से सबको प्रसन्न करती हुई रज-क्रीड़ा योग्य अवस्था को प्राप्त हो गई।

भाग्यशाली आत्मा की क्रीड़ा भी सामान्य बालकों से भिन्न प्रकार की होती है। भावी जीवन की चर्या और कार्यों का आभास उनकी शैशवावस्था में ही होने लग जाता है। कहा भी है:—

"होनहार विरवान के, होत चीकने पात।"

बाल सुलभ चपलता के साथ साथ आप में विवेक, विनय और तर्कबुद्धि एवं जिज्ञासा भी यथेष्ठ मात्रा में विद्यमान थी, नेतृत्व शक्ति के लक्षण स्पष्ट झलकते थे और भावी वक्तृत्वकला का आभास साधारण बातचीत से प्रकट होने लगा था।

मारवाड़ में लड़कियां प्रायः गुड्डे गुड्डी का खेल खेलती हैं या कंकरों व कौड़ियों से खेलकर मनोरञ्जन करती हैं परन्तु आपको इन खेलों से स्वभावतः ही अरुचि थी। आपकी बाल-क्रीड़ायें भावी उन्नत जीवन की सूचक थीं। आप कभी कभी समवयस्का बालिकाओं को साथ ले किसी ऊंचे चबूतरे या चौकी पर बैठ जातीं और धर्मोपदेश देने का अभिनय करने लगतीं तो कभी साधारण साधुवेश बनाकर झोली में कटोरियां डाल धर्मलाभ का शब्दोच्चारण करती हुई पाकशाला में से भोजन सामग्री ला एकान्त में सहेलियों को साथ ले पहले उन्हें परोसकर भोजन करतीं, कभी अपने वस्त्रादि कंधों पर लेकर विहार करने जैसी मुद्रा में गांव के बाहर तक सहेलियों के साथ चली जातीं। कभी माताजी के साथ सामायिक-प्रतिक्रमण आदि किया जाता, नवकार मन्त्र का जाप होता और दर्शन चैत्यवन्दन में तो नित्य ही माताजी के साथ सम्मिलित होती थीं।

राजस्थान में उस समय स्त्री शिक्षा का अधिक प्रचार नहीं था। गांवों में तो पुरुषों की शिक्षा का भी साधारण प्रबन्ध था। गांव के उपाश्रय में स्थित यतिगण या महात्मा अथवा सामान्य पढ़े-लिखे ब्राह्मण पंडित ही बालकों को अक्षर ज्ञान से लेकर व्यावहारिक गणित तक की शिक्षा दे दिया करते थे। बालिकाओं को पढ़ाने की तो कोई आवश्यकता ही अनुभव नहीं करता था फिर भी घर की वृद्धाओं—दादी, नानी, मां, भुआ आदि की बालिकाओं को उचित धार्मिक, नैतिक और व्यावहारिक शिक्षाएं देने की प्रवृत्ति आज की अपेक्षा अत्यधिक थी। बड़ों का विनय करना, पूज्यजनों को दोनों वक्त नमस्कार करना, उनके चरण स्पर्श करना आदि शिष्टाचार, बालक बालिकाएं अपने से बड़ों और बराबर वालों का देखकर स्वयं ही सीख जाया करते थे, ऐसे शिष्टाचार के विषय में अभिभावकों द्वारा समय समय पर चेतावनी भी मिलती रहती थी।

महापुरुषों व सती साध्वियों की पुनीत चरित्र कथाएं उन्हें छोटी कहानियों के रूप में दादी, नानी आदि से सुनने को मिल जाया करती थीं। आज तो ऐसी कहानियां सुनने सुनाने का न तो किसी को समय मिलता है और न आधुनिक समय की माताएं ही इस पर ध्यान देती हैं। बालक-बालिकाएं विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं इसी से वे सन्तुष्ट हो जाती हैं। दूसरे बाह्य वातावरण इतना अधिक कोलाहलपूर्ण और पाश्चिमात्य संस्कृति से ओतप्रोत बन गया है कि बालक बालिकाएं उसी की ओर अधिक आकृष्ट हैं। सिनेमा, रेडियो तथा फैशन के अत्यधिक

प्रचार ने भारत की धर्मप्राण जनता को त्याग प्रधान संस्कृति से वंचित रखकर भोग प्रधान संस्कृति के रंग में रंग दिया है। आज की मानव जाति के आदर्श बदल गये हैं। जीवन में से धर्म, नीति, सदाचार आदि लुप्त होते जा रहे हैं। आधुनिक मनुष्य का इष्ट, भोग और उसकी प्राप्ति का प्रधान साधन इन अर्थ के अतिरिक्त और कोई नहीं रह गया। इतिहास और ऐतिहासिक महापुरुषों के गुण आज दोषरूप देखे जा रहे हैं। बुद्धि में अगम्य श्रद्धेयतत्वों की सत्ता के प्रति अनास्था का भाव आ गया है। हृदय की बात न सुनकर तर्क की तराजू पर प्रत्येक प्राचीन मान्यताओं को तोला जा रहा है। आध्यात्मिक तथा हार्दिक भावनाओं की जीवन में कोई आवश्यकता ही अनुभव नहीं कर रहा है। केवल अपनी स्वार्थसिद्धि ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य रह गया, दूसरों की दुःख दुविधा और अभावों के प्रति आंख मूंद ली जाती है। कोई किसी के प्रति सहानुभूति का भाव नहीं रखता।

मानसिक व शारीरिक सुख सुविधाओं की प्राप्ति के अनेक साधनों की उपलब्धि आज अर्थपतियों को सुलभ है। दरिद्र जनता तो आज भी इन सब से वंचित सी ही है। संसार में 'मत्स्यगलागल' न्याय चलने से किसीके भी जीवन, धन, स्थान, और प्रतिष्ठा सुरक्षित नहीं रह गये। विज्ञान की भयङ्कर देन एटम व हाइड्रोजन बम आदि आधुनिक अस्त्र-शस्त्र कराल काल के रूप में मुंह पसारे सभी के सामने उपस्थित हैं, न जाने कब किस देश को लील लें। साम्राज्यवादियों की लोलुपता का ताण्डवनृत्य संसार

के किसी न किसी भाग में प्रायः सदा चलता ही रहता है। सुरक्षा के नाम पर नवीनतम अस्त्र-शस्त्र का निर्माण और उनके परीक्षण द्वारा विश्व की कोटि-कोटि जनता के स्वास्थ्य की बलि दी जा रही है। जन जीवन सर्वथा अरक्षित सा है। परन्तु उस समय ये विभीषिकाएं नहीं थीं।

हमारी चरित नायिका के बाल्यकाल में परिस्थितियां इतनी भयङ्कर न थीं, न वातावरण ही इतना कलुषित था। स्वस्थ व पवित्र ग्राम्य वातावरण उनके चरित निर्माण और उदात्त भावनाओं को समृद्ध व दृढ़ बनाने में पूर्ण सहायक था। शहरों की सभ्यता ने ग्रामों में प्रवेश नहीं किया था। फैशन का भूत नगर निवासियों में से भी थोड़े व्यक्तियों के सिर पर चढ़ा हुआ था। अधिकांश जनता सादा जीवन व्यतीत करती थी। भोजन में पवित्रता का पूरा ध्यान रखा जाता था। धार्मिक विश्वासों पर दृढ़ता से आचरण किया जाता था। आज का सा भ्रष्टाचार और नैतिक पतन न था। मनुष्य समाज अपने २ व्यापार व्यवसायों से, उद्योग धन्धों से जो भी नीतिपूर्वक धनोपार्जन कर लेता था उसी में सन्तुष्ट रहता हुआ अपने परिवार का पालन-पोषण करने के साथ ही परोपकार के पुण्य कर्मों में भी तन, मन, धन का सदुपयोग करता हुआ जीवन संघर्ष में विजयी बनकर अन्त में सर्व प्रकार से शान्तिपूर्वक ऐहिलौकिक लीला संवरण कर परलोक में भी सद्गति प्राप्त करता था।

ऐसे सीधे सादे सरल ग्राम्य वातावरण में रहने से हमारी चरित नायिका भी उन्हीं संस्कारों के कारण बड़ी ही सरल स्वभाव वाली व उत्तम विचार वाली थीं। इन्हीं शुद्ध स्वभाव और उदात्त विचारों से वे भविष्य में एक विशिष्ट पद पर आरूढ़ हो सकीं।

* विवाह *

उस युग में बाल विवाह का अत्यधिक प्रचार था। राजस्थान में तो यहां तक अवस्था पहुंच चुकी थी कि लोग गर्भगत बालकों का भी सम्बन्ध स्थिर कर लिया करते थे। ब्राह्मण ग्रन्थों, स्मृतियों और पुराणों का प्रचार तथा राष्ट्रीय परिस्थितियां भी इस कुप्रथा के प्रचार प्रसार में सहायक बनीं। बादशाहों, नवाबों और राजाओं, जागीरदारों तथा राज्याधिकारियों की कुदृष्टि कुमारी कन्याओं पर पड़नी चाहिये, इतनी ही देर थी फिर तो छल से या बल से इन आततायियों द्वारा वे हरण कर ली जातीं और नरक कीटों की विषय लम्पटता का शिकार बनी हुई कन्याओं का शील-रत्न लूट लिया जाता फिर उनके विशाल अन्तःपुर कारागारों में उन्हें नारकीय यन्त्रणाएं भोगते हुए घोर पराधीनता का जीवन बिताने को बाध्य होना पड़ता था।

इन्हीं कारणों से पर्दाप्रथा भी चल पड़ी और धर्मभीरु जनता अपनी कन्याओं का विवाह बाल्यावस्था में करने को विवश हो गई, अन्यथा भारतवासी जन योग्य वयस् में ही अपनी सन्तानों का विवाह करना पसन्द करते थे। हमारा उज्ज्वल इतिहास इसका साक्षी है।

सेठ जीतमल जी ने भी अपनी पुत्री पन्नाकुमारी का विवाह शीघ्र कर देने के लिए योग्य घर-वर की खोज आरम्भ कर दी।

फलोधी निवासी श्री महरचन्द जी श्रावक के द्वितीय सुपुत्र श्री दौलतचन्द जी उन्हें अपनी कन्या के लिए योग्य वर दृष्टि-गोचर हुए। अपनी धर्मपत्नी से भी उन्होंने इस विषय में परामर्श किया। वालिका पन्नाकुमारी के कानों में भी यह वात पहुंची। उन्होंने अपनी मां से नम्रतापूर्वक कहा—मां, मेरा विचार तो साध्वी वनने का है, मैं दीक्षा लूंगी, विवाह करना मुझे पसन्द नहीं।

वे एक वार अपनी वहिन मूलीवाई के साथ फलोधी गई थीं वहां उन्होंने किसी साध्वी जी के (सम्भवतः साध्वी शिरोमणि उद्योतश्री जी म० सा०) दर्शन किये और तभी से उनके मन में यह विचार उठ रहा था कि मैं भी साध्वी वनूंगी। दूसरे फलोधी में ही एक वार उनके कांटा लगा और तत्रस्थ एक निकट सम्वन्धी धर्मनिष्ठ और रेखा विज्ञान (सामुद्रिक) में भी कुछ गति रखने वाले सुश्रावक श्री कस्तूरचन्द जी लूनिया की दृष्टि इस वालिका का कांटा निकालते समय पदतल की रेखाओं पर पड़ी। वे ऊर्ध्व-रेखा और चक्र पद्म आदि शुभ चिह्न देखकर वोले—यह लड़की तो अत्यन्त भाग्यशालिनी है। इसकी रेखाएं संकेत कर रही हैं कि यह वड़ी प्रसिद्ध और प्रभावशालिनी साध्वी वनेगी। तभी से वे इस वालिका को धार्मिक शिक्षा देने का प्रयत्न करने लगे। उन्होंने चैत्यवन्दन, सामायिक और जीवाजीवादि तत्वों का ज्ञान कराते हुए इन्हें सांसारिक भोग विलासों की असारता और उनका परिणाम भयंकर नरक के दुःख समझाते हुए चारित्र की महत्ता का भी वीच २ में वर्णन करके इनके मन में वैराग्य के वीज

वपन कर दिये थे। यही कारण था कि हमारी चरित नायिका ने अपनी माताजी को अपने विचारों से अवगत करा दिया।

मां ने अपनी पुत्री के विचार पति के सामने रक्खे और कहने लगी—आप भी पूछ लो वह तो ऐसा कहती है! किन्तु जीतमल जी ने हंसते हुए उत्तर दिया—वह अभी वालिका है। उसको सम्भवतः किसी साध्वी जी ने वहका दिया है। वह क्या जाने साधुपने की कठिनताएं ? उसे अभी इतना ज्ञान नहीं है। मैं क्या पूछूं, तुम्हीं उसे समझा दो ऐसी वातें न करे। मेरे तो उक्त वर के साथ शीघ्र ही सम्वन्ध कर देना जंच गया है और विवाह भी इसी वर्ष कर देना है। ऐसा लड़का और वंश फिर मिलना कठिन हो जायगा। साध्वी वनने की भावना तो केवल उसकी वाललीला मात्र है। मैंने तो दृढ़ निश्चय कर लिया है कि इसी वर्ष विवाह कर दूंगा।

पति की आज्ञानुसार कुन्दनदेवी ने पन्नाकुमारी को समझा दिया कि तुम्हारे पिताजी तुम्हें दीक्षा कभी नहीं देंगे। तुम्हारा कर्तव्य हमारी आज्ञा पालन करना है। तुम इस विचार को छोड़ दो।

सुशीला पन्नाकुमारी क्या करती, मौन रहकर भावी के अनुसार सव कार्यों का निर्भर होना समझती हुई निर्लेप भाव से रहने लगीं।

पन्नाकुमारी का सम्वन्ध उक्त श्रेष्ठिकुमार के साथ कर दिया गया। मनुष्य अपनी परिस्थितियों का दास है। वह अनन्तकाल

से परिस्थितियां को अपने अनुकूल बनाने का प्रयास करता आ रहा है। उसका अथक प्रयास अब भी अनवरत चालू है। यह प्रयास सफल क्यों नहीं हो रहा। इस विषय में विरले व्यक्तियों के मन में ऊहापोह, तर्क-वितर्क उठते हैं और इसका समाधान पाने का प्रयत्न करते हैं। जब भौतिक साधनों से इसका समाधान किसी भी प्रकार नहीं होता तभी वे दार्शनिकों की शरण में जाते हैं। शेष सामान्यजन तो अपने आपको परिस्थिति के हाथों समर्पण कर देते हैं। तदनुसार जीतमल जी भी सामान्य व्यक्ति थे। तत्कालीन परिस्थितियों से परिचित थे। कन्या का पिता होना ही चिन्ता का बड़ा भारी कारण था और कन्या विवाह योग्य हो जाय तब तो कहना ही क्या! पास पड़ौस और समाज में चर्चा होने लग जाती थी। अरे! देखो तो इस लड़की के मां-बाप को नींद कैसे आती होगी, इतनी बड़ी लड़की हो गई है।

पन्नाकुमारी की भावना सफल न हो सकी। वे सामान्य लड़कियों से ऊंचा उठना चाहती थीं। अपने अमूल्य मानव जीवन को त्याग-संयम के अवलम्बन और आचरण से सफल बनाने की उनके मन में बड़ी भारी महत्वाकांक्षा थी। वे आत्म-कल्याण के साथ २ परकल्याण का मार्ग अपनाकर चन्दन बाला के पदचिह्नों का अनुसरण करने की अभिलाषा रखती थीं, किन्तु पूज्य पिता की अनिच्छा से वे अपनी इच्छाओं को—भावनाओं को और उदात्त विचारों को फलीभूत न कर सकीं। उन्हें मन में ही संजोए रखा और समय की प्रतीक्षा करने लगीं।

संयम—आत्मोत्कर्ष की साधना में विघ्न करने वालों की कमी नहीं है। पारिवारिक स्नेह सम्बन्धी जन तो प्रायः मोहवश ऐसा करते ही हैं। पर समाज भी इस कार्य में इस पुनीत पथ से विचलित करने में कोई कमी नहीं रखता। यह संयम लेने वाले विरागी की कसौटी है। इस पर खरा उतरने वाला ही योग्य होता है और अपनी दृढ़ता के द्वारा इन सब विघ्न बाधाओं को हटाकर विजयी बनता है।

आषाढ़ कृष्णा ७ विक्रम सं० १६२७ को आप अनिच्छा से विवाह बन्धन में बंध गईं और अपने श्वसुरगृह में पहुंचीं। नववधू के लिए वह अपरिचित स्थान होता है पर उसे ही अब अपना समझने को बाध्य है। सास, ससुर, जेठ, जिठानी, देवर, ननद आदि के साथ विनयपूर्वक व्यवहार रखना पड़ता है और साथ ही यौतुक आदि में कोई कमी रह जाय तो सबके ताने भी सहन करने पड़ते हैं।

पन्ना कुमारी के पिताजी ने यथेष्ट सत्कार और दहेज से अपने इन सम्बन्धीजनों को प्रसन्न कर दिया था। अतः इस नववधू के आगमन से सभी के हर्ष का पारावार न था। नववधू को तथा दहेज को देखकर सब प्रशंसा करते थे।



वज्रपात से अपूर्व लाभ

मानव अपने मन में न जाने कितने प्रकार के सङ्कल्प-विकल्प करता रहता है। वह केवल अपने सम्बन्ध में ही नहीं, अपितु दूसरों के जीवन के विषय में भी स्वर्णिम स्वप्न देखा करता है। इन सङ्कल्प-विकल्पों, आशा-अभिलाषाओं, इच्छाकांक्षाओं का कभी अन्त ही नहीं आता। मनुष्य अपने आप को दीर्घजीवी किंवा अजर अमर सा मानता हुआ भविष्य के काल्पनिक संसार की सृष्टि करने में तल्लीन रहता है। बड़ी २ महत्वाकांक्षाओं के दुर्लंघ्य भूधरों पर आरोहण करने की इच्छा को सतत जाग्रत करता रहता है—यह करूंगा, वह करूंगा, ऐसा करूंगा, वैसा बनूंगा, इत्यादि की मालाएं पिरोता रहता है पर यह विचार कभी किसी पुण्यशाली जीव के ही सफल होते हैं। अधिकतर तो केवल स्वप्न ही स्वप्न में सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करके या असमय में ही निराशा भरे मन से मृत्यु के ग्रास बनते रहते हैं।

मनुष्य की दशा उस मकरन्द लोभी भ्रमर की सी है जो सन्ध्या समय अरविन्द कोष में बैठा हुआ कमल की मधुर गन्ध से मत्त-मोहित बना हुआ विचार करता है—अभी तो काफी प्रकाश है थोड़ा और इस मोहक गन्ध का आनन्द ले लूं, उड़कर तो जाना ही है। अहा! क्या ही अपूर्व सुगन्धि है। थोड़ी देर

और सुख लूट लूं फिर चला जाऊंगा। किन्तु भास्करदेव अस्ताचल पर पहुंच कर अपना रश्मिजाल संवरण कर चुके थे। अस्ताचलगामी सूर्य का प्रकाश कितनी देर ठहरता? सन्ध्याराग भी क्षण भर अपनी शोभा से आकाश और अवनि को अलंकृत कर प्रकाश का अनुगामी वन चुका था। निशा अपने सहयोगी अन्धकार के साथ जगतीतल पर अवतीर्ण हो रही थी। भास्कर के अनन्य प्रेमी अरविन्द ने प्रियविरह से दुःखित हो अपने नेत्र वन्द कर लिए। मकरन्द का लोभी मधुकर कमलकोष में वन्दी हो गया। वह विचार करता है—कोई दुःख की वात नहीं है, रात्रि व्यतीत हो जायगी, सुप्रभात हुआ और कमलविवोधक अंशुमाली अपनी सहस्त्ररश्मियां विकीर्ण करते प्राची के अम्वरतल में आ विराजेंगे तव मेरी मुक्ति निश्चित है। फिर यहां कष्ट भी क्या है? रात्रिभर सुगन्ध का आनन्द प्राप्त होता रहेगा किन्तु उस मोहान्ध को क्या पता कि इतने समय में ही क्या से क्या होने वाला है। वह गन्ध के सुख भोग में मग्न हो रहा है, इतने में तो एक मत्तवारण (हस्ति) उधर आ निकला और उसने अपनी दीर्घसूंड से कमल को उखाड़ कर मुखविवर में रख लिया। हा! वेचारा भ्रमर! उसकी आशालता पर तुषारपात हो गया। प्रातःकाल में मुक्त होकर उड़ जाने की आकांक्षा मन में ही रह गई और वीच में ही कालकवलित हो गया।

इन्हीं भावों को महाकवि भर्तृहरि ने इस प्रकार चित्रित किया है:—

"रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं,
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः ।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे,
हा! हन्त! हन्त! नलिनीं गज उज्जहार ॥"

ठीक यही दशा प्राणीवर्ग की भी है। वह भविष्य के सुनहले स्वप्न देखा करता है और वर्तमान में प्राप्त सुख साधनों के भोग में ऐसा लीन रहता है कि उसे कुछ पता ही नहीं चलता कि जीवन कितना व्यतीत हो गया। जीवन की सन्ध्या आ जाने पर भी वह सोचता है, अभी तो काफी समय है, मरते वक्त कुछ त्याग कर लेंगे, भगवान् का नाम स्मरण कर लेंगे या थोड़ा दान कर देंगे। पर करालकाल ने किसको कब पहले नोटिस दिया है। वह तो बिना पूर्व सूचना के ही आ धमकता है। उसका निरन्तर घूमने वाला चक्र प्रतिक्षण प्राणियों को पीसता ही रहता है। साधारण जीव जन्तुओं से लेकर अवतारी माने जाने वाले महापुरुष, देवेन्द्र, अहमिन्द्र आदि सभी इस सृष्टि के सूक्ष्म से सूक्ष्म व स्थूल से स्थूल प्राणी काल के इस भयङ्कर प्रवाह में बहते रहते हैं। 'जातस्य ध्रुवं मृत्युः' के अनुसार प्राणीमात्र को अपना आयुष्य पूर्ण हो जाने पर एक शरीर को छोड़ कर दूसरा शरीर धारण करना पड़ता है। इसी को हम मृत्यु और जन्म के नाम से जानते आये हैं।

काल की गति बड़ी विलक्षण है और साथ ही इतनी कठोर भी है कि यह किसी को कभी कोई सुविधा या छूट नहीं देती।

संसार की सर्व श्रेष्ठ और अनन्त वलशाली विभूति वीतराग तीर्थंकर महाप्रभु भी इसकी गति में हस्तक्षेप करके अपने आयुष्य को घटाने-वढ़ाने मे असमर्थ ही होते हैं।

ज्ञातनन्दन त्रैशलेय भगवान् महावीर वर्द्धमान का निर्वाणकाल सन्निकट था। इन्द्र ने अवधिज्ञान से जाना निर्वाण समय जन्म की राशि पर २००० वर्ष तक एक ही राशि पर रहने वाला भस्मक ग्रह आ रहा है। भगवान् की दृष्टि पड़ जायगी तो वह उग्र न रहकर निर्वल हो जायगा। उन्होंने भगवान् से कुछ क्षणों के लिए आयु वढ़ाने की विनम्र प्रार्थना की। प्रभु महावीर वोले— देवेन्द्र! ऐसा न कभी हुआ न होता है और न होगा ही कि कोई आयु को घटा वढ़ा सके। संसार की कोई भी शक्ति ऐसा करने की सामर्थ्य नहीं रखती।

वड़े वड़े वलवान् इस वसुन्धरा पर अवतीर्ण हुए, अपने वाहुवल से दिगन्त विजय कर आसमुद्र पृथ्वी के एकछत्र अधिपति-सम्राट् वने। जिनके वैभव, ऐश्वर्य, सम्पत्ति और प्रताप की दुन्दुभि दिग्दिगन्त में वजा करती थी। वीरता और रण निपुणता में जिनकी समानता करने वालों का अभाव सा था, सदा गर्वोन्नत शिखरारूढ़ रहा करते थे। अपने सम्मुख किसी को कुछ समझते ही न थे, जिनके एक कृपा कटाक्ष से रंक राजा वनते थे और जरा टेढ़ी भृकुटि राजा को रंक वनाने में समर्थ थी ऐसे महावलशाली वीरों के भी, जव महाविकराल कराल काल की एक हुङ्कार सुनते हैं तो, छक्के छूट जाते हैं। उनकी सारी वीरता मुख

मोड़कर प्रयाण कर जाती है, सम्पूर्ण अभिमान पद्दलित-सा होकर छटपटाने लगता है।

मृत्यु का अट्टहास भी कितना भयङ्कर है! मनुष्य की सारी शेखी हवा हो जाती है। मन की आशाएं मन में ही लेकर प्राणी परलोक में गमन कर जाता है। सारे विचार धरे ही रह जाते हैं और विवश हो अपने आपको काल के कठोर करों में अर्पण कर देना पड़ता है। विज्ञान के द्वारा संसार को चकित कर देने वाले, अद्भुत प्रकार के आविष्कारों को करने वाले बड़े २ वैज्ञानिकों की तीक्ष्ण बुद्धि भी इस प्राकृतिक कार्यवाही के आगे पराजित है।

हमारी चरितनायिका के पतिदेव भविष्य की सुन्दर कल्पनाओं में तल्लीन थे। मुग्धा किन्तु कर्त्तव्यनिष्ठ नववधू पन्नाकुमारी भी भावी जीवन के सुन्दर स्वर्णिम स्वप्नों को देखती हुई कभी २ आत्म जागृति की उज्ज्वल आभा की झलक पा लेती थी। नियतिवश वह विवाह बन्धन में आबद्ध हो चुकी थी पर उसका मन मुक्त हो क्रीड़ागगन में विचरण को आतुर हो रहा था। कभी सोचती—कैसे कारागार में फंसा दी गई! यहां से कैसे निकलना हो सकेगा! अपने गांव का वातावरण कैसा शान्त और आमोद-मय है। कभी उसके मुख पर उदासीनता की छाया आ पड़ती। कठिनता से चार-पांच दिन व्यतीत हुए। भाई बुधमलजी आपको लेने आ गये। उनसे मिलकर सारी उदासी दूर हो गई। उस वन्दीगृह से छूट जाने की प्रसन्नता से मुख कमल खिल

गया। दो दिन ठहराकर बुधमलजी की अच्छी आवभगत—स्वागत सत्कार किया गया। समय पर अपनी बहिन पन्नाकुमारी को साथ ले बुधमल जी गिरासर की ओर रवाना हुए। फलोधी के बाहर आते ही अपशकुन होने लगे। बुधमलजी का हृदय धड़कने लगा। शहर के बाहर तक पहुंचाने के निमित्त आये हुए जेठमलजी ने कहा—सगाजी साहब ! शकुन ठीक नहीं हो रहे हैं, हम बीनणी को नहीं भेजेंगे, वापिस लौट चलिए। विवश सब लौट आये। उसी दिन श्री दौलतचन्द जी को ज्वर ने आ घेरा और साथ ही वमन तथा दस्त भी होने लगे। वैद्य हकीमों के तथा घरेलू उपचार किये गये। रोग ने हैजे का रूप ले लिया और क्षण २ में हालत गिरने लगी। मेहरचन्द जी तो सन्न रह गये। नव विवाहित पुत्र का इस प्रकार मरणासन्न हो जाना पिता माता के लिए कितना दुःखद होता है, इसका अनुमान भुक्त भोगी ही लगा सकते हैं। बहुत कुछ दौड़-धूप की गई, पर काल की गति अप्रतिहत है। कोई भी उपाय कारगर न हुआ और हमारी चरितनायिका के जीवनसाथी माता-पिता, बन्धु-बहिन, पत्नी आदि समस्त परिवार की असह्य पीड़ाओं और घोर वियोग दुःख की अवहेलना सी करते हुए असमय में ही परलोक में प्रस्थान कर गये। सारे कुटुम्ब-परिवार और शहर में कुहराम और हाहाकार ! मच गया।

इस नवदम्पति ने अभी गृहस्थाश्रम की प्रथम सीढ़ी पर पांव ही रखा था, विवाह का अठारहवां दिन ही तो था। आषाढ़

शुक्ला दशमी के दिन ही पन्नाकुमारी का सौभाग्य सूर्य अचानक ही अस्त हो गया। यह नवीन युगल पूरे अठारह दिन भी अखण्ड न रहा, निर्दय काल रूप मत्तवारण ने ईषद् विकसित सरोज को उखाड़ कर उदरस्थ कर लिया। इस अप्रत्याशित दुःखद घटना से पितृजनों के हृदय विदीर्ण होने लगे, अकस्मात् ही इस वज्रपात के होने से उनके दुःख की सीमा न रही।

पन्नाकुमारी जो अभी मात्र बारह वर्ष की भोली किशोरी थी, इस आकस्मिक घटना से किंकर्त्तव्य विमूढ़ सी हो गई, उनकी समझ में ही नहीं आ रहा था, इस समय उनका क्या कर्त्तव्य है; सबको रोते देख कोमल हृदया पन्नाकुमारी का हृदय भी द्रवित होने लगा, किन्तु इतनी सद्यः विधवा को पूज्यजनों ने कहा—बेटी तुम क्यों रोती हो, जाओ ऊपर चली जाओ। बहिन को लेने आए हुए भाई बुधमलजी ने बहनोई की भयंकर बीमारी देखकर गिरासर भी एक आदमी को उन्हें लिवा लाने भेज दिया था। वे भी सब लोग आ गये थे। श्री जीतमलजी ने जामाता के इस अकाल निधन से अपना सिर पीट लिया।

लौकिक रीति पूर्ण हो जाने पर अपनी पुत्री को साथ ले वे भग्न हृदय से गिरासर लौट आए।

पन्नाकुमारी क्या करे! वह तो पहले ही इस कर्दम में पांव रखने से झिझक रही थी, पर भावी बड़ा प्रबल होता है। कहा भी है :—

"यद्भावी न तद्भावी, भावी चेन्न तदन्यथा।"

होनहार होकर ही रहता है, भावी अन्यथा नहीं हो सकता। केवल सतरह दिन के लिये नववधू का वेष धारण कर वह गृहस्थाश्रम की रंग भूमि पर अवतीर्ण हुई और बिना किसी विशेष अभिनय के ही पटाक्षेप हो गया। जीवन भी एक नाटक ही तो है, अपनी २ अभिनयावधि पूर्ण करके सभी अन्यत्र प्रस्थान करते नव-नव अभिनय करते रहते हैं।

चरितनायिका स्वभावतः ही विनयवती एवं सुशीला थी। इस कारण सभी को प्रिय थी और अब तो वह एक किशोरावस्था वाली विधवा थी अतः पितृगृह एवं श्वसुरगृह दोनों ही स्थानों पर आपके प्रति बड़ी कोमलता और वात्सल्यपूर्ण व्यवहार होता था।

मारवाड़ में छोटी अवस्था वाली विधवाओं पर प्रौढ़ा विधवाओं जैसा कठोर प्रतिबन्ध नहीं होता, उन्हें वर्षों गृह का कोना सेवन करने को बाध्य नहीं होना पड़ता, प्रत्युत धार्मिक शिक्षा देना आवश्यक कर्त्तव्य माना जाता है; माता-पिता, सास-ससुर आदि भी प्रायः स्वयं शोकसन्तप्त रहते हुए अपनी वेश भूषा, खान पान आदि सात्विक एवं सादा बना लेते हैं, एवं स्वयं त्याग तप व संयम का आचरण करते हुए विधवा पुत्री या वधू के दुःख में समभागी बनकर उसे किसी अभाव का अनुभव नहीं होने देते, उसे धर्माचरण के लिए उत्साहित और प्रेरित करते रहते है।

फलोधी को रत्न भूमि माना जाता है, उसने जैन समाज को बहुमूल्य रत्न अर्पण किये हैं। वहां के निवासी स्वभावतः ही

पापभीरु और देवगुरु-धर्म के प्रति अनन्य श्रद्धाशील एवं धर्म-परायण होते हैं। उस युग में तो वर्तमान की अपेक्षा और भी अधिक अखण्ड आस्तिकता रखने वाले थे। धर्म और नीति उनके जीवन का आवश्यक अङ्ग था।

चरितनायिका की जन्म भूमि गिरासर में साधु-साध्वियों का पदार्पण कम होता था, अतः धार्मिक शिक्षा का वहां समुचित प्रवन्ध न होने से पन्नाकुमारी को वहां अधिक रहना रुचिकर न था, उनका मन देव दर्शन और गुरुसमागम के लिए व्यग्र रहता था। उन्होंने सुना कि फलौधी में त्यागी-तपस्वी गुरुदेव सुखसागरजी महाराज साहब अपने शिष्य समूह के साथ एवं साध्वीजी उद्योत श्रीजी महाराजादि भी पधारे हैं, तब वे अपनी वहिन मूलीवाई के साथ फलोधी आ गईं। उधर सुसराल वालों का भी वार २ अनुरोध होता रहता था कि वीनणी को फलोधी भेजो तो हम लिवाने आवें। श्री जीतमलजी ने अपनी पुत्री की भी इच्छा देखी तो सहर्ष भेज दिया।

विचारशील माता-पिता अपनी पुत्री को सुशील और सदाचारी देखना पसन्द करते हैं। साथ ही उनको सन्तान का उत्कर्ष भी प्रिय होता है। पुत्र पुत्री की आदर्श भावनाओं को आदरपूर्वक पूर्ण करने की अभिलाषा रखते हुए उनके आत्मविकास में यथोचित सहायता देने के कार्य को अपना परम कर्त्तव्य मानते हैं। वाल्यावस्था की भावना को मूर्त्त रूप देने के विचार से जीतमलजी ने इस अवसर को सुयोग समझा और पुत्री को भेजने में उन्होंने कोई आनाकानो न की।

सत्संगति का प्रभाव

मनुष्य के जीवन में सत्सङ्गति और सद्ग्रन्थों का श्रवण वाचन-मनन भारी परिवर्तन कर देता है, उनके जीवन में रहे हुए कई दुर्गुण दूर हो जाते और गुणों का विकास होने लगता है। बड़े २ हिंसक अपनी हिंसक वृत्ति त्याग कर करुणा की साक्षात् प्रतिमा बन जाते हैं। व्यसनी लोग दुर्व्यसनों का त्याग करके सदाचारी बन जाते हैं। नास्तिक को आस्तिक बनाने में भी सत्संगति ही पुष्टनिमित्त है। शास्त्रों मे सत्संगति की महिमा अत्यन्त श्रेष्ठ बतलाई गई है। आचार्य सोमप्रभसूरि स्वरचित सूक्तमुक्तावलि मे गुणिसंग का महत्व प्रदर्शित करते हुए फरमाते हैं :—

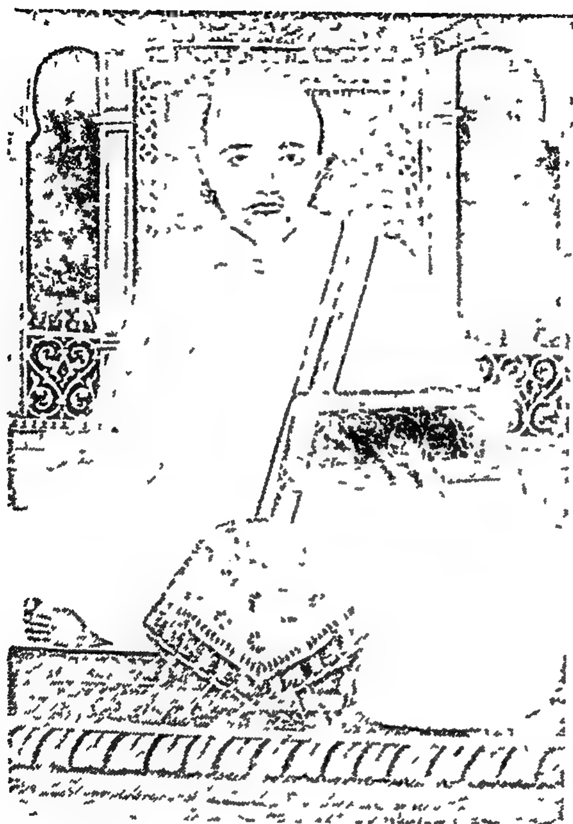
हरति कुमतिं भिन्ते मोहं करोति विवेकितां,
वितरति रतिं सूते नीतिं तनोति विनीतताम्।
प्रथयति यशो धत्ते धर्मं व्यपोहति दुर्गतिं
जनयति नृणां किं नाभीष्टं गुणोत्तमसङ्गमः॥

उत्तम गुणवान महापुरुषों की सङ्गति मनुष्यों का कौन सा अभीष्ट सिद्ध नहीं करती ? कुबुद्धि का हरण कर लेती है, मोह को नष्ट कर देती है, विवेकभाव सम्प्राप्त कराती है, प्रसन्नता वितीर्ण करती है, नैतिकता उत्पन्न करती है, विनयशीलता विस्तृत करती

है, यश वृद्धि करती है, धर्म को धारण करती है और दुर्गति का नाश कर देती है।

पन्नाकुमारी को सौभाग्य से बाल्यावस्था से ही धर्म के प्रति अभिरुचि और समुचित आदरभाव था। माता-पिता आदि के धर्मात्मा होने से उनकी भी धर्मानुष्ठानों में अनन्य श्रद्धा और लगन थी। अब तो अपनी पूर्व भावना को मूर्त्त रूप देने की आकांक्षा प्रतिक्षण बलवती होने लगी। फलोधी में उनका अधिकतर समय देवपूजा, दर्शन, सामायिक व्याख्यानश्रवण, प्रतिक्रमण आदि क्रियाओं में और नवीन तात्विकज्ञान प्राप्त करने में व्यतीत होने लगा। पूर्वोक्त श्री कस्तूरचन्दजी लूनिया से आप जीवविचार, नवतत्व पैंतीस बोल आदि समय २ पर—जब भी फलोधी आतीं, सीखती रहती थीं और अबके तो उन्हें साधु साध्वियों का भी सुयोग सम्प्राप्त हो गया था।

यद्यपि महान् आत्माओं को शिक्षा प्राप्त करने के लिए किसी विद्यालय में प्रविष्ट होने की आवश्यकता नहीं रहती, जीवन के प्रत्येक क्षण उनका अध्ययन कक्ष और प्रत्येक स्थान उनका विद्यालय है। जन्म से लेकर जीवनपर्यन्त वे अपनी विशिष्ट प्रतिभा से नूतन २ ज्ञान का अर्जन करते रहते हैं और तदनुसार आचरण करने में प्रयत्नशील रहते हुए आत्म विकास करते रहते हैं तथापि गुणीजन-संसर्ग के लिए उनकी आत्मा उत्कण्ठित होती रहती है और किसी गुणीजन के दर्शन का और वार्त्तालाप का सुयोग मिल जाने पर तो कहना ही क्या! उनके रोम-रोम से



चरितनायिका के गुरुवर्य समुदायाधीश शासनरत्न
पूज्येश्वर स्व० श्रीमत् सुखसागरजी म० सा०

हर्षोर्मियां उछलने लगती हैं, अपूर्व और एक नवीन स्फूर्ति आ जाती है, उत्साह का सागर हिलोरें लेने लगता है, यही उनके जीवन मे हुआ।

फलवर्द्धि में उस समय महान् धर्म धुरन्धर तपोमूर्ति त्यागी शिरोमणि खरतर गगन नभोमणि स्वनामधन्य प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद गुरुवर्य्य श्रीमान् सुखसागरजी महाराज साहब का चातुर्मास था। नगर निवासीजन उनकी वैराग्यमय देशनासुधा का पान करके भौतिक वस्तुओं की नश्वरता जानकर विषयविष से विरक्त होने लगे। इन अद्भुत महात्मा के त्याग, तप और संयम पालन की तत्परता देखकर मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगे।

इधर इन्हीं की आज्ञा में विचरने वाली पू० गुरुवर्या श्रीमती उद्योतश्रीजी महाराज साहिबा भी अपनी शिष्याओं—श्रीमती लक्ष्मीश्रीजी म०, श्रीमती मग्नश्रीजी म० आदि के साथ फलोधी में ही पधारी हुई थीं।

चरितनायिका भी अपने परिवार की वृद्धाओं के साथ व्याख्यान श्रवणार्थ आया करती थीं, एवं चौपाई श्रवण करने तथा प्रतिक्रमण करने साध्वी जी के उपाश्रय में भी आना होता था।

लघुवयस्का विधवा इन पन्नाकुमारी पर श्रीमती उद्योतश्री जी महाराज का दृष्टिपात हुआ तो उनका हृदय करुणा से द्रवित हो गया। साथ ही शारीरिक चेष्टाओं और सुलक्षणों को देखकर वे आश्चर्याभिभूत हो गईं। उनके मन में प्रश्न उठने लगा कि

ऐसी सुलक्षणी होते हुए यह विवाह होते ही विधवा कैसे हो गई ? बड़ी विचित्र बात है ! कुछ समझ में नहीं आता ! उन्होंने बड़े प्रेम से अपने पास बैठाकर उनके सिर पर हाथ फेरते हुए वात्सल्यभाव प्रदर्शित किया। क्या २ धार्मिक शिक्षा प्राप्त की— यह भी स्नेहपूर्वक पूछा।

आपने करबद्ध हो विनम्र शब्दों में कहा—मुझे चैत्यवन्दन सामायिक प्रतिक्रमण आदि आते हैं तथा जीव विचार नवतत्व मूल सीखे हैं, अभी अर्थ नहीं आता, पैंतीस बोल भी सीखे हैं। अब मैं आपसे भी कुछ सीखना चाहती हूं।

गुरुवर्य्या यह सुन्दर मधुर वचनावलि सुनकर बड़ी प्रसन्न हुईं और बोलीं—बहुत अच्छी बात है। अब तुम प्रतिदिन हमारे पास आया करो। हम तुम्हें उक्त प्रकरणों के अर्थ और प्रतिक्रमण आदि के अर्थ सिखायंगी। पन्नाकुमारी ने अञ्जलिपूर्वक आज्ञा शिरोधार्य की और समय हो जाने से तथा सासूजी के जल्दी करने से वे वन्दना करके चली गईं।

अब वे प्रतिदिन प्रातःकाल देव दर्शन करके श्रीमती जी के पास उपस्थित हो जातीं और अपना पाठ सुनाकर नवीन पाठ ले लेतीं। पन्नाकुमारी की बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। पाठ तो उन्हें पूर्व सीखे हुए की तरह देखते ही याद हो जाता था। ऐसी अद्भुत और तीव्र स्मरणशक्ति देखकर सभी आर्याएं चकित हो जाती थीं।

समय समय पर गुरुवर्या उनके मनोभाव जानने का प्रयत्न करती रहती थीं। पर वे अभी तक अपनी आकांक्षाएं प्रकट करने

में पूज्यजनों के भयवश इच्छा होते भी अधिकतर मौन ही रहती थीं या उस बात को टालने के लिए अन्य ज्ञानचर्चा करने लग जाती थीं।

उनके मन में अनेक प्रश्न कई दिनों से उद्‌भूत हो रहे थे कि इस जैन समाज मे ये भिन्न भिन्न गच्छादि क्यों हैं? स्थानक वासी मुहपत्ति क्यों बांधते हैं? ये मन्दिर में भगवान् के दर्शन पूजन क्यों नहीं करते? इत्यादि।

इन जिज्ञासाओं को पूर्ण करने का यह शुभ अवसर था। एक दिन गुरुवर्या के सम्मुख हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना की—भगवति! कृपा करके मेरी कुछ जिज्ञासाओं को शान्त करिये, मेरी इच्छा कई दिनों से पूछने की हो रही है।

गुरुवर्या उद्योतश्री जी ने सस्मित कहा—पन्ना! कहो न, क्या पूछना चाहती हो? पन्नाकुमारी ने मृदु स्वर में कहा—महाराज साहिबा! ये खरतर गच्छ, तपागच्छ आदि नाम क्या हैं? ऐसे नाम किस कारण से दिये गये हैं?

उद्योतश्री जी महाराज ने शान्तभाव से उत्तर दिया—भद्रे! हमारे इस जैन शासन मे कई आचार्य बड़े प्रभावशाली हुए हैं। उनमें विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में एक वर्द्धमान सूरि के शिष्य आचार्य जिनेश्वर-सूरि भी हुए। वे बड़े भारी विद्वान् और त्यागी तपस्वी थे। अणहिलपुर पाटण में वहां के नरेश की सभा में चैत्यवासी शिथिलाचारियों के साथ उन्होंने शास्त्रीय विषयों और साध्वाचार के विषय में वाद-विवाद किया था। चैत्यवास

शास्त्र विरुद्ध सिद्ध हो जाने पर पाटण नृपति दुर्लभ राज ने उन्हें 'खरतर' विरुद् से सम्मानित किया। तभी से उनकी शिष्य परम्परा खरतर कहलाती है। ऐसे ही एक 'जगच्चन्द्र सूरि' नामक तपस्वी आचार्य विक्रम की १२वीं शताब्दि में हुए, उनके महान् तप से प्रभावित होकर चित्तौड़ के राजा ने उन्हें 'तपा' विरुद् से समलङ्कृत किया, तभी से उनकी शिष्य परम्परा 'तपागच्छ' के नाम से विख्यात हुई है।

पन्नाकुमारी ने विनम्र भाव से कहा—ऐसी बात है तब तो सब एक ही हैं कोई विशेष कारण नहीं। पर ये स्थानकवासी मन्दिर में क्यों नहीं जाते? भगवान् के दर्शन पूजन क्यों नहीं करते?

श्रीमती उद्योतश्री जी महाराज ने गम्भीर वाणी में उत्तर दिया—शुभे! एक लौकाशाह नाम का श्रावक लेखक था। किसी कारण से वह मुनियों के साथ द्वेषभाव रखने लगा था। उसने अनेकों को यह कहकर कि मन्दिर बनवाने व प्रभुपूजा में हिंसा होती है, अतः न करना चाहिये। पूजा में धर्म बताने वाले मिथ्यात्वी हैं। उनको साधु मानना मिथ्यात्व है। कुछ भोले अशिक्षित लोग उनकी बातों में आ गये और दर्शन पूजन करना छोड़ दिया। उसने कितने ही गुर्वाज्ञाबाह्य द्रव्यलिङ्गियों को अपनी शास्त्रविरुद्ध मान्यता के पक्ष में करके उनका नाम 'लौकागच्छ' दे दिया तभी से स्थानकवासी समाज की उत्पत्ति हुई। स्थानकवासी समुदाय इस लौकाशाह को अपना आदि पुरुष मानता है।

मुंहपत्ति मुख पर वांधने का नियम तो एक लौकागच्छी साधु 'लवजी' ने वनाया, पहले नहीं वांधते थे।

पन्नाकुमारी की कई दिनों की शंका का निवारण हो जाने से वह बड़ी प्रसन्न हुई और बोलीं—आज आपश्री ने मेरी वहुत पुरानी जिज्ञासा शान्त कर दी। मेरा विचार बाल्यावस्था में ही दीक्षा लेने का था। पर भाग्य में तो वैधव्य की विडम्बना भोगनी बदी थी। अब भी भावना तो है किन्तु········

"किन्तु क्या ? गुरुवर्या ने जानने की जिज्ञासा की।"

आज्ञा मिलेगी या नहीं, यही दुविधा मन की बात मन में ही रखने को विवश कर रही है। अभी आप किसी से न कहें।

बाई ! अपनी भावना दृढ़ हो तो कोई किसी को नहीं रोक सकता ! अच्छा ! हम किसी से नहीं कहेंगी, तुम विश्वास रखना। अपने भावों को दृढ़ बनाने का प्रयत्न करती रहना। इतना कह कर गुरुवर्या उद्योतश्री जी महाराज चुप हो गई। और गुरु महाराज को वन्दना करने का समय होने से वे शिष्याओं को साथ ले वन्दना करने चली गई। इधर हमारी पन्नाकुमारी भी विचारों में मग्न घर की ओर चल पड़ीं।



समुदाय का परिचय

एक दिन पन्नाकुमारी ने गुरुवर्या श्रीमती उद्योतश्रीजी महाराज से प्रश्न किया—पूज्यवर्ये ! आपने उस दिन मेरी बहुत सी जिज्ञासाओं को शान्त किया था। अब कृपा करके यह भी बतलाइये कि सुविहित पक्ष नाम कैसे प्रसिद्ध हुआ और श्वेताम्बर समाज में साधु-साध्वियों के वस्त्र हल्के कत्थई रंग के कैसे हैं ? (उस समय ऐसे ही वस्त्र धारण किये जाते थे)।

श्रीमती उद्योतश्री महाराज ने कहा—शुभे ! तुम्हारी जिज्ञासु-वृत्ति से मैं बड़ी प्रसन्न हूं। यह तुम्हारी विचक्षण बुद्धि की द्योतक है। अच्छा ! तो सुनो—प्राचीन काल में कितने ही यतिजन चैत्यों में निवास करने लग गए थे और राज्याश्रय पाकर पवित्र साधुधर्म के विपरीत शिथिलाचारी बन गये थे। श्री जिनेश्वर सूरि ने 'सुविहित' साधु मार्ग अपनाया। तभी से उनकी परम्परा सुविहित खरतर गच्छ कहलाती है। कत्थई वस्त्र तो श्री जिनभक्ति सूरि जी महाराज के समय में परमसंवेगी तथा गीतार्थ उपाध्याय प्रीतिसागर जी महाराज से धारण किये जाने लगे। ऐसा सुना है जो इस प्रकार है।

जिन भक्ति सूरि के शिष्य बुद्धि विचक्षण परम त्यागी वैरागी गणिवर्य श्रीमान् प्रीतिसागर जी महाराज हुये हैं। तत्कालीन यति समाज में शिथिलाचार प्रवेश करने लग गया था। इस बृहत्

खरतरगच्छ में इन्हीं के द्वारा परम वैराग्य रंगरंगित संवेग कल्पवृक्ष पुनः पल्लवित एवं पुष्पित हो गया और शुद्धाचार की परम्परारूपी सरित् का प्रवाह प्रचलित हो गया। आपने पवित्र तीर्थ सिद्धगिरि पर जाकर यतिवेष का परित्याग करके पुनः पंच महाव्रत धारण किये और कत्थई वस्त्र (श्वेताम्बर खरतर गच्छीय यति समाज से पृथकत्व सूचक) भी धारण कर लिए। कितनी ही पट्टावलियों में कत्थई वस्त्र प्रशिष्य महोपाध्याय क्षमाकल्याण जी ने धारण किये ऐसा उल्लेख है। इनके उत्तराधिकारी वाचनाचार्य श्री अमृतधर्म जी हुये। इनके पद पर महा महोपाध्याय श्री क्षमाकल्याण जी महाराज हुए जिनके नाम का वासक्षेप डाला जाता है। आप बड़े विद्वान् और प्रभावशाली थे। आगमवेत्ता एवं सकल जैन संघ के मान्य थे। आप कई ग्रन्थों के रचयिता थे। संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं के प्रकाण्ड पण्डित एवं कवि थे। आपके रचित ग्रन्थ प्रायः सभी उपलब्ध हैं। आपका विस्तृत चरित्र नाहटा बन्धुओं द्वारा प्रकाशित हो चुका है। इनके पट्ट पर श्री धर्मानन्द जी महाराज हुए। इनके उत्तराधिकारी श्रीमान् राजसागर जी महाराज हुए। आप बड़े विद्वान् थे। आपने अपने ज्ञान एवं तर्क-बल द्वारा मिथ्यात्वमत को प्राप्त अनेकों जैनियों को पुनः जैन धर्म में श्रद्धालु बनाकर शासन सेवा की तथा कई जनों को अभक्ष्य का त्याग करवाया। अपनी आत्मा का कल्याण करते हुये शासन सेवा भी खूब बजाई।

इनके पट्ट पर असाधारण विद्वान् चमत्कृत विभूति श्रीमान् ऋद्धिसागर जी महाराज साहब हुये। उन्होंने पवित्र तीर्थाधिराज

श्री आबू गिरि पर होने वाली अनेक आशातनाएं दूर करवाईं। आपके ऊपर कई प्रकार के उपसर्ग भी इस कारण आये किन्तु आपने धीरतापूर्वक उन सबका सामना किया एवं तत्कालीन ब्रिटिश गवर्नमेंट से ११ नियम रजिस्टर्ड करवा कर लागू करवाये थे। जैसे—तीर्थ भूमि पर शिकार, मांस भक्षण, मद्यपान, जूते पहने मन्दिर में प्रवेश आदि न करना आदि।

विक्रम संवत् १६०६ में श्री राजसागर जी म० एवं ऋद्धिसागर जी म० का पधारना भारत के पेरिस राजस्थान के गुलाबी नगर जयपुर में हुआ। आपने वहां के श्रावकों की आग्रह भरी विनती को मान देकर चातुर्मास करने की स्वीकृति प्रदान कर दी। संघ में प्रसन्नता की लहरें दौड़ गईं। गुरु महाराज की वैराग्यरस स्राविणी अमृतमधुर देशना को श्रवण करने जनता का उत्साह उमड़ पड़ा। काफी संख्या में श्रोताजनों का आगमन होने लगा। प्रभावशालिनी वाणी ने अद्भुत कार्य किया। सरसा (हिसार जिले में) निवासी एक युवक 'सुखलालजी' जो संसार से उद्विग्न होकर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए, जयपुर संघ के अग्रगण्य राजमान्य दीवान माणकचन्द जी लक्ष्मीचन्द जी गुलेछा के यहां 'मुनीम' पद पर प्रतिष्ठित थे, इन गुरु महाराज के पास भागवती दीक्षा धारण करने का विचार करने लगे। युवक सुखलाल जी की उम्र उस समय २५ वर्ष की थी। वे तो कई वर्षों से ऐसे गुरुओं के समागम की प्रतीक्षा में थे। सेठ जी के दुकान सम्बन्धी कार्य से निवृत्त होकर वे अपना अधिक समय उक्त गुरु महाराजों की संगति सेवा में ही व्यतीत करने लगे। एक दिन अपनी हार्दिक

अभिलाषा गुरु महाराज से निवेदन करने लगे—हे गुरुवर्य! मेरी उत्कृष्ट भावना है कि मैं संयमी बनूं और इसी लिए मैंने अभी तक विवाह भी नहीं किया। अब आप मुझे शीघ्र से शीघ्र दीक्षा देने का अनुग्रह करके कृतार्थ करें।

यद्यपि उस समय चातुर्मास था और चातुर्मास में प्रतिष्ठा दीक्षा आदि मंगल कार्यों का शास्त्रों में निषेध है। परन्तु वैरागी की उत्कट इच्छा हो तो भाद्रपद मास में दीक्षा दी जा सकती है। शास्त्र नियमों मे उत्सर्ग अपवाद तो होता ही है जो स्याद्वाद का ही रूप है। सद्गुरु राजसागरजी ने द्रव्य क्षेत्र काल भाव का विचार करके दीक्षा देने की स्वीकृति प्रदान कर दी। तदनुसार 'श्री सुखलालजी' की दीक्षा विक्रम संवत् १६०६, भाद्रपद शुक्ला ५ को शुभ मुहूर्त्त में हो गई। दीक्षा महोत्सव दीवान सेठ माणकचन्दजी लक्ष्मीचन्दजी साहब की ओर से खूब धूम-धाम पूर्वक किया गया था। नवदीक्षित मुनि का नाम 'सुखसागरजी' रखा गया और श्रीमान् ऋद्धिसागरजी म० के शिष्य घोषित किए गये। चातुर्मास बाद इन मुनिराजों का विहार मारवाड़ की तरफ हो गया। अपने पवित्र चरणों से मारवाड़ की भूमि को पावन करते हुये भगवान् महावीर के सिद्धान्तों का प्रचार करते हुए विचरने लगे।

श्री ऋद्धिसागरजी म० सा० को गुरु म० राजसागरजी ने इनकी असाधारण विद्वत्ता एवं योग्यता देखकर 'गणि' पद से विभूषित किया। इस मरुभूमि में धर्म की वृद्धि होनी आवश्यक

है, ऐसा सोचकर श्री गणिवर्य ऋद्धिसागरजी म० सा० को शिष्य सहित पृथक् विहार करने की आज्ञा प्रदान की। गुरु महाराज के समीप में ही रहने की इच्छा होते हुए भी आज्ञा को शिरोधार्य कर मानो मूर्तिमान 'शम' ही हो, ऐसे वे गुरु-शिष्य अनेक नगर ग्रामादि को पवित्र करते हुए एवं अपने प्रभावशाली उपदेश द्वारा अनेक भव्यजीवों को सन्मार्गगामी बनाते हुए विक्रम सं० १९२५ में इस फलवर्द्धि नगर में पधारे। यहां पर 'भगवानदास' नामक एक संसारोद्विग्न महाशय ने आपके प्रभावशाली उपदेश से आकृष्ट हो भागवती दीक्षा धारण की जो श्री भगवानसागरजी महाराज के नाम से प्रसिद्ध और विद्यमान हैं।

ऐसे २ अनेक इस पवित्र खरतरगच्छ में होने वाले महापुरुषों के चरित्र का वर्णन करने को भला कौन समर्थ हो सकता है? इस गच्छ में होने वाले आचार्य, उपाध्याय, गणि, वाचनाचार्य मुनि साध्वी श्रावकवर्ग आदि ने जैनशासन की भारी सेवा की है। हे श्राविके! रत्नजटित मुकुट के समान उज्ज्वल कान्ति वाला हमारा खरतरगच्छ ऐसे प्रसिद्ध हुआ। इस गच्छ रूप मुकुट में रहे हुए बड़े २ रत्नवत् साधुजन स्वयं भी शोभित हुए एव अन्यों को अर्थात् धारण करने वालों को भी सुशोभित किया। यद्यपि महान् आत्माओं का चरित्र निधि अपार है परन्तु विस्तार के भय से मैंने तो संक्षेप से कहा है। मेघों के थोड़े बरसने से ऐसा नहीं माना जा सकता कि उनमें अब जल नहीं है। उसी प्रकार मैंने थोड़े से महापुरुषों का संक्षिप्त परिचय दिया है। इस गच्छ में

अनेकों विद्वान् साधु व अनेक प्रभावशाली गृहस्थ भी हुए हैं। इतना कह कर उद्योतश्रीजी विश्रान्त हो गये। थोड़ी देर बाद बोले—हे शुभे! इस प्रकार हमारी परम्परा और समुदाय का परिचय लेशमात्र तुम्हें दिया है।

चरितनायिका पन्नाकुमारी यह सब सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई और संयम लेने का बीज योग्य जलसिंचन से अंकुरित हो गया। उधर भगवान् भास्कर भी अस्ताचल की ओर जाने को उद्यत हो गये।

सती पन्नाकुमारी ने भी समय देखकर साध्वीजी को वन्दना करके अपने घर की ओर प्रयाण किया। हृदय समुद्र में भावनाओं की उत्ताल तरंगें उच्छलित हो रही थीं। विचारों की उत्कर्षता से मुख अपूर्व तेज से शोभायमान हो रहा था। उन्होंने गज गति से चलते हुए गृह में प्रवेश किया।

वैराग्य का उद्भव

गणाधीश्वर सुखसागरजी महाराज साहब के व्याख्यान सुनने को अनेक श्रावक श्राविकादि का आगमन होता था; पर हमारी चरितनायिका का सुनना केवल सुनने तक ही सीमित नहीं था। वे श्रवण किये हुये तत्वज्ञान को मनन करके आत्मसात् कर लेती थीं। वे उस अमूल्य वचनामृत का पान करके अपूर्व आनन्द में झूमने लगती थीं। उन्होंने श्रवण के अनुसार आचरण करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था।

मध्यान्ह में स्वनामधन्या श्रीमती उद्योतश्रीजी महाराज उन्हें उन कमलकोमला, ऐश्वर्यशालिनी महारानियों, श्रेष्टपत्नियों, राजकुमारियों, श्रेष्टिपुत्रियों आदि के विशद चरित्र सुनाती थीं जो अपनी तरुणावस्था में अथच बाल्यवय में ही भोग-विलास की अतुल सामग्रियों और कुबेरतुल्य धन-वैभव को ठुकराकर आत्मसाधना के कठिन पथ की पथिक बन चुकी थीं। ये चरित्र वैराग्य को अधिकाधिक जागृत करने लगे। उनके मानस में वैराग्य का राजहंस किलोलें करने लगा और संसार के भोग-विलास भुजंग सदृश भयंकर प्रतीत होने लगे। कुटुम्बी जनों का स्नेह भवजालरूप भासमान होने लगा था। गृहस्थाश्रम के कार्य-कलाप चतुर्गति में भ्रमण कराने वाले कर्मबन्ध के कारणरूप हैं, ऐसा दृढ़ निश्चय हो गया था। पूज्येश्वर के व्याख्यानों एवं महासती उद्योतश्रीजी म० के मर्मस्पर्शी, ओजपूर्ण, हृदयग्राही

वैराग्यरस प्रधान चरित्रादि ने सुप्त वैराग्य भावना को जागृत कर दिया था।

प्रवुद्ध आत्माओं के लिए सामान्य सा संकेत भी दिशासूचन का कार्य करने को समर्थ होता है। आत्मभान होने वाला होता है तो साधारण सी घटना से हो जाता है और यदि नहीं होने वाला है तो अनन्तानन्त कालचक्र से घोरातिघोर दुखों-कष्टों में पिसते हुये भी नहीं होता।

आत्मा में योग्यता हो तो किसी भी निमित्तकारण को प्राप्त करके वह अपने कर्त्तव्य पथ पर आरूढ़ हो जाता है। उक्त पूज्यों का उपदेश श्रवण करने वाले अनेकानेक व्यक्ति थे। परन्तु पूर्व-जन्म के संस्कारों के विना किसी भी मनुष्य को आत्मभान नहीं हो सकता। हमारी चरितनायिका जिन्हें पूर्व संस्कारवश किशोरावस्था में ही वैराग्य की भावना उद्भूत हो गई थी, अब तो उन्हें अहर्निश गुरुवर्य के मुख से सुने हुए तात्विक व्याख्यान एवं गुरुणीजी से सुनी हुई महासतियों की जीवनियां चित्रपट सदृश दृष्टिपथ मे अवतीर्ण होने लगीं। विचार उठने लगे—"अहा! कैसी त्याग तपो मूर्तियां थीं वे। यौवन की उन्मत्त अवस्था में कैसी विलक्षण जागृति! कैसी कठोर आत्म साधना! जो अपूर्व भोग सामग्री उन्हें सम्प्राप्त थी, उसे ठुकराने का कितना साहस! धन्य हो! अनन्तशः धन्य हो!!"

"वे महासती राजिमती और चन्दनवाला मुझ जैसी ही किशोरियां थीं। उन सिंहनियों को गृहस्थाश्रम रूपी पिंजरे में

डालने का कितना प्रयत्न किया गया। किन्तु वे सच्ची और साहसिक सिंहनियां थीं, बिल्कुल नहीं फंसीं। मैं कुमारावस्था में ही हिम्मत करके विवाह के बन्धन में फंसने को सर्वथा अस्वीकार कर देती तो यह वैधव्य की विडम्बना क्यों सहन करनी पड़ती। मेरे सामने ही मेरे पतिदेव—जीवन साथी का अकाल में ही आकस्मिक निधन हो गया, फिर भी क्या मैं जागृत न होऊं? यह घटना मुझे जागृत करने ही आई थी। यह मेरे लिए चेतावनी थी कि एक दिन तुझे भी इसी प्रकार कालकवलित होना पड़ेगा। अब तक मेरी जीवन नौका लक्ष्यविहीन यों ही संसार समुद्र में भटक रही थी; परन्तु अब तो मुझे इन गुरुवर्या सदृश प्रकाश स्तम्भ दृष्टिगोचर हो गया है। अब मैं अपनी जीवन नैया को इधर-उधर गोते नहीं खाने दूंगी। यदि प्रकाश स्तम्भ पाकर भी कोई भटकता रहे तो उसके जैसा मूर्ख कौन होगा? उसका उद्धार होना कठिन ही नहीं असम्भव है। मेरा गाढ़बन्धन तो भाग्यवश स्वतः ही टूट गया है। अब तो केवल स्वजनों के स्नेह बन्धन को काट डालना है जो विशेष कठिन और दृढ़ नहीं है, सरलता से कट जायगा।

यह संसार अगणित कष्टों से भरा हुआ है। जन्म जरा और मृत्यु के अतिरिक्त असंख्य प्रकार के दुःख संसारी प्राणी को भोगने पड़ते हैं। सुख की अभिलाषा से भोगे जाने वाले भोग परिणाम में दुःखप्रद ही हैं। जैसे विषमिश्रित मिष्ठान्न खाने में स्वादिष्ट भले ही लगे; पर फल तो प्राणान्तक ही होता है। इस

जीवन का क्या विश्वास ! न जाने आयु कब समाप्त हो जाय ! मनुष्य बहुत लम्बी बातें सोचता है, आशाओं-अभिलाषाओं के हवाई महल खड़े करता रहता है, उसकी आकांक्षाओं-इच्छाओं का कभी अन्त ही नहीं आता। पर एक क्षण जीवन में ऐसा आता है कि सब विचार धरे ही रह जाते हैं। स्वजन-परिजन, धन-वैभव भवन-उपवन ही नहीं इस तन को भी यहीं छोड़ कर आत्मा को पर भवमें गमन करना पड़ता है। इन नश्वर और छूट जाने वाले पदार्थों पर ममत्व रखना, इनकी प्राप्ति का उपाय करना ही क्या मानव जीवन का लक्ष्य है ? नहीं नहीं ! मानव जीवन का लक्ष्य मुक्ति है, जहां आत्मा केवल चिन्मय, ज्ञानमय और अक्षय, अजर, अमरत्व की स्थिति में निवास करता है। मुझे बड़े पुण्योदय से मानवदेह मिली है। इसकी सार्थकता तभी है जब मैं इस नश्वर शरीर से आत्महित की साधना करूं। मुझे शीघ्रातिशीघ्र सावधान हो जाना चाहिये !" इस प्रकार के विचारों की प्रबल वेगवती सरिता उनकी हृदय भूमि में प्रवाहित होने लगी। खाते पीते, सोते जागते, उठते बैठते, इसी भाव में तल्लीन रहती थीं। कभी २ तो विचारों की ऐसी अटूट शृंखला बनती चली जाती कि घण्टों व्यतीत हो जाने पर भी भान ही नहीं रहता कि क्या समय हो गया और कब क्या करना है।

आपकी वैराग्य भावना क्षण क्षण बढ़ने लगी, और अपने मन में आपने दृढ़ निश्चय कर लिया कि मैं इन आर्यारत्न के चरणों का आश्रय लेकर आत्म साधना करूंगी-संयम, तप और

त्याग से अपने जीवन को सफल बनाऊँगी। भगवान महावीर के शासन की सैनिका बनकर उनके पवित्र उपदेशों पर आचरण करती हुई मानव के आदर्श लक्ष्य को प्राप्त करूँगी।

यह है हमारी उस चरित्र नायिका की वैराग्य दृढ़ता का संक्षिप्त दिग्दर्शन! भावी जीवन को उन्नत बनाने का शुभ संकल्प!! भला ऐसा कौनसा कार्य है जो संकल्प दृढ़ता से सिद्ध न होता हो? शुभ संकल्प से आत्मा सर्वोन्नतपद—मोक्ष-निर्वाणपद तक प्राप्त कर सकता है और इसी प्रकार अशुभ संकल्प—बुरे विचार उसे सप्तम नरक का मार्ग दिखला सकते हैं। सारी सिद्धियाँ संकल्प बल पर ही आश्रित हैं। संकल्प की प्रबलता और दृढ़ता मानव को महा-मानव बनाने में समर्थ हैं।

पन्नाकुमारी ने संयम के कठोर पथ पर चलने का दृढ़ संकल्प कर लिया है। साधना के दुर्गम मार्ग पर अग्रसर होने की उत्सुकता लगी हुई है; अब वे सारी बाधाओं का कौटुम्बिकजनों के द्वारा किए जाने वाले विघ्नों का वीरतापूर्वक सामना करती हुई किस प्रकार अपने ध्येय को प्राप्त करती हैं यह आगे के परिच्छेदों में अवलोकन करिये।

—:o:—

संकल्प की दृढ़ता व आज्ञा प्राप्ति

संकल्प की दृढ़ता कार्य सफलता में प्रधान हेतु है। आदर्श व्यक्ति कर्त्तव्य का दृढ़ संकल्प करके उससे पुनः विचलित नहीं होते। उन्हें किसी भी प्रकार की विघ्न बाधाएं चलायमान नहीं कर सकतीं। शत्रु, संकट और आपत्तियां भी उन्हें अपने ध्येय से विचलित करने में समर्थ नहीं होतीं। वे अपनी संपूर्ण शक्ति से विघ्न बाधाओं—संकट—आपत्तियों का धैर्यतापूर्वक सामना करते हुए, उन्हें पराजित करके अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं। उनके हृदय में इस मंत्र का सर्वदा ध्यान रहता है :—

"न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः"

भावार्थः—बुद्धिमान व्यक्ति न्याय मार्ग से एक कदम भी इधर उधर नहीं हटते।

"कार्यं साधयामि देहं पातयामि वा"

भावार्थः—कार्य को सिद्ध करूंगा अथवा शरीर नष्ट कर दूंगा।

की प्रतिज्ञा करके ही वे कार्य में प्रवृत्त होते हैं।

इन शूरवीर व्यक्तियों का संकल्प इतना अधिक दृढ़ और प्रबल होता है कि विघ्न स्वयं ही भयभीत होकर उनके मार्ग से हट जाते हैं, बाधायें सुविधारूप बन जाती हैं। संकट व आपत्तियां

सहायिका के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं और शत्रु मित्र वन जाते हैं।

हमारी चरितनायिका महानुभावा भी ऐसे ही आदर्श व्यक्तियों में थीं। उन्होंने संयम पथ की पथिका वनने का अपने हृदय में दृढ़ संकल्प कर लिया था और उनके मनोभाव व्यवहार, वोल-चाल, कार्य प्रणाली आदि द्वारा स्वजनादि पर प्रकट भी होनें लग गये थे।

एक दिन सासूजी महोदया ने पूछ ही लिया—वीनणी! क्या कारण है तुम आजकल घर के काम धन्धे में मन नहीं लगाती हो और हर समय गम्भीर सी वनी हुई विचारमग्न रहती हो।

हमारी उन अद्भुत विरागिनी ने विनम्र शब्दों में कहा—माताजी मेरा मन संसार से ऊव गया है, आरम्भ के कार्य करते मेरी आत्मा दुर्गतिगमन के भय से कांपती है।

"वस वस! रहने दो। मैं तो पहले ही जान गई थी कि ये जो दिन में तीन २ वार व्याख्यान चौपाई प्रतिक्रमण आदि के लिए उपाश्रय में जाना आना होता है, यह अवश्य ही नया रंग लायगा।" इस प्रकार वड़वड़ाती हुई वे किसी आवश्यक कार्यवश वाहर चली गईं।

पन्नाकुमारी की वड़ी वहिन जिनका नाम मूलीवाई था, वहीं फलोधी में व्याही थीं। वे प्रायः नित्य ही अपनी वहिन को सान्ध्य भोजन के लिए अपने घर आमन्त्रित किया करती थीं। (मारवाड़ के कई नगरों में ऐसी रीति है)।

एक दिन पन्नाकुमारी ने अपनी मनोभावना उनके सामने व्यक्त की। यद्यपि मूलीबाई ने पहले ही अनुमान कर लिया था फिर भी लघुभगिनी की परीक्षा करने के लिए वे जरा तेज होकर बोलीं—बस २ रहने दो, अपने विचार अपने पास! सुन रखे हैं! तुम अभी नादान हो, संयम की कठिनता को तुम क्या जानो? मोम के दांत से लोहे के चने चबाना है, तलवार की धार पर चलना शायद इतनाकष्टप्रद नहीं है, जितना चारित्र के नियमों पर चलना है। यह तो नंगे पांव शूलों पर चलना है! कोई विरले शूरवीर ही महावीर के इस विषम संयमपथ का अनुसरण करने को कटिबद्ध होते हैं। सामान्य जन तो इसकी दुष्करता देखकर दूर से ही नमस्कार करते हैं, अपनी असमर्थता प्रकट कर देते हैं। यह वीरों का मार्ग है, कायरों का नहीं। जरा सोच समझकर बात निकालना। ये हाथी के दांत हैं, बाहिर निकलने के बाद पुनः अन्दर नहीं जाया करते। धर्मध्यान करना है तो घर बैठे ही करो, कौन मना करता है? साधु जीवन में रहना तो अत्यधिक दुष्कर कार्य है, कोई नानी का घर नहीं! तुमने साधु-साध्वियों के आचरण के विषय में अभी जाना ही क्या है? एकदम ऐसा साहस करना ठीक नहीं। त्यागवृत्ति का अनुभव करने के लिए गृहस्थाश्रम में ही रहती हुई, तप संयम का आचरण करो।

श्रीमती मूलीबाई का छोटी बहिन पन्नाकुमारी पर असीम स्नेह था, उस पर असामयिक वैधव्य का वज्रपात हो जाने से उन्हें भी

कम दुःख नहीं हुआ था। अपनी इस बहिन की ऐसी वैराग्यभावना से उन्हें हार्दिक प्रसन्नता हुई। वे स्वयं धर्म के प्रति अनन्य श्रद्धा रखती थीं और चाहती थीं कि अच्छा हो मेरी यह बहिन अपने जीवन को संयम धारण करके सफल बनावें। संसार के सुखों से तो वंचित रह ही गई। इसकी तो बचपन से ही ऐसी भावना थी। विधाता का विधान ऐसा ही था कि किशोरावस्था में ही सौभाग्य सिन्दूर पुंछ गया। उधर पन्नाकुमारी भी अपनी बड़ी बहिन के प्रति पूज्यभाव रखती थीं। उनकी उपर्युक्त बातें सुनकर मौन हो गईं और अपने विचारों पर दृढ़ रहकर समय की प्रतीक्षा करना ही उचित समझा।

चरित नायिका पर गृह कार्य का कोई विशेष भार बोझ तो था नहीं, जब भी समय मिलता वे उपाश्रय में आ जातीं और सामायिक लेकर अपने ज्ञान ध्यान में तल्लीन हो जातीं। गुरुवर्य्या उद्योतश्रीजी, म. लक्ष्मीश्रीजी, म. मगनश्रीजी म. आदि के स्नेह पूर्ण वार्तालाप' उत्तम उपदेश एवं भद्रप्रकृति का उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वे बार २ उपाश्रय आ जातीं और सत्संगति का लाभ उठाती हुई अपनी जिज्ञासा को शान्त करती रहती थीं।

गुरुवर्य्या महोदया भी हमारी चरितनायिका की विनय भक्ति, श्रद्धा और अद्भुत बुद्धि को देखकर विस्मित हो जाती थीं। वे सोचतीं यह साध्वी बन जाय तो जैन शासन को चमकाती हुई अनेक भव्यात्माओं का उद्धार करे, इसमें संदेह नहीं।

एक दिन अवसर पाकर पन्नाकुमारी ने अपनी मनो भावना गुरुवर्य्या के समक्ष प्रकट की। वे बोलीं —भगवति! क्या मैं भी आपश्री के चरणों का आश्रय लेकर अपना जीवन सार्थक कर सकती हूं?

गुरुवर्य्या ने चमत्कृत होकर उत्तर दिया:—क्यों नहीं! अवश्य कर सकती हो। पर साधु जीवन की चर्या बड़ी कठोर है; हमें देख ही रही हो। यहां घर की सी सुख सुविधाएं तो हैं नहीं, साधना की अग्नि में निरन्तर तपते हुए आत्मा के कालुष्य को नष्ट करके उसके वास्तविक रूप को प्रकट करने का प्रयास करना होता है। तुम देखती ही हो साधुओं को केशलुंचन, विहार एवं मिल जाय वैसा ही आहार आदि करना पड़ता है। भयंकर शीत में भी प्रमाणोपेत वस्त्रों से ही सन्तोष करना पड़ता है। इन सब कठिनाइयों का धैर्यपूर्वक विचार करने के बाद ही तुम इतनी बड़ी बात बाहर निकालना, जीवन भर का काम है दो चार दिन का नहीं। और बच्चों का खेल भी नहीं।

पन्नाकुमारी ने प्रसन्नमुख से कहा—महाराज साहिबा! मैंने इन सब कष्टों असुविधाओं और कठिनाइयों के विषय में काफी गम्भीरता से विचार कर लिया है। नरक तिर्यञ्चादि में भोगे जाने वाले कष्टों के सम्मुख ये नगण्य हैं। अनन्त काल से कर्म की जञ्जीरों में बंधे हुए इस आत्मा ने न जाने कितने असह्य कष्ट सहन किए होंगे। संयमी जीवन के इन कष्टों को तो मैं कष्ट ही नहीं समझती हूं। मैंने खूब सोच समझ लिया है। मेरी

भावना तो वचपन में ही संयम धारण करने की थी पर भाग्य में ये वैधव्य को विडम्वना भोगनी वदी थी तो उस समय कैसे उदय आता।

गुरुवर्य्या ने कहा—तो फिर अपने माता-पिता, सास, जेठ आदि की आज्ञा प्राप्त करो।

पन्नाकुमारी—आप श्रीमतीजी का आशीर्वाद चाहिये, वह तो मिल जायगी।

गुरुवर्य्या—तो हमारी कव मनाही है। आज्ञा के लिये दृढ़ प्रयत्न करना होगा, कुटुम्वीजन सरलता से थोड़े ही दे देंगे।

सम्भवतः कई कष्ट उठाने पड़ेंगे। कई प्रलोभन दिये जायेंगे। कितने ही विघ्न खड़े किये जायेंगे, प्रतिवन्ध लगाये जायेंगे। हिम्मत हो तो दीक्षा का नाम लेना; नहीं तो वैसे ही धर्म ध्यान करो, गृहस्थाश्रम में रहते हुए शक्त्यनुसार तप, जप, सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषधादि से आत्म कल्याण करो। पन्ना कुमारी ने दृढ़ता से किन्तु विनीत भावपूर्ण शब्दों में प्रार्थना की :—

पूजनीये ! आप महानुभावा ने फरमाया वह उचित है, परन्तु मेरी दृढ़ एवं उत्कृष्ट भावना चारित्र लेने की ही है। गृहस्थाश्रम में रहने से मेरे ज्ञान ध्यान, तप जप आदि कार्य अंशतः हो सकते हैं। साधुजीवन की समानता गृहस्थजीवन से किसी भी प्रकार नहीं की जा सकती। साधु सर्वत्यागी होते हैं, वाह्य संयोगों से विप्रमुक्त हो आन्तरिक संयोगों से छूटने की साधना में रत

रहते हैं। गृहस्थ तो सभी संयोगों से बंधा हुआ है। प्रतिक्षण अविरति मे रहता है। शतशः विघ्न बाधाएं भी विरागी को रोकने में सर्वथा असमर्थ सिद्ध हुई हैं और मुझे तो सम्भवतः कोई अधिक बाधाओं का सामना नहीं करना पड़ेगा, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। शासनदेव की सहायता से शीघ्र ही मेरा कार्य सिद्ध हो जायगा।

गुरुवर्य्या ने प्रसन्नता से कहा—तब प्रयत्न करो, गुरुदेव तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करे।

उस समय श्रीमती लक्ष्मीश्रीजी महाराज ने हास्य विनोदमें कहा—क्यों पन्ना ? तुम मेरी शिष्या बनोगी या मगनश्रीजी की ? मेरी शिष्या बनो तो तुम्हें कोई कार्य जैसे—गोचरी लाना, पानी लाना आदि कार्य नहीं करने पड़ेंगे। खूब पढ़ना लिखना।

पन्नाकुमारी ने हास्यपूर्ण मुख से विनम्र वाणी में कहा–तब तो आप मुझे आलसी बना देंगी और ऐसीआलस्य वाली को ज्ञान ध्यान भी कैसे आ सकता है। इस प्रकार हंसती हुई वन्दना करके वे घर की ओर चली गईं।

अब आपको आज्ञा प्राप्त करनेकी तीव्र उत्कण्ठा हुई, विचार किया कि किस प्रकार आज्ञा प्राप्त की जाय ? कौनसा अव्यर्थ प्रयत्न किया जाय कि शीघ्रातिशीघ्र आज्ञा प्राप्त हो और मैं संयमवृक्ष की सुखद छाया प्राप्त करके शीतलता का अनुभव करूं। सोचते २ एक उपाय सूझ पड़ा। कोई भी गृहकार्य न करना और जब तक

आज्ञा न मिले कुछ भी नहीं खाना पीना। आपने सामायिक करने का विचार किया और सामायिक लेकर ज्ञान-ध्यान स्वाध्याय और जप करने लगीं।

भोजन का समय उपस्थित होने पर भोजन कर लेने के लिए आवाज दी गई। उत्तर न मिलने पर जिठानीजी पास गईं और बोलीं—बहू उठो! अभी तक सामायिक में ही बैठी हो? भोजन का समय हो गया, चलो भोजन करो। हमने भी अभी तक भोजन नहीं किया है तुम करोगी तब हम करेंगे।

पन्नाकुमारी ने कहा—आप लोग भोजन कर लें, मुझे नहीं करना है।

जिठानीजी ने प्रश्न किया—क्यों?

पन्नाकुमारी ने उत्तर दिया—मुझे दीक्षा की आज्ञा मिलेगी तब भोजन करूंगी? मैंने ऐसा प्रण किया है।

जिठानीजी विस्मित हो शीघ्रता से सासूजी के पास पहुँची और देवरानी का प्रण बतलाया। सासूजी तो सुनकर आश्चर्य-चकित रह गईं। झट से उठकर बहू के पास पहुंचीं और मधुर वाणी से कहा—

बीनणी! अभी तो उठो, भोजन कर लो, रसोई ठंडी हो रही है। दीक्षा लेना है तो इतनी जल्दी क्या है तुम्हारे पिताजी व माताजी आदि की राय व अनुमति होगी तो हम भी आज्ञा दे देंगे। पर अभी तो भोजन कर लो। चलो!! उठो!!!

पन्नाकुमारी ने दृढ़ता पूर्वक कहा—"यह नहीं हो सकता! पहिले दीक्षा लेने की आज्ञा मिल जाय! फिर भोजन कर लूंगी" इतना कह कर फिर माला जपने लग गईं।

सारे घर भर में चर्चा होने लगी—आज तो छोटी बीनणी सामायिक लिए बैठी है, भोजन भी नहीं करती, कहती है—"दीक्षा की आज्ञा मिलेगी तब भोजन करूंगी।"

मेहरचन्दजी कहीं बाहर गये हुए थे, उन्हें बुलाया गया। वे अपनी इस बाल विधवा पुत्रवधू पर बड़ा वात्सल्यभाव रखते थे। उनका हृदय यह सुनकर कि "बहू की इच्छा साध्वी बनने की है और दीक्षा की आज्ञा प्राप्त करने के लिए आज उसने भूख हड़ताल कर रक्खी है," करुणा से द्रवित हो गया, आंखों मे से मोती से अश्रु बिन्दु ढुलक पड़े। जहां हमारी ये वैराग्यवती पन्नाकुमारी सामायिक लिए जाप मग्न थीं वहां आकर गद् गद् कण्ठ से बोले—बीनणी! भोजन कर लो बेटी! उठो? दीक्षा लेने का हठ मत करो, घर में ही धर्म ध्यान करो, यहां तुम्हें क्या दुःख है? दीक्षा क्यों लेती हो? इतना कह कर चले गये।

सासूजी, जिठानीजी आदि ने बहुत समझाया कि अभी तो भोजन कर लो, विचार कर लेंगे, दीक्षा लेना कोई खेल तो नहीं है। तुम्हारा शरीर कितना कोमल है? क्या संयम के कष्टों को सहन कर सकोगी? छोटे २ कोमल पांवों से बिना जूतों के तुम पैदल कैसे चल सकोगी? अभी तुम्हारी अवस्था बहुत छोटी है, कुछ वर्ष घर में ही त्यागी जीवन की साधना करो, बाद में हम

करो तथा भगवान् महावीर के आदर्श धर्म का प्रचार करती हुई स्वपर कल्याण करो। इतना कहते २ मेहरचन्दजी का कण्ठ अवरुद्ध हो गया, वे अधिक बोलने में असमर्थ हो गये और उत्तरीय वस्त्र से मुख व नेत्र आच्छादन करके वहां से हट गये।

पन्नाकुमारी भी अभीष्टार्थ की प्राप्ति हो जाने से सानन्द सामायिक पार कर सासूजी को प्रणाम करके मन्दिर जाने की अनुमति मांगने लगी। आज्ञा देने के बजाय माताजी व सासूजी आदि सभी साथ जाने को प्रस्तुत हो गईं और सबने मन्दिर में जाकर भगवान् जिनेश्वरदेव की प्रतिमा के भक्तिभाव से दर्शन किये वहां से चलकर सब गुरुणीजी के उपाश्रय में पहुंची।

गुरुवर्य्या उद्योतश्रीजी महाराज आदि भी यह देखकर कि "पन्नाकुमारी आज तीन दिन से सपरिवार उपाश्रय में आ रही हैं। मुख पर प्रसन्नता का समुद्र हिलोरें ले रहा है। गति में एक प्रकार का उल्लास झलक रहा है। सम्भवतः इसे आज दीक्षा लेने की आज्ञा मिल गई है।" हर्ष विभोर हो गईं। एक सुयोग्य विरागिनी को संयमपथ में विहरने की आज्ञा मिल जाने से उनके आनन्द का पार नहीं रहा, रोमाञ्च हो आया। वे मन ही मन शासनदेव को धन्यवाद देने लगीं।

पन्नाकुमारी ने सविधि वन्दना करके निवेदन किया—भगवति! आज तो मुझे आपश्री के चरणों में निवास करने की आज्ञा प्राप्त हो गई है। अब आपश्री शीघ्र ही दीक्षा का मुहूर्त्त निकलवाइये।

सासूजी व माताजीआदि ने भी समर्थन किया ? प्रत्याख्यान लेकर सबने गृह की ओर प्रस्थान कर दिया।

सारे फलोधी शहर मे वायु वेग के समान यह बात प्रसृत हो गई कि मेहरचन्द की पुत्रवधू को आज दीक्षा की आज्ञा मिल गई।

दीक्षा महोत्सव

संसार में अनेक प्रकार के महोत्सव होते हैं; जैसे—जन्मोत्सव, विवाहोत्सव, राष्ट्रीय उत्सव, प्रतिष्ठोत्सव, दीक्षोत्सव, आदि उत्सवों का बड़ा महत्व है। वे हमारी संस्कृति के द्योतक तो हैं ही, साथ ही जन जीवन को प्रेरणा देने वाले भी हैं। उत्सव के समय सम्बन्धित व्यक्तियों के हृदय में उल्लास व हर्ष का समुद्र उमड़ उठता है। साधारण जनता भी इन उत्सवों के अवसर पर सारी दुःख दुविधायें भूल जाया करती है और उत्सव में शरीक होना अपना परम कर्त्तव्य समझती है।

आधुनिक शिक्षा प्राप्त नवयुवकों के विचार इन हमारे सांस्कृतिक उत्सवों के विषय में कुछ विरुद्ध हैं, वे इसे अपव्यय समझते हैं। वे कहते हैं—इन उत्सवों में क्या रक्खा है ? इनमें लगने वाला पैसा शिक्षा आदि आवश्यक कार्यों में खर्च करना चाहिये।

दीक्षोत्सव के विषय में आडम्बर और वैरागी के वस्त्राभूषण धारण करने तथा बन्दोले आदि जीमने पर तो वे सख्त ऐतराज करते हैं। पर हमारा उन बन्धुओं से नम्र निवेदन है कि वे जरा गम्भीरता से सोचें। जिन उत्सवों से जैन शासन की प्रभावना होती हो, जनता वैरागी-वैरागिन को देखकर धन्य धन्य करती हुई अनुमोदन से अपने भावों को उज्ज्वल बनाती हो, अवश्य होने चाहिये। दीक्षा महोत्सव का एक विशिष्ट हेतु यह भी है कि दीक्षा की भावना की

दृढ़ता का परीक्षण किया जाता है कि इसकी भावना दृढ़ है या शिथिल, भोग्य पदार्थों मे लुभाता है या वैराग्य में स्थिर चित्त है। ऐसे उत्सव जो आत्म विकास में प्रेरणाप्रद हों, उन्हें न करना तो जैन शासन के प्रति द्रोह करना ही है।

अस्तु तत्कालीन समाज मे ऐसे उत्सव धूम-धाम से मनाना प्रत्येक जन अपना परम कर्तव्य समझता था। आज भी मनाए जाते हैं पर आर्थिक परिस्थितियां विपम हो जाने से पूर्ववत् वात नहीं रही।

हमारी चरितनायिका का दीक्षा मुहूर्त विक्रम संवत् १६३१ के वैशाख शुक्ल एकादशी के दिन निश्चित हुआ।

पंद्रह बीस दिन पहिले ही डोरा बांध दिया गया। वैरागिन वन्दोले जीमने लगीं। फलोधी के जैन समाज मे उत्साह की लहर दौड़ गई। गिरासर से पन्नाकुमारी के पिता जीतमलजी, भाई मूलचन्दजी, बुधमलजी, माताजी, भाभियां आदि सभी परिजन इस शुभावसर पर फलोधी आ गये थे।

मन्दिरों मे अष्टाह्निकोत्सव आरम्भ हो गये। प्रतिदिन नवीन २ राग रागनियों मे पूजाएं पढ़ाई जाने लगीं। वृद्ध, युवा, वाल गोपाल सभी स्त्री पुरुप भगवान् की पूजा श्रवण का लाभ उठाने को शीघ्र ही गृहकार्य से निवृत्त होकर मन्दिर के प्रांगण मे एकत्रित हो जाते। वन्दोली के समय वैरागिन के दर्शनार्थ जनता उमड़ पड़ती।

प्रतिदिन वैराग्य के गायन होने लगे। प्रतिदिन नव नव प्रभावनाएं (मोदक श्रीफल बदाम) आदि वितरित की जाने लगीं। विरागिनी पन्नाकुमारी का मुख अद्भुत तेज से प्रदीप्त हो उठा। वे सभी का विनम्र भाव से अभिवादन स्वीकार करती हुई सबको प्रति नमस्कार से आह्लादित कर देती थीं। आपकी आकृति पहले से ही अत्यन्त आकर्षक थी और अब तो वैराग्य के अपूर्व तेज से अत्यन्त शोभायमान हो गई थी। आप बचपन से ही धीर-वीर गम्भीर प्रकृति की थीं, विरागभाव ने उसमें और भी वृद्धि करदी।

स्थान २ पर आमन्त्रण पत्रिकाएं भेजी गईं। आसपास के गांवों के शतशः लोग इस दीक्षा-महोत्सव को देखने आने लगे। परिवार के व्यक्ति जो व्यापारादि कार्य के लिए राजस्थान से बाहर रहते थे, उन्हें भी आमन्त्रित किया गया। सबके भोजनादि की व्यवस्था सेठ मेहरचन्दजी, जेठमलजी श्रावक ने की। विरागिनी पन्नाकुमारी प्रतिदिन जिनपूजा करने बड़े समारोह से जाया करती थीं। कई समवयस्काएं उनको घेरे रहती थीं। वे भी मधुर वचनों से उन सबको साधुजीवनग्रहण करने की प्रेरणा करती रहतीं, "पर पूर्व संस्कारों के बिना त्याग की अभिलाषा होना-संसार से विरक्त होना बड़ा कठिन कार्य है!" "लघुकर्मी जीव ही इस संसार के भोगों की ओर से विमुख हो सकता है!" वे केवल अनुमोदना करके ही सन्तोष करती रहतीं। कहतीं—बाई, तुम धन्य हो, जो ऐसी कठिन साधुजीवन की चर्या वहन कर सकोगी। हमारे भाग्य में कहां! कुछ कहतीं—हम भी विचार

करती हैं, देखो ! जब पुण्योदय होगा तो हम भी तुम्हारी अनुगामिनी बनेंगी ।

इस प्रकार ये उत्सव के दिन इतनी शीघ्रता से व्यतीत हो गये कि किसी को पता भी नहीं चला ।

दीक्षा दिवस के प्रथम दिन साधुवेश के सभी उपकरण एक बांस के टोकरे में रखकर विरागिनी बड़े समारोह के साथ उपाश्रय में उपस्थित हुई और वासक्षेप शिरपर धारण की । आज पन्ना कुमारी के हृदय में आनन्द का पारावार नहीं है, अब तो केवल एक रात्रि शेष है, कल तो मैं भी इन वस्त्रों को परिधारण करके समस्त सावद्य योग (पाप व्यापार) का सर्वथा यावज्जीवन परित्याग कर दूंगी । कल मेरा चिरकाल से प्रतीक्षित मनोरथ पूर्ण हो जायगा । मैं साध्वी बन जाऊंगी और समस्त जीवन स्वपर कल्याण के लिए अर्पण कर दूंगी ।

रात्रि जागरण मे मंगल गीतों का मधुर संगीत चल रहा था । उधर हमारी वैरागिन प्रफुल्ल मुख से गुरुवर्य्या के चरणों के समीप बैठी हुई तत्वचर्चा सुनने मे तल्लीन है । प्रमुख श्राविकाएं भी थोड़ी देर के लिए संगीत समारोह से उठकर इस तत्वामृत का पान करने बैठी हैं । इस प्रकार वह रात्रि इस समारोह में बीत गई । प्रातः कालीन सामायिक प्रतिक्रमणादि विधिविधान से निवृत होकर घर जा पहुंची । स्नानादि करके पूजा की सामग्री ले मन्दिर में जाकर पूजा की और अब विरागिनी के वरघोड़े की तैयारियां होने लगीं ।

समाज के गण्यमान्य व्यक्तियों से दीक्षा महोत्सव का प्रवन्ध करने के लिए सेठ मेहरचन्द, सेठ जेठमलजी ने विनती की थी। वे सब इस समारोह का बड़ी दक्षता से संचालन कर रहे थे।

फलोधी में उस समय बैंडवाजा, हाथी, घोड़े आदि लवाजमा नहीं था। नरसिंहा, शंख, शहनाई, ढोल, ताश, झालर आदि ही थे। दीक्षा का वरघोड़ा प्रस्थान करने को प्रस्तुत था। घर में वैरागिन को स्नान करवा कर वस्त्राभूषण धारण करवाये गये। प्रचलित विधि-विधान, रीति-रिवाज किए गये। पन्ना कुमारी ने सबके चरणों का स्पर्श करके अपने द्वारा किए हुए अब तक के अपराधों-अविनयादि के लिए विनय पूर्वक क्षमा याचना की। सब परिवार के लोग आपकी कोमल प्रकृति, विनम्र स्वभाव, उदारता और क्षमाशीलता आदि की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा कर रहे थे। सबके कण्ठ अवरुद्ध हो रहे थे—बोलने की इच्छा होते हुए भी बोल नहीं पा रहे थे। बड़ा करुण चित्र प्रस्तुत था। आपकी माताजी व बहिन मूलीबाई को हर्ष और विषाद के भावों ने मूक सा कर रखा था। रुदन करते हुए सब के मुख से इतने ही शब्द निकल सके—बेटी! जैसे भावों से संयमी बन रही हो वैसे ही भावों से जीवन-पर्यन्त पालन करना। हमारा मुख उज्ज्वल करना। इस आशीर्वाद को वैरागिन महानुभावा ने आदर पूर्वक शिरोधार्य किया।

जय-जय निनाद के उद्घोष पूर्वक वैरागिन ने रथ पर आरोहण किया। जुलूस की शोभा दर्शनीय थी। हजारों की मानव

मेदिनी साथ चल रही थीं। रंग बिरंगे चमचमाते वस्त्राभूषण धारण किए नर-नारी इस समय साक्षात् स्वर्ग के देव देवियों जैसे शोभित होरहे थे। वरघोड़ा शहर के मुख्य मार्गों से गमन करता हुआ दीक्षा समारोह के स्थान की ओर शनैः शनैः बढ़ रहा था। रथ में विराजमान वैरागिन अंजलि भर २ कर चारों तरफ द्रव्य की वर्षा कर रही थी। इस धार्मिक दान (वर्षीदान) को लेने के लिए जनता उमड़ी आ रही थी और इस दान को प्राप्त करना अपना परम सौभाग्य मानती थी।

पूज्य गुरुदेव सुखसागरजी महाराज साहब आदि मुनि मंडल एवं गुरुवर्य्या महोदया श्रीमती उद्योतश्रीजी महाराज साहबादि प्रातः कालीन विधि एवं स्वाध्यायादि से निवृत्त होकर पहले से ही 'रानी सर दादाजी' नामक विशाल एवं रमणीक स्थान पर पधार गये थे, वहां दीक्षा विधि सम्पन्न कराने योग्य सामग्री की व्यवस्था संघ की ओर से व वैरागिन के सम्बन्धियों की तरफ से करा दी गई थी।

एक प्रहर दिन चढ़े तक वरघोड़ा निश्चित स्थान पर जा पहुँचा। हर्षोल्लास से पूर्ण हृदय वाली वैरागिन रथ से उतर कर दीक्षा संस्कार कार्य के लिए नियत किए हुए स्थान पर आ गईं।

समवसरण में विराजमान जिनेन्द्रदेव को नमस्कार करके गुरुदेव एवं गुरुवर्य्या महोदयाओं को वन्दन किया।

गुरुदेव ने समस्त विधि सम्पन्न कराई। ओघा (रजोहरण) साधुवेश-पात्र, दंडा आदि उपकरणों को लेकर पन्नाकुमारी तत्क्रिया

के लिए नियत स्थान पर गई । मुण्डन के बाद साध्वीवेश धारण के लिए तत्पर हो गई और वेश धारण किया।

वेश परिधानानन्तर पुनः गुरुदेव के सामने उपस्थित होकर नांदि सम्मुख देव वन्दन आदि किया। गुरु महाराज ने दीक्षा विधि सम्पन्न कराई। पन्नाकुमारी का नाम 'पुण्यश्री जी' रक्खा गया व श्रीमती मग्नश्री जी म० की शिष्या घोषित की गई।

दीक्षा संस्कार के बाद गुरुदेव ने अपने मधुर कण्ठ से संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित भाषण में संयमी जीवन की महत्ता पर प्रकाश डाला।

उपस्थित जनता मध्यान्ह काल हो जाने से भूख से व्याकुल होते हुये भी पीयूषवर्षी देशना को श्रवण करने के लिए दत्तचित्त थी। फिर भी समयज्ञ गुरुदेव ने अपना पावन प्रवचनस माप्त कर दिया। इस अवसर पर अनेक भव्य भावुक व्यक्तियों ने नाना विध यम नियम ग्रहण किये। जनता नव दीक्षिता साध्वीजी के दर्शन करने को उमड़ पड़ी। तदनन्तर सब दर्शन करके चारित्र की अनुमोदना से अपनी आत्मा को पवित्र बनाते हुए श्रीफल की प्रभावना लेकर अपने २ घर की ओर प्रस्थान कर दिया। कुछ श्राविकाएं गुरुवर्य्याओं की सेवार्थ वहीं रह गईं।

नूतन दीक्षिता साध्वीजी 'पुण्यश्रीजी' गुरुवर्य्या श्रीमती उद्योतश्रीजी महाराज के पास विनम्रभाव से बैठी हुई आज अपने आपको बहुत धन्य-मान रही हैं। प्रसन्न मुख मुद्रा से मधुर आलाप करती हुई सबको प्रफुल्लित कर रही हैं। चिर प्रतीक्षित-हार्दिक अभिलाषा पूर्ण हो जाने से मुख मण्डल पर अपूर्व सन्तोष झलक रहा है, वन्दनाम्बुज विकसित हो गया है।



चरितनायिका की गुरुवर्या स्व०
श्रीमती लक्ष्मी श्रीजी म० सा०

पवित्र जीवन के पथ पर

कारुण्येन हता वधव्यसनिता सत्येन दुर्वाच्यता,
सन्तोषेण परार्थ चौर्य्यपटुता शीलेन रागान्धता।
नैग्र न्थ्येन परिग्रह ग्रहिलता यै यौवनेऽपि स्फुटं,
पृथ्वी यं सकलापि तैः सुकृतिभि र्मन्ये पवित्रीकृता॥१॥

भावार्थः—जिन पुण्यशाली महात्माओं ने युवावस्था में ही स्फुट रूप से अपनी कारुण्य भावना से हिंसा के व्यसन—दूसरे प्राणियों को कष्ट देने रूप कार्य, सत्यप्रिय बोलने से दुर्वाच्यता अश्लील अपशब्द और सावद्य भाषण, सन्तोष से परधन हरण का कौशल, शील-ब्रह्मचर्य से रागान्धता, निर्ग्रन्थता-निःस्पृहता से धन की आसक्ति नष्ट कर दी है। मैं मानता हूं कि उन्होंने सारी पृथ्वी की कलुषता मिटा कर उसे पवित्र कर दिया है।

संसार की विषय कषायमय मलीन वीथिकाओं से निकल कर संयम के राजमार्ग पर गतिशील होने वाली भव्य आत्माओं को अपूर्व सुखमय स्थिति का अनुभव होता है। अनन्तकाल से अन्धकारमय अज्ञानदशा मे रहा हुआ जीव रागद्वेष के वश में पड़ कर विश्व के मोह विमूढ़ प्राणियों के साथ अनेक प्रकार से स्नेह और शत्रुता के भाव धारण करता रहता है। उससे उस जीव की संसार भ्रमणता प्रतिक्षण बढ़ती रहती है; किन्तु किसी पुण्ट

निमित्त के योग से जब जीव की अंतर्दृष्टि के पडल दूर हो जाते हैं तथा वास्तविकता का आभास हो जाता है—वस्तु स्वरूप का सही ज्ञान हो जाता है, तब यही आत्मा अप्रशस्त रागादि का परित्याग करके प्रशस्तराग मात्र के परिणामों से उपकारी पुरुष के प्रति समर्पित होकर अपने आपको मुक्तिमार्ग का पथिक समझता हुआ सांसारिक प्रलोभनों से सदा दूर रहता है। उसका एकमात्र लक्ष्य मुक्ति प्राप्ति ही होता है।

संसार की भ्रमणशीलता से बचा कर अनन्त अमरता के मार्ग पर आरूढ़ कर देने वाले महा सार्थवाह स्वरूप उन सद्‌गुरु के चरणों में सर्वतोभाव से किया हुआ आत्म समर्पण कैसी अद्‌भुत रीति से जन्म जन्मान्तरों से भोगी जाने वाली पीड़ा का हरण कर लेता है! आत्मा को कैसी भव्य आनन्दमय दशा का अनुभव कराता है! कितनी शीघ्रता से परम साध्य की साधना में नियुक्त कर देता है! इसका अनुभव सच्ची विराग दशा वाले आसन्न सिद्धिक भव्य जीव को हो जाता है।

नूतन साध्वी 'पुण्यश्रीजी' महाराज ने अपनी जीवन नौका की पतवार परमपूज्या उद्योतश्रीजी महाराज के कर कमलों में देकर उनकी एक आज्ञांकित सेविका के रूप में अपने आपको समझ लिया। उन गुरुवर्य्या की आज्ञानुसार अपनी जीवन तरणी प्रवाहित करना ही अपना कर्तव्य मानती हुई वे निश्चिन्तता का अनुभव करने लगीं और विश्वस्तता की सुखद छाया में स्थित होकर अनिर्वचनीय सुख में मग्न बन गईं।

श्रीमती उद्योतश्रीजी महाराज भी वात्सल्य भरी दृष्टि से उन्हें देखती हुई अन्त करण में अत्यन्त हर्षित हो रही थीं। यह भव्य आत्मा जैन शासन की महती प्रभावना करेगी; ऐसा उनका दृढ़ विश्वास था।

जैन साधु समाज में प्रचलित रीति के अनुसार दूसरे ही दिन विहार करके गुरुवर्य्या उद्योतश्रीजी महाराज आदि नवीन आर्या रत्न पुण्यश्रीजी महाराज को साथ लेकर समीप के खीचन्द ग्राम की ओर विहार कर गईं। वहां के संघ ने आपका बड़ा भारी स्वागत सत्कार किया।

वहां पर पन्द्रह दिन रह कर जैन जनता को अपने सदुपदेश द्वारा धर्माभिमुख किया। बड़ी दीक्षा कराने की शीघ्रता वश अधिक निवास न कर सकीं और फलोधी वापिस पधार गईं।

गुरुवर्य्या श्रीमान् सुखसागरजी महाराज साहिब की अध्य-क्षता में पुण्यशालिनी 'पुण्यश्रीजी' महाराज ने वृहद् दीक्षा की योगोद्वहन विधि सम्पन्न की—"लघु दीक्षा में केवल यावज्जीवन सावद्ययोग की प्रवृत्ति का प्रत्याख्यान रूप 'करेमि भन्ते' का पाठ उच्चारण कराया जाता है। बड़ी दीक्षा में पंच महाव्रत धारण करने रूप विधि-विधान कराया जाता है। इसमें १५ दिन एवं मास पर्यन्त शास्त्रानुसार आयंबिल व नीवी करने पड़ते हैं। तीन वार देववन्दन नवकार मन्त्र की २० मालाएं जपना एवं १०० लोगस्स का कार्योत्सर्ग प्रतिदिन करना पड़ता है। आदि

मध्य या अन्त में शुभ मुहूर्त्त शुभ दिन में पंच महाव्रत उच्चारण कराये जाते हैं।"

छेदोपस्थापनीय रूप बड़ी दीक्षा हो जाने के बाद अपनी गुरुवर्य्या के साथ उन्होंने अपना प्रथम चातुर्मास विक्रम सं० १९३१ का फलोधी में ही किया।

इस चतुर्मास में आप मुनियों की आवश्यक क्रियाओं का अध्ययन दत्तचित होकर करने लगीं, साथ ही गुरुवर्य्याओं की सेवा शुश्रूषा में भी बड़े विनय भाव से अग्रसर रहती हुई पूज्य गुरुवर्याओं एवं तत्रस्थ श्रावक-श्राविकाओं के हृदय पर अपनी विनय शीलता की गहरी छाप डाल दी। आपकी भूरि २ प्रशंसा होने लगी।

पूज्येश्वर गुरुदेव सुखसागरजी म० साहब चरित नायिका की विनय शीलता, शान्तस्वभाव, तीव्रबुद्धि और विवेकिता आदि सद्गुण देख कर अत्यन्त प्रसन्न होते थे। कई बार श्रीमती उद्योतश्रीजी महाराज को कहा करते थेः—उद्योतश्रीजी! तुम बड़ी भाग्यशालिनी हो, तुम्हें पुण्यश्रीजी जैसी सुयोग्या शिष्यारत्न प्राप्त हुई है। इनको शिक्षा की समुचित व्यवस्था हो जाय तो ये बड़ी विदुषी बने और समुदाय की कीर्ति दिगन्तरों में व्याप्त हो। उद्योतश्रीजी महाराज आदि यह सुनकर बड़ी हर्षित होती थीं।

एक बार साध्वी मण्डल वन्दनार्थ सेवा में उपस्थित था, पूज्येश्वर गुरुदेव ने फरमाया :—उद्योतश्रीजी, आज हमने एक अद्भुत स्वप्न देखा!

उद्योतश्रीजी ने उत्सुकतापूर्वक पूछा—भगवन्! कृपा करके हमें भी वह स्वप्न सुनाइये।

प्रसन्नचित गुरुदेव बोले—अवश्य! वह तुम्हीं से सम्बन्धित है। हमने गत रात्रि के ब्राह्ममुहूर्त्त मे सफेद गौओं का एक बड़ा गोकुल देखा, जिसमें कितनी ही वृद्धा गायें थीं, कितनीक युवती और कितनी ही बछड़ियां और बछड़े भी थे।

उद्योतश्रीजी महाराज इस शुभ स्वप्न को सुनकर प्रमुदित होती हुई बोलीं—पूज्यवर! इस अद्भुत और सुन्दर स्वप्न का क्या फल होगा? आनन्द निमग्न गुरुदेव ने कहा—तुम्हारे शिष्या परिवार में अप्रत्याशित वृद्धि होगी। बड़ा सुन्दर मंगलमय स्वप्न है। इसकी सत्यता का प्रमाण प्रत्यक्ष है। उनके समुदाय मे २०० करीब साध्वियां दीक्षित हो चुकी हैं।

चातुर्मासानन्तर मार्गशीर्ष मे ही विहार कर दिया। विहार करने का आपका यह पहला ही अवसर था। फिर भी मार्ग के कष्टों को अत्यधिक धैर्य-शान्ति और प्रसन्नता से सहन कर रही थीं।

मरुभूमि के निर्जल प्रदेश मे विचरना कितना कष्टकर है? यह भुक्तभोगी ही जान सकते हैं।

साधु जीवन, पैदल चलना, समस्त उपकरणों—पुस्तक, पात्र वस्त्रादि का भार उठाना, और मारवाड़ के धोरों—बड़े २ रेत के टीबों मे चलना, जहां न सड़क, न वृक्षों की छाया, भास्कर की प्रखर किरणों से तप्त बालू, जिसमे पांव रखते ही छाले हो

जायं। चार २ पांच २ कोस तक गांव का नाम निशान तक नहीं, और गांव आया तो वहां भी अजैनों की वस्ती, आहार पानी का मिलना अनिश्चित, मिल गया तो ठीक, न मिला तो तपोवृद्धि।

अपनी गुरुवर्य्या आदि के साथ विहार करतीं मार्ग के कष्टों को सहर्ष सहन करती चरितनायिका श्री फलोधी पार्श्वनाथ की यात्रा करती हुई मेड़ता नगर पधारीं। वहां कुछ दिन स्थिति करके धर्म का पवित्र पतित पावन आराधन करने में तत्रस्थ जनों को अग्रसर रहने की प्रेरणा अपने पवित्र जीवन से दी; क्योंकि इन लघुवयस्का साध्वीजी के दर्शन पाकर वहां की जनता विस्मयाभिभूत हो विचारने लगतीं—अहो ? इन साध्वीजी को धन्य है ! ये इतनी छोटी अवस्था में ही संसार की मोहमाया त्याग कर संयम और तप से अपना जीवन सफल कर रही हैं। हम तो इस संसार के भोग रूपी कर्दम में आकण्ठ मग्न है ! हा हमारी न जाने क्या दशा होगी ! क्या कभी हमारे जीवन में भी ऐसा क्षण आयेगा कि हम भी इन महानुभावा के मार्ग का अनुसरण करके अपने मानव जीवन को सार्थक कर सकेंगे ? इस प्रकार जहां भी जाते वहीं इनके दर्शन करके भव्यजीव चारित्र की अनुमोदना किया करते थे।

वहां से अजमेर होते हुये हमारा वह साध्वी मण्डल जयपुर पहुंचा। जयपुर की जैन प्रजा ने आपका हार्दिक स्वागत किया। गुरुवर्य्या ने अपने उपदेशों द्वारा वहां पर ऐसी अद्भुत ज्योति जागृत की कि कितनी ही श्राविकाओं की रुचि विंशति स्थानक

तप करने की हुई, तदनुसार १८ श्राविकाओं ने इस तप का आरम्भ किया और साथ ही हमारी परमाराध्या चरितनायिका ने भी इस तप का आराधन करने की गुरुवर्य्या से आज्ञा मांगी, जो सहर्ष मिल गई।

एक ओली का आराधन जयपुर की श्राविकाओं के साथ करके चातुर्मास का अत्यन्त आग्रह होने पर भी आपने वहां से विहार कर दिया क्योंकि शेष काल में साध्वी को एक स्थान पर दो मास से अधिक रहना अकल्प्य है।" गुरुवर्य्या महोदया के साथ चैत्र मे किशनगढ़ को पावन किया। धर्म प्रचार करते हुए संयम व तप द्वारा आत्मा को पवित्र बनाना ही साधु जीवन का लक्ष्य होता है। इस कारण साधु को बिना विशेष कारण के एक स्थान पर निवास करने का शास्त्रों से निषेध है।

एक महीना किशनगढ़ रह कर वैशाख वदि में आप अजमेर पहुंच गईं।

स्वनामधन्या सिंहश्रीजी महाराज की भागवती दीक्षा अजमेर में अक्षय तृतीया को शुभ मुहूर्त्त मे हुई। ये भी बड़ी विदुषी और प्रभावशालिनी थीं। इनका चरित्र अन्यत्र प्राप्य है।

इनकी दीक्षा से हमारी चरित्र नेत्री को बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि एक समवयस्का के साथ अध्ययन, तत्वचर्चा एवं सहवास का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ था।

श्रीमती सिंहश्रीजी को दीक्षा देकर व्यावर के श्रावकों का अत्यन्त आग्रह होने से आप सब-श्रीमती उद्योतश्रीजी म. श्रीमती

लक्ष्मीश्रीजी म०, श्रीमती मगनश्रीजी म०, श्रीमती पुण्यश्रीजी म०, एवं नवदीक्षिता सिंहश्रीजी म० ब्यावर पधारीं।

वहीं पर गणाधीश श्रीमन्सुखसागरजी महाराज साहब आदि विराजमान थे। उनके दर्शनों से नेत्र एवं मन को पवित्र किया और गुरुवर्य से चरितनायिका एवं अन्य योग्य साध्वियों ने श्री दशवैकालिक सूत्र का अध्ययन आरम्भ किया। परन्तु वहां पर कुन्थुआ (एक सूक्ष्म कीट का प्रकार) जीवों की उत्पत्ति हो जाने से चातुर्मास में निवास करने के विचार का परित्याग करना पड़ा और पाली में चातुर्मास रहे। विक्रम सं० १६३२ के चातुर्मास में अपने शेष रहे हुए दशवैकालिक सूत्र का अध्ययन किया। प्रथम बार ही अट्ठाई की महान् तपस्या की। केवल १६ वर्ष की अवस्था में ऐसी उग्र तपस्या देखकर पाली की जनता आश्चर्यचकित रह गई। पूजाएं-प्रभावनाएं आदि करके लोगों ने अत्यन्त लाभ उठाया। धर्म की खूब जागृति हुई। सानन्द चातुर्मास पूर्ण करके वहां से विहार करके आप सब फलोधी पधार गईं। वहां पर एक दीक्षार्थिनी की आग्रहपूर्ण विनती एवं संघ की प्रार्थना से चातुर्मास किया। गुरुवर्य्या श्रीमती उद्योतश्री जी महाराज व्याख्यान में पञ्चमांग श्री भगवती सूत्र का प्रवचन करती थीं। आपकी व्याख्यान शैली बड़ी अद्भुत थी।

हजारों जनता के बीच में पट्ट पर विराजमान श्वेताम्बरा सरस्वती सी प्रतीत होती थीं। त्याग, तप, संयम और वैराग्यरस-पूर्ण व्याख्यान क्या था मानो अमृत का प्रवाह था, जिसे श्रवण

करने से श्रोताजनों का मोहविष उतर जाता था। वे आत्माभिमुख होकर आत्मनिरीक्षण में तल्लीन बन जाते थे।

श्रावक-श्राविकाओं में पंचरंगी की महान् तपस्या हुई। हमारी चरितनायिका ने भी दश उपवास का तप किया और श्रीमती मग्नश्रीजी महाराज ने मासक्षमण (३० उपवास) की श्रेष्ठ तपश्चर्या की।

चातुर्मास पश्चात् विरागिनी की दीक्षा खूब धूमधाम से हुई। उनका नाम भावश्रीजी रक्खा गया, एवं उद्योतश्रीजी महाराज साहिबा की शिष्या घोषित की गई।

साध्वीश्रेष्ठा पुण्यश्रीजी महाराज साहिबा ने प्रकरण चतुष्टय पैंतीस बोल आदि तो गृहस्थावास मे ही सार्थ सीख लिए थे। दशवैकालिक का अध्ययन भी पूर्ण हो चुका था। अब आपने श्री उत्तराध्ययन सूत्र और उपदेश माला आदि का पठन किया।

आप बड़ी बुद्धिशालिनी थीं। कठिन से कठिन विषय को भी आप सहज ही समझ लेती थीं। आगमों का गम्भीर ज्ञान प्राप्त करने की आपकी तीव्राभिलाषा देख कर गुरुवर्य्या श्रीमती उद्योतश्रीजी महाराज विचार किया करती थीं कि ये किसी गीतार्थ गुरु के सान्निध्य में रहें तो बड़ा अच्छा हो। गुरुदेव श्री सुखसागरजी महाराज साहिब आदि उस समय कहीं दूर देश में विचरते थे। उनका समागम अभी दुर्लभ हो रहा था। दीक्षानन्तर फलोधी से विहार करके आप सब नागोर पधारीं। कुछ

दिन नागोर में निवास किया। वहीं बीकानेर से कई श्रावक चातुर्मास की विनती करने आ गये। उधर नागोर वालों का भी आग्रह कम नहीं था। पर बीकानेर वाले हठ करके बैठ गए और आप विक्रम संवत् १६३४ का चातुर्मास बीकानेर करने पधारीं। आपका शास्त्राभ्यास की ओर बड़ा लक्ष्य था। आपने गुरुवर्य्या से भगवती व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र श्रवण किया।



विहार का महत्त्व

मानव के जीवन निर्माण में यात्रा का भी बड़ा भारी महत्त्व है। विभिन्न देशों में भ्रमण करने से मनुष्य की बुद्धि विकसित होती है; क्योंकि देशों की संस्कृति-आहार विहार, आचार विचार, रहन सहन, व्यापार व्यवहार आदि का ज्ञान होता है। भांति २ के लोगों से मिलना-जुलना, आचार विचारों का आदान प्रदान आदि करने से मैत्री भाव की वृद्धि एवं मानव बुद्धि में समन्वय की भावना की जागृति होती है। सहनशीलता और समत्व के विचार उद्भूत होकर जीवन में सन्तुलन आ जाता है। नीतिकारों ने तो देशाटन को शिक्षा का प्रधान अंग माना है। कहा भी है :—

देशाटनं पण्डित मित्रताच वारांगना राज्य सभा प्रवेशः।
अनेक शास्त्राणि विलोकितानि चातुर्य्यमूलानि भवन्ति पंच ॥

अर्थात देश देश में भ्रमण करना, पण्डितजनों के साथ मित्रता रखना, वारांगना का सम्पर्क (वाराङ्गना से मात्र कार्य कुशलता और व्यवहार चातुर्य सीखने का लक्ष्य है), राजसभाओं में आवागमन एवं अनेक प्रकार के शास्त्रों का अभ्यास करना; ये पांचों ही व्यवहार कुशल बनने के मूल कारण हैं।

जैन संस्कृति में यात्रा को आध्यात्मिक स्वरूप देने के लिए तीर्थङ्करों के जन्म, दीक्षा, ज्ञान एवं निर्वाण भूमि के दर्शन, स्पर्शन, पूजन च्यवन आदि का विधान है।

जैन साधु साध्वियों की चर्या में धर्म प्रचार को भी अनिवार्य स्थान दिया है। महावीर भगवान के सिद्धान्तों का उपदेश देकर जनता का सही पथ प्रदर्शन करने के लिए ग्रामानुग्राम भ्रमण करते हुये रहना, साधु जीवन का प्रधान अंग है। जैन परिभाषा में इस यात्रा को विहार की संज्ञा दी गई है, जिसका अपर नाम विचरण या भ्रमण है। उग्र विहारी होना श्रमण जीवन का एक विशिष्ट कर्त्तव्य है। वर्षाकाल के अतिरिक्त एक मास के लिए मुनिजनों को एवं दो मास के लिए आर्याओं को विना किसी शारीरिक असमर्थता या अन्य विशेष कारण के एक स्थान पर रहने का निषेध है। विहार करने से ही वीतराग प्ररूपित संयम का पालन और स्वस्थता रह सकती है। गृहस्थियों के साथ अधिक सम्पर्क रहने से सयम मे शिथिलता और स्नेह बन्धन वश दृष्टि राग आदि की भी सम्भावना है। विशेषावश्यक भाष्य में कहा कि "साधु साध्वी को एक ही प्रदेश में विचरण करने वाला न होना चाहिये, उसे किसी एक ही देश, नगर या ग्राम में आसक्ति रख कर बैठना योग्य नहीं है।"

विहार का सर्वाधिक लाभ आध्यात्मिक विकास पूर्वक निःसंगत्व, अप्रमत्तत्व और सहन शक्ति है। पाद विहार द्वारा एक ग्राम से दूसरे ग्राम, शहर एवं तीर्थ भूमियों में भ्रमण करने से

अनेक प्रकार की परिस्थितियों में से गुजरना पड़ता है :—कहीं समतल भूमि तो कहीं ऊबड़ खाबड़ जमीन, कहीं सड़क और कहीं पगडंडी, कहीं मरुभूमि के ऊंचे २ शुष्क धूलि के टीले तो कहीं ऐसी पथरीली भूमि कि पांव छिल जाय, गगन चुम्बी पर्वत, विषम और डरावनी घाटियां, जहां पद पद पर श्वापद जन्तुओं की बोलियां हृदय को कम्पित कर देती हैं और कभी २ भेंट भी हो जाना सम्भव है, तो कहीं हरे भरे नेत्रानन्ददायी प्रदेश। कहीं कोशों तक जलाशयों का अभाव और कहीं कलकल निनाद करती स्वच्छ नीरा सरिताएं और विविध जल जन्तुओं एवं विकसित कमलों से शोभायमान सरोवर, कहीं भांति २ के विहगों के मधुर गान से मुखरित तरु पंक्तियां तो कहीं मीलों तक पेड़ पौधों का चिन्ह भी नहीं! किसी ग्राम में श्रद्धाभारावनत सरल हृदय ग्रामीण चरण स्पर्श करने को उद्यत हैं अथच शुद्ध सात्विक पवित्र सीधा सादा भोजन भी बड़े भाव प्रेम से प्रस्तुत करते हैं तो कहीं तिरस्कार व उपेक्षा भाव से आहारादान का प्रसंग भी आ जाता है। किसी सूनसान अरण्य में दस्युगण सर्वस्व (वस्त्र, पात्र, पुस्तकादि) छीनने की इच्छा से मार्गावरोध कर देते हैं तो कहीं भक्त श्रावकगण आवश्यकता से अधिक भोजन-वस्त्रादि ग्रहण करने के लिए विनम्र प्रार्थना करते हैं। कभी किसी वृक्ष के नीचे या तृणकुटी में ठहरने का अवसर उपस्थित होता है तो कभी गगनचुम्बी अट्टालिकाओं में निवास करना पड़ता है। मतलब कि 'कभी घी घणा, कभी सूखा चणा।'

पादविहार द्वारा सैकड़ों हजारों मीलों की यात्रा करने वाले श्रमण-श्रमणी वर्ग को प्रकृति की मनोरम दृश्यावलियां अनायास ही दृष्टिगोचर होती रहती हैं जो पुद्‍गल की अद्‍भुत शक्तियों का परिचय देती हुइ उसकी नश्वरता एवं परिवर्तनशीलता का प्रत्यक्ष भान कराती हैं। चराचर पदार्थों का निरीक्षण करने से उनके सम्मुख भौतिकविज्ञान, मनोविज्ञान, भूगोल, खगोल, इतिहास, भूगर्भ विज्ञान, वस्तु विज्ञान, वनस्पति शास्त्र आदि विद्याओं के अनेक अज्ञात रहस्य सहसा ही स्पष्ट होते रहते हैं। उनके मानसिक ज्ञान भण्डार में अधिकाधिक वृद्धि होती रहती है और आत्म सरकार में भी अद्‍भुत सहायता मिलती है।

विशुद्ध प्राकृतिक वातावरण में भ्रमण करने से उनके हृदय में आनन्दमयी भावनाएं उत्पन्न होती रहती हैं, अन्तस् प्रफुल्लित होकर लोककल्याण की सौरभ का प्रचार प्रसार करने के लिए स्वत ही प्रेरित हो जाता है। विश्व मैत्री की प्रवल प्रेरणा प्राप्त होती है।

प्रकृति का शान्त वायु मण्डल आत्म निरीक्षण करने वालों के लिए अत्यन्त आवश्यक सुविधाजनक स्थान है, कोलाहल रहित स्थान में आत्म चिन्तन सरलता पूर्वक सहज ही किया जा सकता है। समस्त वाह्य वृत्तियां अनायास ही अन्तर्मुख होकर आत्म निरीक्षण में लीन होती हुई लक्ष्य प्राप्ति के लिए एकाग्रता प्राप्त कर सकती हैं।

प्रकृति निरीक्षण से कविजनों को काव्य प्रणयन की प्रेरणा मिलती है, लेखक व्यक्ति को विभिन्न प्रवृत्तियां जानने का बहुमूल्य

साधन प्रकृति की अपार विशाल तथा बहुरंगी लीलाएं हैं। पृथक् २ स्थानों की संस्कृतियां जानने का सुलभ साधन, विहार, वक्ता के लिए अमूल्य देन है। कई प्रकार की भाषाओं का ज्ञान, शब्दों का सही प्रयोग, अनेक प्रकार की साहित्यिक प्रवृत्तियां विहार करने वाले, देश देश में भ्रमण करके जनता को चेतावनी देने वाले साधु साध्वियों को सहज ही उपलब्ध होती रहती हैं। उनकी भाषा निखर जाती है और उसमें एक प्रकार की मृदुता और प्रसाद आ जाता है। जन जीवन का निकट से अध्ययन करके उनके जीवन में से पाप की कलुषता मिटाकर गुणों की सुनहरी कान्ति का उज्ज्वल प्रकाश द्योतित करना ही साधु जीवन का ध्येय है। परोपकार निरत साधुजन जनगण के कल्याणार्थ सतत भ्रमण करते रहते हैं।

हमारी चरितनायिका महानुभावा भी संयमी जीवन में आने के अनन्तर अनवरत विहारशील रह कर अप्रमत्त भाव की साधना में निरत रहती हैं। केवल परोपकार बुद्धि से ही भाषण संभाषण की क्रिया, निर्लेप भाव से वस्त्र, पात्र, भोजनादि का जो संयम स्थिति के लिए आवश्यक एवं अनिवार्य से हैं भोगोपभोग, और रागादि के प्रतिबन्ध से विमुक्त रहने के लिए उग्र विहार, तथा अनाहारिक पद की प्राप्ति के लिए आहार त्याग रूप तप के द्वारा पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा, आपके जीवन में पद पद पर दृष्टिगोचर होते हैं।



शास्त्राध्ययन और शिक्षा

अनेक संशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम् ।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः ॥

भावार्थ—अनेक प्रकार की शंकाओं-संदेहों को मिटाने वाला तथा परोक्ष पदार्थों-वस्तुओं को दिखाने वाला सर्व के लिए शास्त्र रूपी नेत्र है। जिसके ये शास्त्र रूपी आंखें नहीं हैं, वह अन्धा ही है।

मानव जीवन के उत्थान और निर्माण में शास्त्राध्ययन या शिक्षा का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। जो मनुष्य शास्त्रानुशीलन नहीं करते उनकी बुद्धि परिष्कृत नहीं हो पाती और वे जीवन में कोई उन्नति नहीं कर सकते, उनका सारा जीवन दुःखमय और उदासीन अवस्था में या अनेक प्रकार की चिन्ताओं में अथवा कलह की अग्नि में जलते हुए व्यतीत हो जाता है। कहा भी है :—

काव्य शास्त्र विनोदेन कालोगच्छति धीमताम् ।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ॥१॥

भावार्थः—काव्यामृत का पान करते हुए शास्त्राध्ययन या शास्त्रचर्चा करते हुए बुद्धिमानों का समय व्यतीत होता है। मूर्खों का समय किसी व्यसन के सेवन से, नींद लेते या क्लेश लड़ाई झगड़ा करते हुए बीतता है।

शास्त्रों मे विविध विषयों के ज्ञान का कोश संचित रहता है। जो व्यक्ति निरंतर शास्त्राध्ययन या शास्त्र श्रवण करते हैं उनके पास ज्ञान की अनन्तराशि का संग्रह हो जाता है। उनके भाव व भाषा परिमार्जित एवं सुसंस्कृत हो जाते हैं, जीवन में जागृति और स्फूर्ति आ जाती है।

स्वभावतः मनुष्य की वृत्तियां जन्म से तो अपरिमार्जित और असंस्कृत होती हैं, उसकी दशा खान से निकले हुए रत्न के सदृश होती है जब संगतराश के हाथों से उसकी काट छांट सफाई हो जाती है तब उसमें चमक आती है और उसकी शोभा अपूर्व हो जाती है तथा उसका मूल्य भी कई गुना अधिक हो जाता है। इसी प्रकार मानव वृत्तियों का भी संस्कार परिष्कार व सुधार शिक्षा द्वारा होता है। शिक्षा के द्वारा उनके अन्त करण की शुद्धि हो जाती है। विचार निर्मल और उच्च बन जाते हैं तथा योग्या-योग्य कार्य का निर्णय करने वाली विवेक शक्ति उत्पन्न हो जाती है। अध्ययन शील व्यक्ति की दुर्भावनाओं का नाश हो जाता है, तथा उसके हृदय में स्नेह, सहानुभति तथा शिष्टता आदि सद्-गुण निवास करने लग जाते हैं।

शास्त्रों मे नैतिक शिक्षाएं, धार्मिक उपदेश और आदर्श कथाएं प्रचुर परिमाण में प्राप्त होती हैं। उत्तम चरित्रों का मनुष्य के हृदय पर अमिट प्रभाव पड़ता है, उनमें वर्णित अद्भुत घटनाएं पाठक पाठिकाओं के हृदय पट पर अंकित हो जाती हैं। आप्त महापुरुषों के वाक्य धीरे धीरे मानव जीवन मे व्यावहारिक रूप

धारण करके उसकी उत्कर्षता में असाधारण वृद्धि करते हैं। उत्तम शिक्षाप्रद ग्रन्थ पाठक के मानस में आत्म गौरव की भावना को सुदृढ़ कर देते हैं। अध्ययनशील व्यक्ति सभी की दृष्टि में ऊंचा उठ जाता है और उसका सर्वत्र सम्मान होने लग जाता है। आदर्श साहित्य का पठन सन्तोष, धैर्य, उत्साह, उदारता आदि सद्गुणों का विकास करता है। उपर्युक्त सद्गुण मानव चरित्र के गौरव की वृद्धि करने वाले हैं।

उत्तम साहित्य सरिता का अवगाहन करने से कितनी शांति मिलती है ? मानसिक सन्तापरूपी मल को नष्ट करने का यह अव्यर्थ उपाय है। पाठक के हृदय में आशा विश्वास और उल्लास की ऊर्मियां उछलने लगती हैं, निराशा सन्देह और विषाद दूर भाग जाते हैं। उत्साह का समुद्र उमड़ जाता है, आलस्य नष्ट होकर स्फूर्ति आ जाती है। अध्ययनशील व्यक्ति गौरवपूर्ण विचार शक्ति युक्त हो जाता है। उसमे सत्संकल्प जागृत रहता है वह सदैव आत्मसम्मान को प्रधानता देता है कभी ऐसा आचरण नहीं करता जिससे उसे अपमानित होना पड़े। उसकी आत्महीनता की भावना निर्मूल हो जाती है और आत्मगौरव का भाव दृढ़ हो जाता है। इस आत्मगौरव की भावना के दृढ़ हो जाने पर मनुष्य कभी कुपथगामी या दुराचारी नहीं बन सकता। शोक मे नहीं घबड़ाता और हर्ष में फूलकर कुप्पा नहीं हो जाता। मानवता का त्याग प्राणान्त कष्ट आने पर भी वह नहीं कर सकता। उसका चरित्र पूर्ण उत्कर्ष को पहुंच जाता है। वह मानव से ऊंचा उठ कर देव (महा मानव) बन जाता है।

चरितनायिका महोदया को स्वयं ज्ञान प्राप्ति करने की तथा दूसरों को भी ज्ञान सिखाने की अत्यधिक हार्दिक अभिलाषा रहती थी। यद्यपि आपको अभी तक 'सस्कृत भाषा' पढ़ने का सुअवसर नहीं मिला था। राजस्थानी भाषाओं और गुजराती भाषा का सामान्य ज्ञान था; तथापि शास्त्रों के टब्बे और गुजराती भाषा में अनूदित प्रकरण चरित्र रास आदि पढ़ते २ आपकी बुद्धि इतनी परिमार्जित हो गई थी कि शास्त्रों की गम्भीर तात्विक चर्चा आपकी दैनिक चर्या का आवश्यक अंग बन गई और आपकी गणना थोड़े ही समय मे विदुषियों में होने लग गई। आपकी स्मरण शक्ति इतनी तीव्र थी कि एक बार देखी सुनी बात आप कभी भूलती न थीं। शास्त्रों, प्रकरणों और चरित्रादि की सहस्त्रश बातें आपको अपने नाम के सदृश ही याद रहती थी प्रत्येक नवीन शास्त्र पढ़ने की लालसा आपको सदा बनी रहती थी। ज्ञान प्राप्त करना उनके जीवन का प्रथम ध्येय था और ज्ञान प्राप्ति के लिए वे सतत प्रयत्नशील रहती थीं। आगे चल कर उन्होंने सस्कृत का भी अध्ययन किया और अपनी शिष्याओं को भी संस्कृत प्राकृत आदि भाषाएं पढ़ाई। कितनी ही साध्वियों को बनारस गवर्नमेंट कालेज की परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने का सौभाग्य सम्प्राप्त है।

बीकानेर का चातुर्मास

बीकानेर के चातुर्मास में आपने ११ उपवास की तपश्चर्या की थी। गुरुवर्य्या श्रीमती मग्नश्रीजी महाराज साहबा ने भी २२ उपवास किये थे।

कर्म रूप ईंधन को जलाने के लिए तप अग्नि स्वरूप है। शास्त्रकारों ने तप की महिमा अत्यन्त ही ऊंची बताई है। चरित-नायिका की श्रद्धा जितनी संयम व ज्ञान के प्रति थी उतनी ही तप के प्रति भी थी। आप आगे पढ़ेंगे कि उन्होंने प्रतिवर्ष बड़ी २ तपस्याएं की हैं एवं छोटी तपस्याएं तो प्रत्येक मास मे चलती ही थीं। बीकानेर में गुरुवर्य्या से आचाराङ्ग सूत्र, ज्ञाता सूत्र एवं प्रज्ञापना सूत्र का वांचन किया। चातुर्मास बाद वहाँ से विहार करके नागोर आदि आसपास के ग्रामों में विचर कर धर्म का प्रचार करती हुई आप अजमेर पधारीं।

वहां कुछ दिन रहकर पठन पाठन आदि का कार्य करती रहीं। किशनगढ़ से कितने ही श्रद्धालु श्रावक चातुर्मास की विनती करने आये। उधर अजमेर वालों का भी भारी आग्रह था। "परोपकार करना साधु जीवन का ध्येय है।" इसी वृत्ति को धारण करने वाली गुरुवर्य्या उद्योतश्रीजी महाराज साहिबा ने दोनों ही नगरों के श्रावकों के आग्रह को स्वीकृत किया और श्रीमती लक्ष्मीश्रीजी महाराज साहिबा, श्रीमती पुण्यश्रीजी महाराज

साहबा एवं भावश्रीजी महाराज साहब को तो किशनगढ़ भेजा और स्वयं मग्नश्रीजी महाराज और सिंहश्रीजी महाराज के साथ अजमेर ही विराजीं।

किशनगढ़ के इस चातुर्मास में भी आपने कर्म काष्ठ को जला कर भस्म कर देने वाले तप का आराधन किया। अर्थात् बड़े उत्कृष्ट भावों से अट्ठाई की। उधर अजमेर में श्रीमती मग्नश्रीजी महाराज ने १७ प्रकार के संयम की आराधना स्वरूप १७ उपवास का तप किया।

विक्रम सं० १९३५ के इस चातुर्मास में आपने प्रथम बार व्याख्यान दिया। वैसे तो प्रतिदिन श्रीमती लक्ष्मीश्रीजी महाराज व्याख्यान देते ही थे। कभी २ आपका उत्साह बढ़ाने को आज्ञा देते थे कि तुम व्याख्यान वांचो। अभी से ही आपकी व्याख्यान शैली सुन्दर थी। श्रोताजन मन्त्रमुग्धवत् श्रवण करने में तल्लीन हो जाते थे, सत्तत्वज्ञान की पीयूष धारा का पान करके कुतत्वरूप विष की विषम ज्वाला से मुक्त होकर परम आनन्द का अनुभव करते थे।

चातुर्मास के बाद आप सब गुरुवर्या के चरणों में अजमेर पधार गईं। अशाता वेदनीय के उदय से यहां पर हमारी चरित-नायिका को ज्वर रूप व्याधि ने आ घेरा। उधर श्रीमती उद्योत श्रीजी महाराज की भावना मालवदेश में स्थित मक्षी पार्श्वनाथ आदि तीर्थों की यात्रा करने की थी। आपकी अस्वस्थता देखकर यात्रा स्थगित रखने का विचार करने लगे। तब चरितनायिका ने

प्रार्थना की कि आप प्रसन्नता से मालव देश पधारिये, मैं फिर कभी यात्रा कर लूंगी। अभी तो आप मेरे लिए क्यों यात्रा से वंचित रहती हैं।

श्रीमती उद्योतश्रीजी महाराज साहिबादि तीन तो मालव देश की ओर विहार कर गईं तथा चरितनायिका को शारीरिक अस्व-स्थता वश दो मास अजमेर में ही रहना पड़ा। फाल्गुन में अजमेर से विहार करके ग्रामानुग्राम विचरती जैन शासन की ध्वजा फह-राती अमृतमय तत्ववारि वर्षा से विषय कषायादिजनित जनमा-नस का ताप शमन करतीं आप फलोधी की आग्रह पूर्ण प्रार्थना को स्वीकृत करके चैत्र शुक्ला द्वितीया को फलोधी की रत्नप्रसू वसु-न्धरा में पधारीं। उधर से पूज्यवर्या उद्योतश्रीजी महाराजादि भी महाप्रभावक तीर्थ मक्षी में भगवान् पार्श्वनाथ प्रभु के दर्शन से नयनमन पावन करती हुई एवं मालव के मार्ग में आने वाले गाँवों में धर्मोपदेश देती हुई अक्षय तृतीया को फलोधी में पधार गईं।

फलोधी में दीक्षाएं

स्फूर्जल्लोभ कराल वक्त्र कुहरो हुङ्कार गुञ्जारवः,
कामक्रोध-विलोल-लोचन-युगो मायानखश्रेणिभाक्।
स्वैरं यत्र स बम्भ्रमीति सततं मोहाह्वयः केसरी,
तां संसार महाटवीं प्रतिवसन् को नाम जन्तुः सुखी
(पद्मानन्द)

भावार्थः—जिस संसार रूपी महारण्य में खुले हुए लोभ रूप कराल मुखवाला, हुंकार से गर्जन करता हुआ, काम क्रोधरूप चञ्चल नेत्रों वाला, माया के तीक्ष्ण नखोंवाला, मोह नामक केसरी सदा स्वच्छन्दता से खूब भ्रमण करता रहता है। उसमें रहने वाला कौन प्राणी सुखी रह सकता है? अर्थात् कोई भी सुखी नहीं रहता।

गुरुवर्य्या उद्योतश्रीजी महाराज के वैराग्यरस पूर्ण व्याख्यानों से श्रोताजनों के हृदय में सांसारिक भोगविलासों से विरक्ति के भाव का उद्भव हो जाता था। वे थोड़ी देर के लिए शान्त रस में निमग्न हो जाते थे कर्मविपाक की नैगोदिक नारकीय व प्रत्यक्ष दृष्टि गोचर होने वाली मानवीय एवं तिर्यग् योनीय असंख्य प्रकार की वेदनाएं—शारीरिक और मानसिक पीड़ाएं, आधिव्याधि-उपाधियों से आकीर्ण जीव की विभिन्न कष्टमय अवस्थाएं, उनके हृदय को कम्पित कर देती थीं, संसार की असारता का भान होने

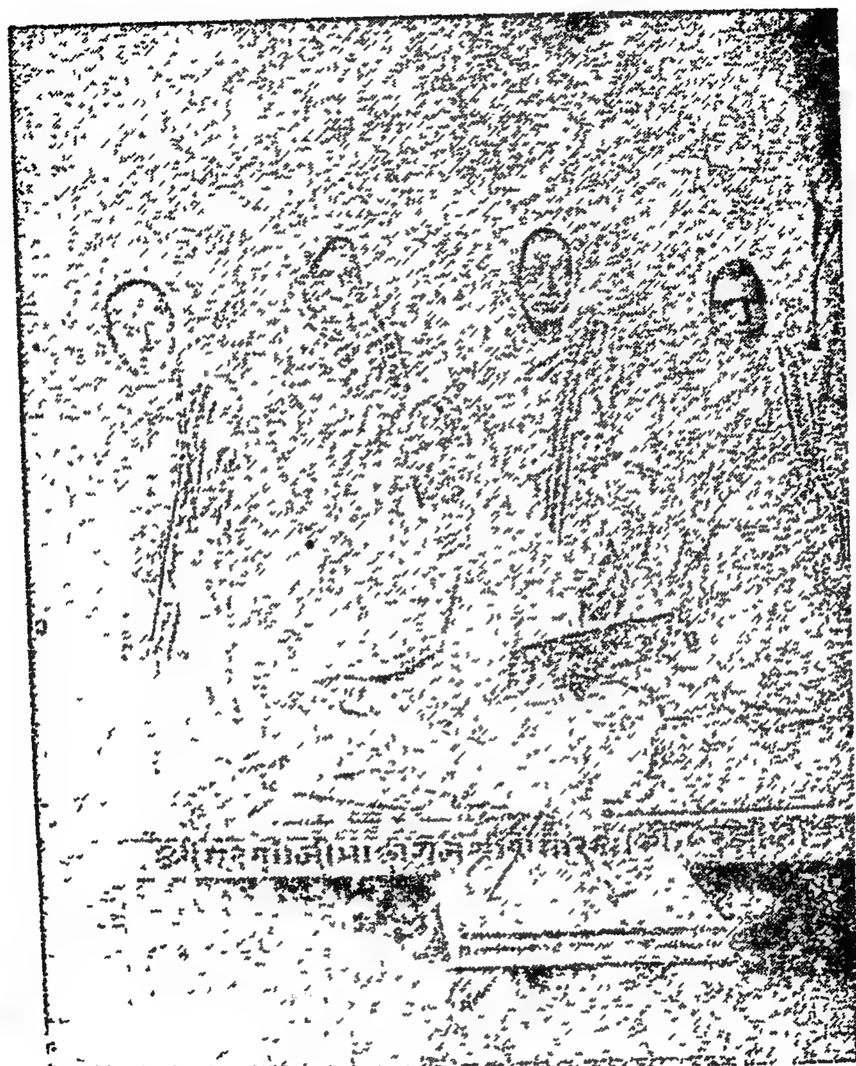
लगता था और आत्मा की स्वाभाविक स्थिति प्राप्त करने की आतुरता होने लगती थी। परन्तु मनुष्य प्राय: परिस्थितियों का दास है, विरले ही ऐसे आत्मशक्ति सम्पन्न व्यक्ति होते हैं जो परिस्थितियों की परवाह न करके ध्येय या लक्ष्य प्राप्ति के लिए एकनिष्ठता से सतत प्रयत्नशील रहते हैं। अस्तु:-

त्याग भावनाओं का सागर कई भव्यात्माओं के अन्तस्तल से उमड़ता है पर कार्यरूप में परिणत करने का सौभाग्य कतिपय महान् आत्माओं को ही मिलता है।

श्री अमीचन्दजी की कन्या रत्न उमराव कुमारी के हृदय में वैराग्य का स्रोत उद्भव हुआ। उन्हों ने अपनी उत्कट भावना के बल पर पितृजनों की अनुमति प्राप्त कर ली एवं भागवती दीक्षा धारण करने के उत्सव होने लगे। साथ ही एक अन्य विरागिनी भी त्याग के पथ की पथिका बनने को उत्सुक हो गई।

दोनों का दीक्षा समारोह खूब धूमधाम से हुआ। उमराव कुंवर को पुण्यशीला पुण्यश्रीजो महाराज की शिष्या बना कर 'अमरश्री' नाम दिया एवं द्वितीया विरागिनी 'सिंहश्रीजी' महाराज की शिष्या बनी तथा उनका नाम 'वृद्धिश्रीजी' रक्खा गया।

विक्रम सं. १९३६ के चातुर्मास में खीचन्द वालों की विनती से वहाँ पधारे। हमारी चरितनायिका ने श्रावण में पक्ष-क्षमण की तपस्या से आत्मा को उज्ज्वल बनाया।



चरितनायिका की प्रधान शिष्या स्व० श्रीमती श्रृंगार श्रीजी म० सा० स्वशिष्याओं के साथ

तपस्याकाल में भी नित्य ज्ञाता सूत्र का व्याख्यान और मध्यान्ह में परमर्हत् नृपति कुमारपाल का रास श्रीमती जी ही फरमाती थीं।

चातुर्मास बाद ही एक विरागिनी सारीबाई को दीक्षा देने आप फलोधी पधारीं। वैराग्यवती सारीबाई फलोधी निवासी इन्द्रचन्दजी कोंचरकी पुत्री और चुन्नीलालजी श्रावक की धर्मपत्नी थीं।

सारीबाई कई वर्षों से दीक्षेच्छु थी, और संयमी जीवन के योग्य चर्या रखती हुई एवं ज्ञानाभ्यास करती हुई आत्मविकास के लिए प्रयत्नशील थी। शारीरिक सौन्दर्य के साथ २ आत्मगुणों की सुन्दरता भी भाग्यवशात् प्राप्त हुई थी, बड़ी धूमधाम से मार्ग कृष्ण द्वितीया को आपने भागवती दीक्षा ग्रहण की। स्वरूपानुरूप आपका नाम भी शृंगारश्रीजी रक्खा गया और आप चरितनायिका की शिष्या बनाई गईं।

इसी मास मार्गशीर्ष कृष्ण १३ को फलोधी निवासी खूबचन्द जी गुलेछा की पुत्री सिरदारबाई 'धर्मपत्नी छगन चन्दजी नीमाणी, की दीक्षा हुई और 'सरदारश्रीजी अभिधान दिया गया। गु. उद्योतश्रीजी आदि सर्व साध्वी मंडल ६ सहित विहार करके लोहावट पधारे। कुछ दिन वहाँ निवास करके चारों नवदीक्षित आर्याओं की बड़ी दीक्षा कराने के लिए पुनः फलोधी पधारे और बड़ी दीक्षा करवा कर नागौर की ओर विहार कर दिया।

विक्रम संवत् १९३७ का चातुर्मास नागौर के हीरावाड़ी उपाश्रय में हुआ। आपके धर्मोपदेश से वहाँ जनजागृति एवं धार्मिक प्रवृत्ति की प्रवृद्धि हुई, मग्न श्रीजी ने ११ उपवास किये तथा शृंगार श्रीजी ने १८ उपवास की तपस्या की। श्रीअनराजजी की वेगाणी की भावना श्री केशरियानाथ तीर्थ का संघ निकालने की हुई व तदनुसार चरितनायिका श्रीमती पुण्यश्रीजी के साथ शृंगारश्रीजी व सरदारश्रीजी को देकर गु० उद्योतश्रीजी म. ने यात्रार्थ संघ के साथ भेजा। भगवान् केशरियानाथजी की यात्रा करके सर्व संघ पौष शु० १५ को पुनः नागौर लौट आया।

यहाँ से चरितनायिका ने वृद्धिश्रीजी व शृंगारश्रीजी के साथ जैसलमेर की यात्रा करने के लिए विहार कर दिया और उद्योतश्रीजी म. आदि फलोधी पधार गयीं। फागुन शुक्ला ५ को आप वहाँ पहुंचीं और इस अद्भुत तीर्थ की यात्रा करके अत्यन्त आनन्दित हुईं।

संघ के अत्याग्रह से विक्रम संवत् १९३८ का चातुर्मास आपने जैसलमेर में किया। आपकी वैराग्य रस पूर्ण देशना से ३ श्राविकाओं की वैराग्य भावना जागृत हुई। श्रीमती शृंगारश्रीजी ने १५ उपवास की तपस्या की। चातुर्मासानन्तर विहार करके आपने श्री लौद्रवपुर की यात्रा करते हुए आसपास के ग्रामों में विचर कर धर्म का प्रचार किया और अपनी गुरुवर्या के दर्शनार्थ फलोधी पधार गईं।

१ इनमें से दो की दीक्षा बाद में हुई।

सुयोग्या श्रीमती पुण्यश्रीजी म. सा. के सुयश सौरभ से गुरुवर्य्या उद्योतश्रीजी म. सा. अत्यन्त प्रमुदित हुईं और उन्नति की कामना करते हुए हार्दिक आशीर्वादपूर्वक वात्सल्य रस की स्रोतस्विनी में उन्हे मज्जन करा कर कृतार्थ किया।

गुरुवर्या श्रीमती उद्योतश्रीजी म. सा. ने देखा कि पुण्यश्रीजी अब पृथक् विचरने योग्य हो गई हैं, इनमें नेतृत्व के यथेष्ट गुण हैं। नेता में गम्भीरता, धीरता, विद्वत्ता, क्षमाशीलता आदि गुणों के साथ ही उत्सर्ग अपवादादि का शास्त्रीय ज्ञान होना भी परमावश्यक है। इनकी योग्यता का विचार करके गुरुवर्या ने पृथक विचरने की आज्ञा प्रदान की।

सरदारश्रीजी व शृंगारश्रीजी व अन्य साध्वियाँ साथ देकर चरितनायिका को नागौर की ओर विहार करा दिया। मार्ग के गाँवों में धर्मोपदेश देती हुई जैन धर्म की महान् प्रभावना करती हुई आप ने वर्षा काल के समीप आने पर नागौर श्री संघ के अत्याग्रह से वहाँ सं १६३६ को चातुर्मास मे स्थिति की।

इस चातुर्मास में आपने व्याख्यान में वैराग्यरस परिपूर्ण देशना से वहाँ कई भव्य आत्माओं को संसार से विरक्त होकर त्यागमार्ग में प्रवृत्ति करने में प्रेरणा दी, जिसका परिणाम आगे प्रकट होगा।

श्रीमती चरितनायिका के एक विषैला स्फोटक हो गया था जिसकी कई दिनों तक भारी पीड़ा रही। श्रीमती शृंगारश्रीजी म. व सरदार श्रीजी म. ने क्रमश. २१ और ११ उपवास किये तथा संघ में भी बहुत तपश्चर्या हुई। चातुर्मासानन्तर शृंगार श्रीजी म. व सरदारश्रीजी म. को तो पाली की ओर विहार करा दिया तथा आप अन्य साध्वीगण को साथ लेकर शरीर का स्फोटक ठीक न होने के कारण पुनः फलोधी पधार गईं, स्फोटक वेदना के कारण आपश्री को १ वर्ष यहां ही विराजना पड़ा।

आपने यहाँ भगवती सूत्र तथा उपदेशमाला पर अपने व्याख्यानों में विवेचन आरम्भ किया। आपकी विवेचनाशक्ति से बड़े २ शास्त्रज्ञ श्रावक स्तब्धचकित हो जाते थे, चिरकाल से हृदय में उद्भूत होने वाले सन्देहों का अब सहज ही समाधान होता जा रहा था अतः उनके आनन्द की सीमा न थी, जहाँ भी पाँच सात व्यक्ति एकत्रित होते व्याख्यान की चर्चा चल पड़ती और व्याख्यान शैली की प्रशंसा के वचनों का प्रवाह बह निकलता। लोग हर्ष विभोर होकर अलौकिक आनन्द का अनुभव करने लगते।

आपके अद्भुत प्रभाव से इस वर्ष धर्म कार्यों में अत्यधिक रुचि उत्पन्न हुई। तपस्या की तो लहरें ही उछलने लगीं।

श्रीमती शृंगारश्रीजी म. ने १६ उपवास तथा अन्य भी कई साध्वीजीने और श्रावक श्राविकाओं ने कई प्रकार के तप करके

अपने आत्मा को उज्ज्वल बनाया। सं. १६४० का चातुर्मास पुनः फलोधी हुआ।

चौमासे बाद गिरासर वाले अपने यहाँ पधार कर जन्म भूमि को पावन बनाने की प्रार्थना करने आ पहुंचे। श्रीमती उद्योत श्रीजी म. सा. ने उनका अत्यन्त आग्रह जान कतिपय साध्वी जनों को साथ देकर चरितनायिका को गिरासर की ओर विहार करा दिया।



जन्मभूमि में आगमन

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"

भावार्थः-माता और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है।

मातृभूमि के प्रति मानवमात्र के हृदय में स्वाभाविक प्रेम होता है। मानव की तो बात ही क्या! स्थावर जड़ प्रकृति में भी मातृभूमि का प्रेम दृष्टिगोचर होता है। किसी स्थान विशेष में उत्पन्न होने वाले वृक्ष लता गुल्मादि दूसरे क्षेत्र में जाकर उतने नहीं बढ़ते। जैसे काश्मीर में होने वाले सेव, अंगूर आदि अन्य देश-दक्षिण आदि में उगाये भी जायं तो उनके स्वाद व आकार प्रकार में काफी अन्तर रहता है। उत्तर प्रदेश में पैदा होने वाले आम्रकुञ्ज तिब्बत में कहाँ मिल सकते हैं! अभिप्राय यह है कि अचल वस्तुओं-पदार्थों में भी जन्मभूमि के प्रति स्नेह रहता है। पशु-पक्षी भी अपनी जन्म-भूमि में प्रसन्न रहते हैं। गाय बैल आदि पशु भी जिस स्थान पर रहते हैं उसे कभी नहीं भूलते। इन्हें दूर छोड़ दिया जाने पर अपने स्थान पर स्वयं लौट आते हैं।

मातृभूमि के लता-वृक्ष, पशु-पक्षी नर-नारी आदि के प्रति प्राणी-मात्र का जन्म से ही अपनत्व का भाव हो जाता है। इन्हे देखने की लालसा उसके हृदय में सदा बनी रहती है। जन्मभूमि या स्वदेश के प्रति जीव मात्र को सहज आकर्षण होता है। जहाँ

मनुष्य जन्म लेता है, जहाँ की मृत्तिका में खेल कूद कर बड़ा होता है, जहाँ के अन्नजल से उसके शरीर का पोषण होता है, उस स्थान के प्रति एक प्रकार का ममत्व भाव होता ही है। मातृभूमि का ऋण चुकाना प्रत्येक का कर्तव्य है। इस में किसी को सन्देह करने का कोई कारण नहीं। यह विषय निर्विवाद है।

"स्नेहोहि जन्मनोभूमे र्वलीयान्महतामपि"

महापुरुषों को भी जन्मभूमि के प्रति तो बड़ा स्नेह होता है।

गिरासर चरितनायिका की जन्मभूमि था। आपने गिरासर की रज में रजः क्रीड़ा की थी, वहाँ के अन्न जल से शरीर का निर्माण और उपचय हुआ था, वहाँ के वातावरण में रहकर बाल्यावस्था व्यतीत की थी।

उसी जन्मभूमि मे आकर अब वे अपने आपको एक प्रकार से प्रसन्न अनुभव करने लगीं। आपका हृदय मातृभूमि के प्रेम से भर आया। गिरासर वासियों ने आपका हार्दिक स्वागत किया। अपनी ही भूमि के इस रत्न को इस रूप में देखकर वे हर्ष गद्-गद् हो गये और अपने आपको धन्य मानने लगे। इन की गौरव गरिमा सुनकर वे आनन्द विभोर हो गये।

यद्यपि हमारी चरितनायिका सांसारिक सम्बन्धों का त्याग करके साध्वी बन चुकी थीं, विश्व मैत्री की भावना से रोम-रोम ओतप्रोत हो चुका था। संसार के सभी जीवों के प्रति आत्मवत्

दृष्टि प्राप्त कर लेने की साधना के पथ की पथिका बन चुकी थीं, इसी अवस्था को प्राप्त कर लेने की आराधना में सतत प्रयत्नशील रहती थीं, तथापि मातृभूमि का ऋण अभी आप अपने ऊपर चढ़ा हुआ समझती थीं।

प्रत्येक प्राणी पर मातृभूमि का ऋण रहता है। साधु साध्वी भी प्राणी ही तो हैं। पृथ्वीकाय आदि हमारे उपकारी हैं, ऐसा शास्त्रों में उल्लेख है। उपकारी से अनृण होना आवश्यक कर्त्तव्य है। ऐसा न करने वाले की गिनती कृतघ्नों में होती है। हाँ, साधुओं और गृहस्थों के अनृण होने के तरीके अवश्य पृथक् पृथक् हैं। त्यागीवर्ग वहाँ की जनता में फैले हुए अज्ञान, अन्याय दुर्व्यसन, अधर्म, अन्ध श्रद्धा आदि को अपने उपदेश द्वारा दूर करके अनृण बन सकता है।

गिरासर में पधार कर चरितनायिका वहाँ की जनता को अपने धर्मोपदेश द्वारा शिक्षा देकर धर्म की ओर प्रवृत्त करने के लिए प्रयत्नशील हुई और आप को काफी सफलता भी मिली। वहाँ के सरल प्रकृति लोगों पर आपका काफी प्रभाव पड़ा और कई अजैनों ने आमिषभक्षण, मद्यपान, तम्बाकू, भाँग, गाँजा चरस आदि के त्याग की शपथ ली, कई लोगों ने शक्त्यानुसार त्याग प्रत्याख्यान आदि किए। आपके माता-पिता एवं कुटुम्बीजनों तथा ग्रामनिवासियों ने चातुर्मास के लिए आग्रह पूर्ण विनती की, परन्तु फलोधी में उद्यापन व मन्दिरोंपर कलशारोहण का समारोह समीप था। अतः आप जन्मभूमि में केवल एक मास ही विराज सकीं।

आपने उपदेशों से अपने गृहस्थपने के सम्बन्धी जनों को धर्म की ओर अग्रसर किया। आपके छोटे भाई चुन्नीलालजी की हृदयवाटिका में इसी अवसर पर वैराग्य बीजवपन हो गया जिसने भविष्य में वृक्षरूप धारण किया। श्रीमान् त्रैलोक्य सागरजी म. सा. आपके लघु भ्राता थे।

फलोधी में कलशारोहण व उद्यापन

फलवर्द्धि नगरी अपनी कतिपय विशेषताओं के कारण राजस्थान में एक विशेष स्थान रखती है। ओसवालों की जन्म-भूमि ओसियाँ इसके पास ही होने से फलोधी के आस-पास के ग्रामों में भी जैनों का निवास है। फलोधी में ओसवालों के अनुमानतः उस समय १५०० घर थे जो सभी प्रकार सम्पन्न थे। सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि लोग सरल धार्मिक श्रद्धावान और नीति कुशल थे।

श्री जिनमन्दिरों पर स्वर्ण कलश नहीं थे, यह बात सबको खटकती थी और कलशारोहण शीघ्र कराने को उत्सुक थे।

उधर फलोधी निवासी श्री केशरीमल ढड्ढा की धर्मपत्नी जवाहर बाई को वीशस्थानकतप का उद्यापन भी साथ ही करने की भावना उत्पन्न हुई। दोनों ही उत्सव खूब धूम-धाम से होने की तैयारियाँ आरम्भ हो गईं।

लोहावट निवासी जीवन चन्दजी पारख की पुत्री और लक्ष्मी चन्दजी झावक की धर्मपत्नी श्रीमती कसूम्बी बाई की अपनी पञ्चवर्षीया कन्या को छोड़कर भागवती दीक्षा धारण करने की भावना भी अत्यन्त उग्र थी। ये कसूंबीबाई चरितनायिका की अत्यन्त निकट सम्बन्धिनी पौत्रवधू थी। (आपके ज्येष्ठ श्रीजेठ-मलजी के पुत्र की पत्नी)

इन सब कारणों से गिरासर में आपका अधिक निवास न हो सका। उक्त उत्सवों में बाहर की जैन जनता भी काफी संख्या में आई थी।

कलशारोहण उत्सव से पूर्व कसून्वी बाई की दीक्षा वि. सं १९४१ को ज्येष्ठ कृष्ण १२ के दिन बड़े समारोह पूर्वक हुई और शृंगारश्रीजी म. की शिष्या बनाकर 'केशरश्रीजी' नाम रखा गया। साथ ही लोहावट की एक विरागिनी को दीक्षा देकर भीमश्रीजी नाम दिया गया।

ज्येष्ठ शुक्ल में कलशारोपण व उद्यापन भी खूब धूम-धाम से हुए। इन उत्सवों में सम्मिलित होने पोहकरण के भी कई श्रावक श्राविका आये थे। उत्सव समाप्त होने पर उन्होंने श्रीमती उद्योतश्री म. से प्रार्थना की कि हम पर कृपा करके आपश्री श्रीमती पुण्यश्रीजी म. आदि को पोहकरण चातुर्मास करने भेजें। इससे वहाँ बड़ा भारी उपकार होगा। हम ग्रामनिवासी भी धर्मामृत का पान करके अनादिकालीन अज्ञान, विषय कषा-यादि के विष से मुक्त बनेंगे।

गुरुवर्य्या महोदया ने भी इस विनती को सहर्ष स्वीकृत करके उन्हें कृतार्थ किया और श्रीमती चरितनायिका को दो साध्वियाँ शृंगारश्रीजी, केशरश्रीजी को साथ देकर पोहकरण चातुर्मासार्थ भेज दिया। वहाँ के लोगों की भक्ति बड़ी श्लाघनीय थी।

इस चातुर्मास में श्रीमतीजी साहिबा ने उत्तराध्ययन सूत्र का व्याख्यान किया। आपकी प्रवचन-सुधा का पान करके श्रोताजन बड़े आनन्दित होते थे। वैराग्यरस पूर्ण व्याख्यानों से जनता मे अभूतपूर्व जागृति हुई और कई दम्पतियों ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया तथा पंचरगी आदि कई प्रकार की तपश्चर्याएं हुई।

श्रीमती शृंगारश्रीजी ने २० उपवास तथा श्रीमती केशरश्रीजी ने ११ उपवास का तप किया। पूजाएं अट्ठाई महोत्सव आदि भी यथाशक्ति अत्यन्त भाव पूर्वक किये गये।

इस प्रकार सं. १६४१ का यह चातुर्मास गत चातुर्मासों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण रहा और चातुर्मासानन्तर आप श्रीमतीजी गुरुवर्या महोदया की सेवा मे फलोधी पधार गईं।

वहाँ पर फिर जैसलमेर की पूर्वोल्लिखित दो विरागिनियों की दीक्षा हुई और 'झवेरश्रीजी' 'चम्पाश्रीजी' नाम दिया गया। दीक्षा के बाद ही गुरुवर्य्या महोदया ने आपको चार साध्वियाँ साथ देकर नागोर की ओर विहार करा दिया क्योंकि नागोर वालों का अत्यन्त आग्रह था।

कुचेरा में अभूतपूर्व उपकार

फलोधी से विहार करके आप ग्रामानुग्राम विचरण करतीं, अमृतस्राविणी देशना से भव्यजनों के तापत्रय शमन करतीं, संयम की साधना में तत्पर रहती हुई नागौर पहुंचीं, चातुर्मास का समय अभी दूर था अतः आपने समीप के गांवों में विचरण करके वहां की जनता में जागृति लाने का संकल्प किया, तदनुसार विहार करके आप कुचेरा पधारीं।

कुचेरा में ओसवालों की काफी संख्या थी। वे जिन-मन्दिर के दर्शन पूजन से अपने जीवन को सफल बना रहे थे, किन्तु दीर्घ काल से वहां संवेगपक्षीय साधु साध्वियों के विहरण के अभाव में वे सब सनातन पथ भूल कर उन्मार्ग मार्ग गामी बन गये थे, यहां तक कि जिस जिन मन्दिर का भक्ति एवं श्रद्धा से सहस्रों रुपये व्यय करके निर्माण कराया था, उस मन्दिर में पूजन तो दूर रहा, पर दर्शन करना भी छोड़ बैठे थे, यहां तक अनुचित व्यवहार आरम्भ हो गया था कि मन्दिर के द्वार बन्द कर चारों ओर कांटों की बाड़ सी लगा दी गई थी।

इस परिस्थिति से गुरुवर्य्या महोदया को बड़ा सक्षोभ हुआ, हृदय मे अत्यधिक आघात पहुंचा और नेत्रों से अश्रुधारा बहने लग गई। सिंघवी चेवर चन्दजी अमोलक चंदजी द्वारा बाड़ हटाई गई, मन्दिरके द्वार खोले गये, सब साध्वियों सहित

गुरुवर्य्या ने वीतराग परमात्मा की भव्य प्रतिमा के दर्शन करके नेत्र हृदय आल्हादित किये। प्रतिमाएं दीर्घकाल से अपूज्य थीं, मन्दिर में कूड़े कर्कट का ढेर हो रहा था। स्थान २ पर अश्लीलों ने अपने निवास स्थान बना रक्खे थे। यह सब देख कर आपका हृदय विदीर्ण होने लगा। दर्शन करके बाहर पधार गईं। शहर मे निवास करने की इच्छा नहीं हुई। साध्वियों को आदेश दिया गया कि यहाँ ठहरना नहीं है, न आहार पानी करना है, कमर बाँध कर अन्य गांव की ओर प्रयाण-विहार करना है, शीघ्र तैयारी करो। इस आदेश से सब साध्वियाँ तैयार होने लगीं।

इधर संघने भी ये शब्द सुने तो सब के दिल में एक प्रकार की चोट सी लगी। बहुत से लोग मिल कर गुरुवर्य्या से निवेदन करने लगे—'आप यह क्या कर रही हैं, हमारे गांव में पधारीं और आहार पानी किये बिना ही विहार कर रही हैं। ऐसा नहीं हो सकता। यह तो हमारे लिए महान् दुख और लज्जा की बात होगी, हम आपको हर्गिज नहीं जाने देंगे आहार पानी यहाँ करना पड़ेगा।'

गुरुवर्य्या ने फरमाया-जिस गांव में जिनमन्दिर की ऐसी दुर्दशा हो, इतनी आशातना हो, मन्दिर के चारों ओर काटों की बाड़ लगा दी गई हो, ऐसे गांववालों के घर का आहार पानी, लेना हमें नहीं कल्पता है। आप लोग श्रावक हैं। भगवान् महावीर का नाम जपते हैं। उन्हीं भगवान् की प्रतिमा का यह अनादर! इतना अपमान! इतनी आशातना! आप लोगों को

शर्म आनी चाहिए। अब आप हमें विशेष कहने का अवसर न दें। हम यहाँ हर्गिज आहार पानी नहीं करेंगे, हमसे भगवत् प्रतिमा और मन्दिर की यह दुर्दशा नहीं देखी जाती। हमें जल्दी से जल्दी जाना है।

उपस्थित जन इस सत्यता पूर्ण एवं सचोट उत्तर को श्रवण कर किंकर्त्तव्यविमूढ़ से हो गये, फिर भी हिम्मत करके सिंघवी बन्धुओं ने गाँव के सब लोगों को एकत्रित किया और सब लोग मार्गावरोध करके खड़े हो गये। गुरुवर्य्या भी एक वृक्ष के नीचे अपनी साध्वियों सहित विराजमान हो गईं; जाने का मार्ग अवरुद्ध था।

संघने मिल कर कुछ निर्णय किया और पुनः गुरुवर्या से प्रार्थना की कि 'साध्वीजी महाराज, आप जो आज्ञा करेंगी वह हम करेंगे, पर आपको भूखे प्यासे-बिना आहार पानी किये कभी न जाने देंगे। यह हमारा दृढ़ विचार ही नहीं, निश्चय है।'

तब आपश्री ने फरमाया कि यदि आपलोगों का ऐसा ही दृढ़ विचार है कि हमें भूखे नहीं जाने देना है तो जिन मन्दिर की आशातना मिटनी चाहिये तथा पूजा आदि की सुव्यवस्था होनी चाहिये। तभी आपका आहार पानी करके जाने का आग्रह स्वीकार किया जा सकेगा।

सब लोग उसी समय मन्दिर सम्बन्धी सफाई पूजा आदि के कार्य में लग गये, और शीघ्र ही श्रीमन्दिरजी के चारों ओर

को कांटों की झाड़ हटा कर सफाई कर दी गई। बड़े आग्रह से गुरुवर्य्या को उपाश्रय में ले जा कर ठहराया गया। दिन का बहुत सा भाग बिना आहार पानी के ही व्यतीत हो चुका था। अब सन्ध्या कालीन आहार पानी किया गया।

दूसरे दिन से ही वहां आप का प्रवचन होने लगा। आप आगम प्रमाणों व युक्तिपूर्ण दृष्टान्तों व सत्य सिद्धान्तों से पूर्ण प्रभावशाली प्रवचनों द्वारा जन-मन की भ्रान्तियों का निवारण करने लगीं। अल्प समय में ही आपके प्रवचनों का ऐसा अद्‌भुत प्रभाव पड़ा कि परमात्मदेव की प्रतिमा के दर्शन वन्दन पूजन में वे लोग अतुल लाभ समझने लगे। अनेक घर परिवार प्रभु पूजक बन गये।

आपने वहाँ ऐसा अभूतपूर्व उपकार किया जिसका परिणाम आज भी जनता के सम्मुख है। आज कुचेरा का वह मन्दिर एक दर्शनीय स्थान बन गया है। अनेक व्यक्ति दर्शन पूजन का लाभ लेकर अपने मानव जीवन को सार्थक बना रहे हैं। तथा आस-पास के गाँवों के एवं अन्य स्थानों के यात्री भी दर्शन पूजन करके कृतार्थ होते हैं।

कुचेरा वासी कितनेक वृद्धजन आज भी आपका नाम बड़ी श्रद्धा व भक्ति से स्मरण करते हैं। आप ढाई मास वहाँ विराजीं। इतने समय में आपने वहाँ के ६१ घरों को प्रभु पूजक बना दिया। चातुर्मास का अत्यन्त आग्रह होने पर भी नागौर वालों को पहले स्वीकृति दी जा चुकी थी, अतः आप नागौर पधार गईं।

नागौर में पदार्पण

हमारी चरितनायिका में एक विलक्षण आकर्षण शक्ति थी, वे जहां भी पदार्पण करतीं वहां के लोग आपके पास बरबस खिंचे चले आते थे। वास्तव में विश्ववात्सल्य की भावना जिनके रोम २ में व्याप्त होती है, जिनका ज्ञान वास्तविक वस्तु स्थिति का विवेचन करने में उपयुक्त सामर्थ्य रखता है, जिन्होंने तप के द्वारा अन्ततम की शक्ति को जागृत कर लिया है और त्याग की साक्षात् जीवित मूर्ति होते हैं. लोक कल्याण के लिए ही जीवन समर्पित कर देते हैं, उनकी ओर जनता का आकर्षित होना स्वाभाविक है।

आपका व्यक्तित्व उपयुक्त सभी विशेषताओं से परिपूर्ण था। इसी कारण से आप जहां भी पधारतीं, जनता में एक प्रकार की अपूर्व जागृति आ जाया करती थी। नागौर में आपके व्याख्यानों की धूम मच गई। जैन-अजैन सभी नागरिक आपका व्याख्यान श्रवण करने आने लगे।

वहां पर आप व्याख्यान में श्री ज्ञाता सूत्र तथा भावनाधिकार में श्री जम्बू कुमार चरित फरमाती थीं। दोनों ही वैराग्य रस पूर्ण ग्रन्थ हैं। इन पर आप अपनी प्रखर बुद्धि से ऐसा अद्भुत विवेचन करती थीं कि श्रोताजन आनन्दमग्न हो जाते थे। आपकी वैराग्य रस प्रवाहिनी सरिता में स्नान करके जनता के हृदय में रहे हुए विषय कषायादि रूप मल दूर हो जाते थे। भौतिक पदार्थों की असारता प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती थी। सांसारिक भोगविलासों की घृणास्पदता का स्पष्ट भान हो जाता था।

कुटुम्बीजनों की स्वार्थ बुद्धि का रूप आंखों के सामने चित्रपट सा प्रस्तुत हो जाता था। आपके प्रवचनों में आध्यात्मिक शान्तिरस की ऐसी स्रोतस्विनी प्रवाहित होती थी कि श्रोतृजन एक अलौकिक शान्ति प्राप्त करके अपने आपको कृतकृत्य एवं कृतार्थ समझने लगते थे।

सं० १९४९ के इस चातुर्मास में श्रीमती केशरश्रीजी महाराज ने इक्कीस सबल दोषों की आलोचना प्रायश्चित रूप २१ उपवास की महान् तपस्या के द्वारा अपने आत्मा का कर्ममल क्षालन किया।

श्रावक-श्राविकाओं ने भी नवरंगी, पंचरंगी, अट्ठाइयां आदि तप करके अपने आत्मा को निर्मल बनाते हुये जैन शासन की शोभा और महत्व को द्विगुणित किया।

आप श्रीमतीजी की सेवा में उस समय एक नवोढ़ा सुन्दरबाई धार्मिक शिक्षा, जिनदर्शन विधि, सामायिक, प्रतिक्रमण सीखने आया करती थीं। ये पहले स्थानकवासी सम्प्रदाय के प्रति आस्था रखने वाली थीं, किन्तु आपके अव्यर्थ प्रयत्न से इनकी श्रद्धा अब जिनदर्शन पूजन आदि की ओर हो गई और गुरुवर्य्या के पास प्रायः नित्य ही आने लगीं। इनकी तीक्ष्ण बुद्धि देखकर गुरुवर्य्या को अत्यन्त आनन्द होता था और वे इन पर बड़ा वात्सल्य भाव रखती थीं। ये भविष्य में दीक्षा लेकर आपकी दक्षिण भुजा बनीं। यह वृत्त आगे आने वाला है। तत्रस्थ श्रावक-श्राविका वर्ग ने इस चातुर्मास में अपनी सेवा भक्ति का अपूर्व परिचय दिया।

चातुर्मास के बाद चरितनायिका को ज्वर चढ़ने लग गया। तेज ज्वर में भी आप बड़ी शान्ति से दर्शनार्थ या तत्व चर्चा करने वालों से वार्तालाप करने को बैठ जाती थीं, आप कहतीं—यह तो शरीर का धर्म है, एक दिन नष्ट होगा ही, दूसरे वेदनीय कर्म का उदय है, उसे भोगना ही होगा; हंस–हंस कर बांधे हैं तो हंस २ कर ही भोगना चाहिये। आत्मा का इससे क्या बनता बिगड़ता है? दुःखी होकर आर्त्त ध्यान करने से पुनर्बन्ध होता है। आत्मा तो अजर-अमर अविनाशी है। उसी पद की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिये। यही मानव जीवन का लक्ष्य है, अन्य भौतिक पदार्थों की अभिलाषा करना और प्राप्ति के उपाय में अमूल्य मानव जीवन को नष्ट कर देना हस्तगत चिन्तामणि को कव्वे उड़ाने के लिए फेंक देने वाले मूर्ख शिरोमणि के सदृश ही है।

आपको इधर ज्वर ने आ घेरा था, उधर फलोधी में गणाधीश्वर पूज्यप्रवर सुखसागरजी महाराज साहब का स्वास्थ्य दिन ब-दिन बिगड़ता जा रहा था। यह समाचार ज्ञात हुए तो आपका मन गुरुदेव के दर्शन करने को छटपटाने लगा। शरीर इतना अशक्त हो गया था कि बहिर्भूमि जाने तक की शक्ति नहीं थी। गुरुदेव आपको साध्वी कह कर सम्बोधन किया करते थे। आप प्रतिदिन ही श्रावकों को और तत्रस्थ साध्वियों को पूछते रहतेः—साध्वी के समाचार आये? उनका ज्वर मिटा? वहां से विहार हो गया? यहां कब तक पहुँच जायगी? देखो! वह साध्वी बड़ी भाग्यशालिनी है, उसका उपचार अच्छी तरह होना चाहिये; इत्यादि।

चरितनायिका का उपचार नागौर के प्रसिद्ध वैद्य महोदय कर रहे थे। २ महीने तक ज्वर ने उनका पिण्ड न छोड़ा। पौष शुक्ला में ज्वर का प्रकोप कुछ शान्त होने लगा, पर अभी अशक्ति काफी थी, फिर भी गुरुदेव के दर्शन कर लूं, इस भावना से फलोधी की ओर विहार कर दिया।

पर आप बीच में ही थीं कि वज्रपात के जैसे इस समाचार को सुनकर कि "पूज्य गणाधीश्वर सुखसागरजी महाराज साहब का स्वर्गवास माघ कृष्ण ४ को ही हो गया" तो आप को बड़ा दुख हुआ और दर्शन न पा सकने का बड़ा भारी पश्चाताप हुआ। किसी प्रकार आप फलोधी पहुंचीं। समुदाय में गिनती के ही साधु थे।

साध्वी समुदाय मे तो वृद्धि होती जा रही थी। परन्तु साधु समुदाय में नहीं। यह कमी आपको अत्यधिक खटकती थी। आप श्रीमतीजी की सत्प्रेरणा और सतत प्रयत्न से एक दम्पति ने भागवती दीक्षा धारण की, जिनका परिचय आगे के परिच्छेद में दिया जा रहा है। तथा कई अन्य महानुभावों ने भी आपके अन्यर्थ उपदेश से संयमी जीवन स्वीकार किया है, जिनका वृत्त भी आगे आवेगा।



महातपस्वीजी की दीक्षा

रत्नप्रसू राजस्थान की उर्वरधरा में अद्भुत २ तेजस्वी विभूतियों का जन्म हुआ है। इन्हीं में से एक सन्तरत्न थे प्रखर तपस्वी श्रीमान् छगनसागर जी मा० सा०। आपका जन्म फलोधी में ही हुआ था। सेठ सागरमलजी गुलेछा सरल प्रकृति एवं बड़े धर्मात्मा थे। उनकी धर्मपत्नी चन्दनबाई भी सुशीला और धर्मपरायण थीं, इन्हीं की रत्नकूक्षि में सूर्य स्वप्न सूचित एक पुण्यवान् आत्मा अवतीर्ण हुआ। विक्रम सं० १८६६ की चैत्र शुक्ला त्रयोदशी (महावीर जन्म जयन्ती) के मंगलमय दिवस में शुभलग्न में एक पुत्ररत्न का जन्म हुआ, छोगमलजी नाम दिया गया। शिक्षा योग्य अवस्था होने पर व्यवहार व्यापारादि की शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा भी दी जाने लगी। समय पर तत्रस्थ श्रावकरत्न अक्षयचन्दजी झावक की सुशीला कन्या चुन्नीबाई के साथ विवाह बन्धन में बांध दिए गये।

व्यापारादि के लिए विदेश गमन किया और अच्छी प्रतिष्ठा यश व सम्पत्ति प्राप्त की। आप सागर, हैदराबाद, बारसी आदि कई स्थानों में रहे थे।

सेठ छोगमलजी २ पुत्र और एक पुत्री के पिता बन चुके थे। श्रीमत्सुखसागर जी म० सा० तथा हमारी चरितनायिका के वैराग्य रसमय तात्विक व्याख्यानों और श्री छोगमलजी झावक



स्व० गणाधीश्वर महातपस्वी छगनसागरजी म० सा०

(जो कि शास्त्रों के एवं प्रकरणादि के ज्ञाता धर्मप्रेमी महानुभाव थे) की सत्संगति ने आप में धर्म के प्रति अनन्य श्रद्धा, देवगुरु की उपासना, श्रावक के योग्य दैनिक कृत्यों तथा मर्यादित जीवन व्यतीत करने की पुण्य प्रेरणा दी, जिससे आपका जीवन आदर्श बन गया था।

आपके तृतीय पुत्र श्री चांदमलजी के असामयिक देहावसान से आपका मन संसार से उद्विग्न हो गया और आप उदासीन रहने लगे।

उधर गणाधीश्वर सुखसागरजी म० सा० के स्वर्गवास से हमारी चरितनायिका किसी त्यागी वैरागी की खोज में थीं ही। उनका ध्यान श्री छोगमल जी की ओर आकर्षित हुआ। श्री छोगमलजी प्रायः व्याख्यान में तथा कभी-कभी तत्वचर्चा करने अपने तत्वजिज्ञासु साथियों—श्री छोगमलजी बरड़िया, मूलचन्दजी नीमाणी, रेखचन्दजी कोचर, जीवराजजी लूणावत आदि सज्जनों के साथ आया करते थे। ये सभी उच्चकोटि के जिज्ञासु और मुमुक्षु महानुभाव थे।

एक दिन अवसर देख कर हमारी चरितनायिका ने पूछ ही लिया—क्यों छोगमलजी! क्या कारण है कि आप जैसे तत्वज्ञ महाशय इस असार संसार में फंसे हुए हैं।

श्री छोगमलजी—भगवति! मेरी भावना तो इस कारागार से मुक्त होने की है किन्तु अवस्था अधिक हो गई है।

श्रीमती चरितनायिका—अवस्था का विचार क्या करना है। शास्त्रकार तो फरमाते हैं:—

"पच्छावि जे पयाया खिप्पं गच्छन्ति अमर भवणाइं।
जेसिं पिओ तवो संजमो अ खंति अ बम्भचेरं च॥

अर्थ:—पिछली अवस्था में जो व्यक्ति संयम धारण करते हैं, एवं जिन्हें तप-संयम, क्षमा और ब्रह्मचर्य प्रिय हैं; वे तपस्वी साधु शीघ्र ही स्वर्ग में चले जाते हैं।

श्री छोगमलजी—आपका फरमाना सत्य है परन्तु आपकी श्राविका को समझाइये कि वे मुझे विघ्न न करें। यदि हो सके तो वे भी आपके चरणों का आश्रय लेकर अपने जीवन को कृतार्थ करें, मैं तो प्रस्तुत हूं ही।

गुरुवर्या—बहुत ठीक, अवश्य प्रयत्न करूंगी, आप दृढ़ रहें।

श्री छोगमलजी की धर्मपत्नी सौ० चुन्नीबाई व्याख्यान, चौपाई श्रवण करने एवं प्रतिक्रमणार्थ आया करती थीं। नवयुवा विवाहित पुत्र के असामयिक निधन से वे भी खिन्नमनस्क सी रहती थीं।

गुरुवर्या के त्याग, वैराग्यमय एवं संसार की असारता का दिग्दर्शन कराने वाले उपदेशों ने उनके हृदय में वैराग्य का बीज तो वपन कर दिया था पर वे अशिक्षिता होने के कारण संयम धारण करने के लिए अपने को अयोग्य समझती थीं। उस युग

में राजस्थान की स्त्रियां प्रायः शिक्षा से वंचित ही रहती थीं। पुरुषों की शिक्षा भी मुड़िया लिपि एवं मौखिक गणित तक ही सीमित थी तो स्त्रियों की शिक्षा की तो बात ही क्या? चुन्नीबाई को प्रतिक्रमण भी नहीं आता था, वे केवल सरल प्रकृति की भद्र पतिव्रता महिलारत्न थीं। पति के विचारों से अनभिज्ञ भी नहीं थीं फिर भी अपनी अयोग्यता का विचार उन्हें इस पुनीत प्रव्रज्या का अवलम्बन लेने से रोक रहा था।

चरितनायिका ने एक दिन प्रसंगवश उनके सामने श्री छोगमलजी की भावना को व्यक्त किया तो वे नम्रतापूर्वक बोलीं—यदि साथ में मुझे भी चरणों का आश्रय मिले तो यह कार्य हो सकता है। किन्तु मुझे तो प्रतिक्रमण भी नहीं आता है और अब सीख सकूं ऐसी बुद्धि भी नहीं है।

गुरुवर्य्या—प्रतिक्रमण नहीं आता है तो कोई बात नहीं, जब तक तुम्हें कण्ठस्थ न होगा, मैं स्वयं कराऊंगी। यदि तुम दीक्षा लेने को तैयार हो जाओ तो श्रावकों की भावना सफल हो जाय, नहीं तो इस अन्तराय की भागिनी तुम्हें बनना पड़ेगा।

सेठानी चुन्नीबाई—आप मुझे प्रतिक्रमण करा देंगी? तथा सिखा भी देंगी, तब मैं दीक्षा लेने को तैयार हूं।

गुरुवर्य्या—तब देर करना उचित नहीं, पति-पत्नी की दीक्षा साथ ही होनी चाहिये।

दूसरे दिन श्री छोगमलजी दर्शनार्थ आये तब गुरुवर्य्या ने गत दिवस का वार्त्तालाप उन्हे सुनाया। श्री छोगमलजी को तो

यह पहले ही ज्ञात हो चुका था, क्योंकि रात्रि में धर्मपत्नी ने सब कुछ कह दिया था, और दोनों ने दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया था।

श्री छोगमलजी ने कहा--मैं सब सुन चुका हूं। आपके असीम अनुग्रह से मेरी आत्म-कल्याण साधन की भावना फली-भूत होगी। अब अच्छे मुहूर्त्त में शीघ्र ही दीक्षा-कार्य सम्पन्न होगा।

तदनुसार इस प्रौढ़ दम्पत्ति की भागवती दीक्षा वि० सं० १९४३ के वैशाख शुक्ला १० गुरुवार को स्थिर लग्न में रानीसर तालाब की पाल पर बनी हुई दादावाड़ी में बड़े समारोहपूर्वक तत्कालीन गणाधीश श्रीमद् भगवान्सागरजी महाराज साहब के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुई। श्री छोगमलजी पूज्य स्थानसागरजी महाराज साहब के शिष्य घोषित किये गये और 'श्री छगनसागर जी' नाम दिया गया तथा सौभाग्यवती चुन्नीबाई श्रीमती शृंगारश्रीजी की शिष्या बनाई गई एवं 'चांदश्रीजी' नाम रखा गया।

दूसरे ही दिन फलोधी निवासी श्री चांदमलजी गुलेछा के स्व० पुत्र श्री कुन्दनमलजी की धर्मपत्नी श्रीमती बाधूबाई की पुनीत प्रव्रज्या हुई। उन्हें श्रीमती मग्नश्रीजी महाराज की शिष्या बनाया गया और गुणानुरूप 'विवेकश्रीजी' नाम स्थापन किया गया।

इन दीक्षाओं के पश्चात् आप अपनी शिष्याओं एवं गुरु-भगिनियों के साथ खीचन्द को अपनी चरणरज से पवित्र करती हुई लोहावट पधारीं।

श्रीमती केशरश्रीजी ने वहां १६ उपवास की महान् तपश्चर्या की। चरितनायिका का विचार लोहावट में ही चातुर्मास करने का था, क्योंकि तत्रस्थ जनों की अत्यधिक आग्रहपूर्ण विनती थी; परन्तु फलोधी से कितने ही अग्रगण्य श्रावक-श्राविकाएं वहां आ उपस्थित हुए और फलोधी ही पुनः पधारने का भारी आग्रह करने लगे। अतः नवदीक्षितों की बड़ी दीक्षा कराके आप फलोधी पधारीं और वहीं वि० सं० १६४३ का चातुर्मास किया।

इस चातुर्मास में आपने श्री रायपसेणीय सूत्र और भावनाधिकार मे श्री सम्यक्त्व कौमुदी व्याख्यान मे वांचनी आरंभ की। आपकी व्याख्यान शैली वैराग्य रसपूर्ण होने से तथा शास्त्रीय ज्ञान की गम्भीर जानकारी होने के कारण आपके व्याख्यान में अन्य सम्प्रदाय वाले भी कई महानुभाव व्याख्यान श्रवणार्थ आया करते थे। मध्यान्ह में तत्वचर्चा के लिए भी श्रावकों का एवं अन्य दर्शनार्थियों का जमघट लगा रहता था।

श्रीमती शृंगारश्रीजी महाराज ने इस चातुर्मास में १६ उपवास किये और श्रावक-श्राविकाओं में भी अट्ठाइयां पंचरंगी आदि तपस्याएं हुईं। दो श्रावकों ने आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत धारण किया। इस प्रकार धर्मध्वजा फहराते हुए, जैन शासन की उन्नति

के साथ २ स्वपर कल्याण करती हुईं चातुर्मास पश्चात् साध्वीजी के साथ विहार किया। फलोधी से ५०० श्रावक-श्राविकाएं खीचन्द तक आप श्रीमती जी को पहुंचाने आये थे। आप पूज्य मुनिराज श्री छगनसागरजी महाराज साहब के दर्शनार्थ नागौर पधारीं। वहां पर १७ दिन विराजीं।

श्री सिद्धाचलादि तीर्थों की यात्रा

नागौर में आपने पहले भी चातुर्मास किये थे। तत्रस्थ जैन समाज के व्यक्ति आपके प्रति अनन्य श्रद्धा रखते थे, आप में कुछ ऐसा अपूर्व व्यक्तित्व था कि एक बार दर्शन करने वाला भी आप से प्रभावित हुए बिना न रहता था। यहाँ थोड़े दिन के निवास में ही आपने ऐसी प्रेरणा की कि १२ श्रावकों ने आपसे जब तक श्री शत्रुञ्जय की यात्रा न हो घृत खाने का त्याग कर दिया। गुरुदेव श्री भगवान्सागरजी छगनसागरजी महाराज साहब की भावना भी श्री सिद्धाचलजी महातीर्थ की यात्रार्थ पधारने की थी। चरितनायिका ने भी उक्त तीर्थाधिराज को भेटने का विचार दृढ़ कर लिया।

नागौर के कितने ही अग्रेसर लोगों को चरितनायिका ने प्रेरणा की कि श्री फलोधी पार्श्वनाथ की यात्रार्थ संघ भी श्री गुरु महाराज के साथ चलना चाहिये। तत्क्षण ही कई लोग तैयार हो गए और संघ श्री सिद्धाचलादि तीर्थों की यात्रा करने रवाना हो गया। क्रमशः चलते हुए फलोधी (मेरता रोड) तीर्थ पहुंचा।

चतुर्विध संघ सहित श्री फलौधी पार्श्वनाथ भगवान की यात्रा करके आपने अपने जीवन को सार्थक किया। नागौर से ५० व्यक्ति साथ थे. बाद में और भी आ मिले थे।

वहाँ से आप मेरता पधारीं। कुछ दिन वहाँ ठहर करके श्री सोमप्रभाचार्य विरचित सूक्तमुक्तावलि नामक काव्यग्रन्थ पर व्याख्यान फरमाया जिस से वहाँ की जनता अत्यन्त प्रमुदित हुई, और चातुर्मास के लिए बहुत ही आग्रह किया, परन्तु आपका विचार श्री शत्रुञ्जय महातीर्थ की यात्रा करने का होने से आप वहाँ न विराज सकीं और विहार करती हुई पाली पधारीं। वहाँ भी भक्त जनों के आग्रह से आपको पंद्रह दिन विराजना ही पड़ा। पश्चात् सिरोही होते हुये राजस्थान के प्रहरी श्री अर्बुदाचल तीर्थ पर पहुँचीं।

श्री अर्बुदाचल (आबू) हिमालय का आत्मज कहलाता है। अपनी उच्च शिखावलियों, गुफाओं और झरनों के कारण इस की दृश्यावलियाँ बड़ी मनोहर हैं। यह 'राजस्थान का शिमला' नाम से प्रसिद्ध है।

विक्रम की दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दियों में विमलशाह मन्त्री और वस्तुपाल तेजपाल ने करोड़ों रुपये खर्च कर इस गिरिराज पर अत्यन्त कलापूर्ण देवमन्दिरों का निर्माण कराया था. वे आज भी कला प्रेमियों के आकर्षण केन्द्र बने हुये हैं। अंग्रेजी राज्य में यहां राजपूताने के एजेंट गवर्नर जनरल का निवास था। और अंग्रेजों ने जूते पहने ही मन्दिरों में जाना

आरम्भ कर दिया था, और गिरिराज पर शिकार भी खेलने लग गये थे, जिन्हें श्रीमान् ऋद्धिसागरजी महाराज साहब ने अपने तपोबल और सत्प्रयत्न से बन्द करवाया तथा एजेंट गवर्नर जनरल से ११ नियम बनवाये। तब से इन दिव्य देव मन्दिरों की आशातना दूर हुई।

चरितनायिका देवलवाड़े के दर्शन करती हुई अचलगढ़ पहुंची, भगवान श्री आदिदेव के दर्शन करके इस प्रकार स्तुति की:-

श्री मदादिदेव स्तुतिः

वृन्दारक वृन्दारक-वृन्दारकदारकल्पितै रपि यः।
नाङ्केङ्क्तै ररङ्गीदभिषङ्क तं गृणाम्यृषभम् ॥१॥
कोपज्वलन जलत्वं मां नयता त्तात! जातु न जडत्वम्।
सार्थोऽपि महर्षभः रै त्यागी संयुग्धि हर्षभरैः ॥२॥
कान्तं सुगुण निशान्तं पान्तं तनुधारिणोऽध्यवनि शान्तम्।
विहित कुबुद्धि निशान्तं तमिनं वन्दे सदनिशाऽन्तम् ॥३॥
क्षेमंकरं नितान्तं प्रियङ्करं सन्धराम्यधिस्वान्तम्।
भद्रंकरं नृणां तं तीर्थङ्कर माद्यमतिशान्तम् ॥४॥
सन्तारय संसारात् संसारय मोहमाशु महसाऽरात्।
सम्मारय हृदि दयनं सञ्चारय सूदयनम् ॥५॥
त्वयि सति विजात मात्रे, पुराऽभवन्धर्मबोधिनोऽमतयः।
जातेहि जातवेदसि शीतं किं नाम वर्तेत ॥६॥

भावार्थः—देवताओं में मुख्य देवों के समूह के पास जाने वाली अप्सराओं द्वारा की गई अङ्गचेष्टाओं से जो भगवान् पराभव को प्राप्त नहीं हुए, उन ऋषभ प्रभु की मैं स्तुति करती हूं ॥१॥

हे पूज्य ! क्रोधरूप अग्नि को शान्त करने में जलरूप, अर्थ सहित किन्तु धन को त्याग करने वाले प्रभो ! मुझे जड़त्व प्राप्त न कराइये और हर्षो से संयुक्त कीजिये, अर्थात् हर्षित करिये ॥२॥

मनोहर एवं अच्छे गुणों के धामरूप तथा पृथ्वी में प्राणिसमूह के रक्षक, शान्त और कुबुद्धिरूप रात्रि का नाश करने वाले, सूर्य स्वरूप सत्य व नित्य निश्चय वाले ऋषभदेव महाप्रभु को मैं नमस्कार करती हूं । ॥३॥

निरन्तर आपत्ति आदि से रक्षा करने वाले, सब का प्रिय करने वाले, आदि तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव स्वामी को मै चित्त में धारण करती हूं ॥४॥

हे देव ! मुझे संसारसागर से तिराओ, शीघ्र ही अपने तेज से मोह भय को दूर करो, हृदय में दया धारण करो और अभ्युदय को विस्तृत करो ॥५॥

हे प्रभो ! आपके जन्म लेने पर युगलिकजनों ने धर्म को जान लिया, क्योंकि अग्नि के उत्पन्न होने पर क्या शीत रह सकता है ? अर्थात् नहीं रह सकता । ॥६॥

इस प्रकार गुरुवर्या के मुख कमल से निःसृत स्तुति मकरन्द को तत्र उपस्थित भक्त भ्रमर पान करके अत्यन्त प्रमुदित हुए।

चरितनायिका ने स्वशिष्यावर्ग के साथ वहाँ कुछ दिन निवास किया। इस रमणीय स्थान से जाने की इच्छा ही नहीं होती थी। आप वार बार प्रभु दर्शनार्थ मन्दिर में पधार जातीं और घण्टों ध्यान में तल्लीन हो जाती थीं। आगे बढ़ना था, अतः वहाँ से विहार कर दिया।

मार्ग में श्री जीरावला पार्श्वनाथ भगवान् की यात्रा करते हुए भण्डार गांव पोथीवाड़ा आदि में एक-एक रात्रि का विश्राम किया। भरतगांव की ओर हमारा यह साध्वीसंघ चला जा रहा था। साथ में कोई गृहस्थ पुरुष या स्त्री नहीं थे। एक अद्भुत घटना घटी, जो इस प्रकार है:—

भरतगांव अभी काफी दूर था। चरितनायिका के तीन अन्य साध्वियां—श्रीमती शृंगारश्रीजी, केशरश्रीजी और विवेकश्रीजी साथ थीं, अन्य कोई पुरुष या स्त्री साथ न थे। श्रीमती शृंगारश्री जी महाराज अत्यन्त रूपशालिनी थीं। गौर वर्ण, लम्बा और छरहरा शरीर, सुडौल हाथ-पांव, तीखी और बड़ी २ आंखे, दीर्घ शुक नासिका, पतले और गुलाबी अधरोष्ठ। साक्षात् स्वर्गावतीर्ण अप्सरा सी लगती थीं। ये चरितनायिका के कुछ आगे २ चली जा रही थीं, युगमात्र भूमि पर आपकी दृष्टि लगी हुई थी। सामने से एक उद्भट वेषधारी अश्वारोही युवा चला आ रहा था।

इस रूपज्योति को देखकर वह चकित रह गया। घोड़े से उतर पड़ा और इनके साथ चलते हुए अपनी कुत्सित भावना व्यक्त करता हुआ कहने लगा—तुम इस जवानी मे मीरावाई क्यों बन गई ? यह रूप तो किसी नरेश के अन्तःपुर की शोभा में वृद्धि करने योग्य है। मेरे साथ चलो ! मैं तुम्हें सर आंखों पर रखूंगा, कई दास-दासी तुम्हारी सेवा मे उपस्थित रहेंगे, इत्यादि कहता हुआ वह साथ-साथ चलने लगा। श्रीमती शृंगारश्रीजी महाराज उसकी उक्त बातों से घबरा उठीं और पीछे आने वाली चरितनायिका आदि को आर्त्तनाद करते हुए आवाज लगाई। इसी बीच में उस दुष्ट अश्वारोही ने शृंगारश्री जी महाराज को घोड़े पर बैठा लेने का प्रयत्न किया। चरितनायिका आदि साध्वी मण्डल यह संकट देख कर जोर जोर से—'खबरदार ! अभी तो कामान्ध है, हाथ लगाया तो अच्छा न होगा, सती साध्वियों पर हाथ डालने की हिम्मत न कर, इस प्रकार कहता हुआ शीघ्रता से पांव उठा कर वहां आ पहुँचा। चरितनायिका ने उस समय साक्षात् भवानी दुर्गा का रूप धारण कर लिया और शृंगारश्रीजी महाराज को सबके बीच में करके श्री दादा गुरुदेव जिन कुशल सूरिजी की दुहाई देने लगीं। फिर भी वह दुष्ट वहां से नहीं हटा और कई प्रकार की कुचेष्टाएं करते हुए अपनी नीचता का प्रदर्शन करने लगा। चरितनायिका की आकृति उस समय भयंकर हो उठी। वे उस नीच को तर्जनी अंगुली से धमकाते हुए बोलीं—अरे नीच ! दुष्ट ! निर्लज्ज ! तू अपनी दुष्टता छोड़ दे, अन्यथा

इसका परिणाम अत्यन्त भयंकर होगा। चरितनायिका का इतना कहना था कि वह व्यक्ति अन्धा हो गया। इन सतियों का अद्-भुत प्रभाव देखकर वह घबरा गया। अपनी दुर्भावना का प्रत्यक्ष फल मिल जाने से उसकी दुर्मति जाती रही। इन महासतियों के सामने सिर झुका, कर-बद्ध हो क्षमा याचना करने लगा और दुश्चेष्टाओं के लिए हार्दिक पश्चाताप करते हुए भविष्य में सती साध्वियों पर कुदृष्टि न डालने की प्रतिज्ञा कर ली। उसके क्षमा मांगने और पश्चाताप कर लेने पर चरितनायिका भी प्रसन्न हो गईं। उसे पुनः पूर्ववत् दिखाई देने लग गया। उसे जैन धर्म का स्वरूप समझाया, साधु-साध्वियों की चर्या भी बतलाई। अब तो वह व्यक्ति बड़ा ही प्रभावित हुआ और अगले गांव तक साथ-साथ पैदल चल कर मार्ग दर्शन कराने लगा। गांव तक पहुंचा कर नमस्कार करके अपने घोड़े पर सवार हो चला गया।

पाठकगण! देखा आपने! सतीत्व और चमत्कार! कैसा अद्भुत है! इस सतीत्व और त्याग तपस्या के बल पर ही आज भी जैन समाज की अल्पवयस्का साध्वियाँ दुर्गमघाटियों, बीहड़-वनों तथा कोलाहल पूर्ण आधुनिक नगरों में निर्भय विचरती हुईं जन-जन को पवित्र धर्म की प्रेरणा प्रदान करती हैं।

हमारा यह साध्वीमण्डल भी अविच्छिन्न प्रयाण करता हुआ क्रमशः महापुनीत तीर्थाधिराज श्री सिद्धिगिरि की उपत्यका में बसे हुए पालीताना शहर में पहुंचा।

पवित्र तीर्थराज सिद्धाचलजी के दर्शन करके आपका रोम-रोम उल्लसित हो गया। जिसके अणु-अणु मे अनन्त साधक और सिद्ध महापुरुषों के उदात्त विचार, विशद वाणी तथा पवित्र शारीरिक परमाणु भरे पड़े हों, उस पुनीत वायु मण्डल का प्रभाव अवश्य ही अनिर्वचनीय आत्मोत्कर्षकारक होता है, इस में सन्देह नहीं। पावन विचार वाले योगीश्वरों का सानिध्य भी तो मानव के ही नहीं, पशुओं के जीवन में भी अद्‌भुत परिवर्तन कर देने वाला है, ऐसा आज के वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं। जैन शास्त्र तथा वेदादि श्रुतियां तो आदि काल से यह उद्‌घोष करती ही आ रही हैं।

हमारी चरितनायिकाजी ने गिरिराज की पवित्र भूमि पर पॉव रखते ही अपने जीवन को कृतार्थ माना, ऊपर चढ़ कर देव-विमान सदृश मन्दिरों में विराजमान भगवद् बिम्बों के दर्शन कर के प्रभु की स्तुति की।

उधर से गणाधीश महोदय भी अपने शिष्य परिवार सहित यात्रार्थ पधारे हुए थे। वे आस-पास के तीर्थों की यात्रा करते हुए पुन. मारवाड़ की ओर पधार गये। गुरुवर्य्या महोदया ने वि. सं. १६४४ का चातुर्मास यहीं किया। इससे पहले ही आपके उपदेशों से वैराग्य भाव जागृत हो जाने से नागौर निवासी श्री सुजानमलजी रेखावत ने गणाधीशजी के पास दीक्षा लेने की प्रतिज्ञा ले रखी थी। उनकी दीक्षा वैशाख शुक्ला ८ को शुभ मुहूर्त में सिरोही में हो चुकी थी।

यहां पर आपने अट्ठाई तप, श्रीमती शृंगारश्रीजी महाराज ने दस उपवास, श्रीमती केशरश्रीजी महाराज ने मासक्षमण तप करके अपने जीवन को और भी पवित्र बनाया। यहां भी आपका धर्मोपदेश होने लगा जिसे सुनकर वहां की जनता आश्चर्यान्वित हो जाती थी, क्योंकि वहां के निवासियों ने अभी तक किसी साध्वीजी को इस प्रकार पुरुषों की सभा में व्याख्यान देते नहीं देखा था।

कार्तिक पूर्णिमा की यात्रा आनन्दपूर्वक करके कुछ दिन ठहर कर और भी यात्रा की। मौनैकादशी के पश्चात् आपने सौराष्ट्र के मुकुटमणि श्री गिरनार तीर्थ की यात्रार्थ विहार कर दिया।

मार्गस्थ और मार्ग के समीपस्थ तीर्थ—महुवा, दाठा, ऊना, अजारा, दीव प्रभास पाटन, वेरावल आदि की यात्रा करते हुए पौषकृष्ण १० के शुभ दिन श्री गिरनार तीर्थ के तिलक आबाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथ भगवान् के दर्शन करके अत्यन्त आनंदित हुईं। कई दिन वहां ठहर कर विहार करते हुए अहमदाबाद पहुँचे। पूज्यवर्या श्रीमती लक्ष्मीश्रीजी महाराज साहिबा वहीं विराजती थीं, उनकी सेवामें उपस्थित हुए। वे भी आप ही की प्रतीक्षा में वहाँ ठहरी हुई थीं।

प्रसिद्ध जैनाचार्य न्यायाम्भोनिधि श्रीमद् विजयानन्द सूरि (आत्मारामजी) महाराज भी उन दिनों अहमदाबाद में विराजमान थे। हमारा यह पूज्य साध्वीवर्ग भी उनके दर्शन किये विना कैसे रह सकता था! अतः दर्शनार्थ गया। श्रीमान् विजयानन्द

सूरि ने फरमाया—ये पुण्यश्रीजी तो हमारी वामभुजा सदृश हैं। इनका क्या कहना! "साधुओं से भी इनका व्याख्यान विशिष्ट है" ऐसा हम कई बार सुन चुके हैं। आज आप लोगों से मिल कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। सचमुच ही आप शासन की खूब सेवा कर रही हैं।"

आपके साथ शास्त्रीय विषयों पर भी खूब चर्चा हुई। श्रीमती चरितनायिका की तीव्र तर्कबुद्धि देख कर वे अत्यन्त आनन्दित हुए थे।

यह साध्वीमण्डल—श्रीमती लक्ष्मीश्रीजी म०, सिंहश्रीजी म०, पुण्यश्रीजी म० आदि अहमदाबाद से विहार करके वीसनगर, वडनगर आदि में धर्मामृत को वर्षा करते हुए पालनपुर पहुंचा। वहाँ के श्रावकवर्ग ने इस मण्डल को पालनपुर में चातुर्मास करने का अत्यधिक आग्रह किया। श्रीमती लक्ष्मीश्रीजी महाराज साहब ने अपनी असमर्थता बतलाते हुए चरितनायिकादि पांच साध्वियों को वहाँ रख कर मारवाड़ की ओर प्रयाण कर दिया।

चरितनायिका के व्याख्यानों की पालनपुर में भी धूम सी मच गई, भारी संख्या में श्रोताजन आने लगे। आपके प्रभावशाली उपदेश से वहाँ की जनता मे धर्मभावना की अत्यन्त वृद्धि हुई और जिनेन्द्रपूजा, तपस्या, प्रभावना आदि द्वारा अच्छा शासनोद्योत हुआ।

एक श्राविका—गुलाबीबाई की उत्कृष्ट त्याग भावना देखकर मार्गशीर्ष कृष्ण पञ्चमी को भागवती दीक्षा प्रदान की। इस प्रकार

१९४५ विक्रमीय का चातुर्मास पूर्ण करके आपने वहाँ से विहार कर दिया। ग्राम-ग्राम नगर-नगर धर्मोपदेश देती हुई आप अन्य पांच साध्वियों सहित फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को नागौर पहुंच गईं।

वहाँ श्रीमान् छगनसागर जी महाराज साहब विराजमान थे। उनके दर्शन करके अत्यन्त हर्षित हुईं।

एक बार चरितनायिका आदि साध्वीवर्ग पूज्य तपस्वीवर श्रीमान् छगनसागरजी महाराज साहब को वन्दना करने उपस्थित हुआ। उस समय तपस्वीवर्य स्वपठित सारस्वत व्याकरण की पुनरावृत्ति कर रहे थे।

साध्वी श्रेष्ठा श्रीमती पुण्यश्रीजी महाराज साहिबा ने प्रार्थना की-'गुरुदेव ! क्या साध्वियाँ व्याकरण नहीं पढ़ सकतीं ? हमें भी पढ़ाइये'।

तपस्वीवर-'क्यों नहीं। अवश्य पढ़ सकती हैं। मेरा स्वयं का विचार तुम्हें इस सम्बन्ध में कहने का था, आज तुमने ही कह दिया। अच्छा ! आज से हम तुम्हें व्याकरण पढ़ायेंगे।'

ऐसा कह कर आप उसी दिन से मध्यान्ह में दो घण्टे सारस्वत के सूत्र (शब्द साधना सहित) श्रीमती पुण्यश्रीजी महाराज साहब को पढ़ाने लगे। तीक्ष्णबुद्धिधारिणी चरितनायिका ने केवल तीन महीने में ही व्याकरण पढ़ लिया और संस्कृत के चरित्र तथा सूत्रों की टीकाएं अनायास ही समझ में आने लग गये। इस से पूर्व आप हिन्दी गुजराती अर्थ के ही

शास्त्रादि पढ़कर व्याख्यान दिया करती थीं। इसके पश्चात् आपका व्याख्यान टीकाओंयुक्त शास्त्रादि पर होने लगा था।

फलोधी के श्रावकगण पूज्य तपस्वीजी आदि को चातुर्मास की विनती करने आ गए। उनके अत्यन्त आग्रहवश तपस्वीवर तो साधुवर्ग के साथ फलोधी विहार कर गये। चरितनायिका की अभिलाषा भी फलोधी पधारने की थी पर नागौर वालों ने वहीं चातुर्मास करने की हार्दिक प्रार्थना की। अतः आपने तीन साध्वियों को पठनार्थ फलोधी भेज दिया। और आप दो साध्वियों श्रीमती श्रृंगारश्रीजी सिरदारश्रीजी के साथ नागौर ही विराजीं।



भावी प्रवर्त्तिनी की दीक्षा

जेय कंते पिए भोए लद्धे वि पिट्ठी कुव्वइ।
साहीणे चयइ भोए से हु चाइ त्ति वुच्चइ ॥

(दशवैकालिक)

भावार्थः—जो व्यक्ति अपने को प्राप्त इष्ट प्रिय भोगों की ओर पीठ कर देता है और स्वाधीन भोगों का त्याग कर देता है वही वास्तविक त्यागी कहलाता है। (वही सच्चा साधु है)

पुण्यशालिनी पुण्यश्रीजी महाराज साहिबा का चातुर्मास नागौर में है, ऐसा पिछले परिच्छेद में लिखा जा चुका है। वहां आपके व्याख्यान बड़े प्रभावशाली ढंग से होते थे। व्याख्यान में वैराग्योत्पादक कथाओं को ऐसी अद्भुत शैली से सुनाया जाता था कि श्रोताजनों के हृदयपट पर संसार की असारता, भोगों का भयंकर परिणाम, कुटुम्बीजनों की स्वार्थान्धता, शरीर की नश्वरता आदि का एक चित्र सा अङ्कित हो जाता था। जनता पर आपके प्रभावशाली व्यक्तित्व का सीधा असर पड़ता था। थोड़े ही दिनों में आपके व्याख्यानों का प्रभाव एक भाग्यशालिनी नवयुवती पर ऐसा पड़ा कि उन्हें वैराग्य का रंग लग गया।

ये नवयुवती थीं सौभाग्यवती सुन्दरबाई।

सुन्दरबाई का जन्म प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर—अहमदनगर में ओसवाल कुलभूषण श्रेष्ठिवर्य श्रीमान् योगीदासजी बोहरा

की सुशीला धर्मपत्नी श्रीमती दुर्गादेवी की रत्नकुक्षी से विक्रम संवत् १९२७ की जेष्ठ कृष्ण द्वादशी के दिन शुभ लग्न में हुआ था। श्री योगीदासजी मरुधर के पीपाड़ शहर के निवासी थे और व्यापार-व्यवसायार्थ अहमदनगर में रहते थे। सुन्दरवाई एक मास की थी, तभी पिताजी का देहान्त हो गया था। जब सुन्दर वाई की अवस्था ग्यारह वर्ष की हुई तो माताजी आपको लेकर पीपाड़ आ गईं। यहीं प्रथम वार उन्हें साधु-साध्वियों के दर्शन हुए और वैराग्यरससिक्त देशनाएं श्रवण करने का सुअवसर मिला। आपकी हृदयभूमि में वैराग्य का वीज वपन हो गया किन्तु अभी कुछ समय के लिए भोग कर्म उदय मे आने वाला था अतः आपको गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना पड़ा और त्याग की भावना मन में ही रह गई।

आपका विवाह वि० सं० १९३८ के माघ मास की शुक्ला तृतीया के दिन नागौर निवासी सेठ केशरीमलजी भंडारी के सुपुत्र श्री प्रतापचन्दजी के साथ कर दिया गया। आपके काका इन्द्रभाणजी ने ही सव कार्य किये।

आप वुद्धिशालिनी, तेजस्विनी और साथ ही विनयवती भी थीं। सारा कुटुम्ब आपकी विवेकशीलता और विनय से प्रभावित था।

गुरुवर्या पुण्यश्रीजी म० सा० के वैराग्यमय व्याख्यान श्रवण करने से आपकी प्रसुप्त वैराग्य भावना जागृत हो गई। बीज तो

वपन हो ही चुका था, वैराग्य वारि के सिञ्चन से प्रस्फुटित पल्लवित हो गया।

एक दिन एकान्त में आपने अपनी मनोभावना गुरुवर्या के सम्मुख निवेदन की। गुरुवर्या महोदया ने कहा—संयम का पथ बड़ा कठिन है। इस पर चलना तलवार की धार पर चलने से भी दुष्कर है। दूसरे तुम्हें आज्ञा मिलनी भी कठिन है; क्योंकि कुमारियों और विधवाओं को भी उनके सम्बन्धी बड़ी कठिनता से आज्ञा देते हैं। फिर तुम तो सौभाग्यवती हो ! तुम आज्ञा ले आओ, तब दीक्षा हो सकेगी। सुन्दरबाई ने कहा—अच्छी बात है, अब आज्ञा लेकर ही आपके दर्शन करूंगी। इतना कह कर वे घर चली गईं।

अब उन्होंने सब से पहले अपने पतिदेव जो विदेश में व्यापारार्थ गये थे, उन्हें पत्र देकर श्रावण में ही बुला लिया और अपना दृढ़ विचार उनके सम्मुख रखा। वे अपनी प्रिय पत्नी की संयमधारण की इच्छा जानकर एक बार तो अवाक् हो गये। फिर कई प्रकार से समझाया बुझाया, प्रतिबन्ध भी लगाये; साम, दाम, दंड, भेद सभी प्रकार के प्रयत्न किये गये; पर व्यर्थ सिद्ध हुए। अन्ततोगत्वा एक शर्त पर आज्ञा देने की बात निश्चित हुई। वह शर्त यह कि पति का दूसरा सम्बन्ध सुन्दरबाई स्वयं ही किसी के साथ स्थिर कर दे अर्थात् वाग्दान-सगाई करा दे तो दीक्षा की आज्ञा दे देंगे।

ऐसा ही हुआ भी। सुन्दरबाई ने स्वयं ही एक सुयोग्य कन्या खोज ली और अपने पतिदेव श्री प्रतापमलजी का सम्बन्ध पक्का करके वाग्दान विधि सम्पन्न करा दी। आभूषणादि अपने हाथों से ही भावी सपत्नी को पहना दिये। अपने वचन पर दृढ़ रह कर श्री प्रतापमलजी ने अब उन्हें दीक्षित हो जाने की आज्ञा सहर्ष प्रदान कर दी।

आज्ञा प्राप्त करके वे गुरुवर्य्या के चरणों में उपस्थित हो गईं। उनका यह अद्भुत साहस देखकर सभी साध्वीवर्ग चकित रह गया।

गुरुवर्य्या महोदया ने पूछा—सुन्दरबाई! क्या तुम सचमुच ही आज्ञा ले आई हो? मैंने तो समझा था, तुम केवल उपहास कर रही हो।

सुन्दरबाई ने नम्रतापूर्वक कहा—भगवति! भला आपसे उपहास कैसा? मेरी भावना तो बचपन से ही थी, परन्तु भोगावलि कर्मवश मुझे विवाह बन्धन में बंधना पड़ा। अब आप कृपा कर शुभ मुहूर्त में दीक्षा प्रदान करके मुझे अपने चरणों का आश्रय प्रदान करें।

चरितनायिका यह जान कर अत्यन्त प्रसन्न हुईं।

अब सुन्दरबाई गुरुवर्या के यहां अधिक समय ठहरने लगीं। और साधु जीवन के योग्य आवश्यक क्रियायें याद करने और तत्त्वचर्चा करने में ही उनका अधिकतर समय व्यतीत होने

लगा। उनकी प्रखर बुद्धि, विनयशीलता और तेजस्विता आदि सद्गुणों ने चरितनायिका को अत्यधिक आकृष्ट कर लिया।

गणाधीश्वर श्रीमद् भगवानसागरजी महाराज साहब आदि भी चातुर्मास बाद फलोधी से नागौर पधार गये। उन्हें भी यह शुभ संवाद निवेदन किया।

विरागिनी सुन्दरबाई का यह अद्भुत साहस सुन कर वे भी दंग रह गये।

विक्रम संवत् १९४६ के मार्गशीर्ष मास की शुक्ल ५ के दिन शुभ मुहूर्त में अखण्ड सौभाग्यवती विरागिनी सुन्दरबाई की दीक्षा बड़े समारोहपूर्वक हो गई। आप श्रीमती केशरश्रीजी महाराज साहिबा की शिष्या बनाई गईं और आपका शुभ नाम श्रीमती 'सुवर्णश्रीजी' रक्खा गया। नामानुरूप ही आपका शरीर का वर्ण और सुवर्ण (अच्छा अक्षर ज्ञान) भी था।

वहाँ से विहार करके हमारा यह साध्वी मण्डल चूंटेसर ग्राम पहुँचा। पूज्यवर्य्या श्रीमती लक्ष्मीश्रीजी महाराज साहिबा वहां विराजमान थीं। उनके दर्शन करके आनन्दित हुआ। नवदीक्षिता सुवर्णश्रीजी महाराज साहिबा की विनयशीलता और तीव्र बुद्धि देखकर उन्होंने बड़ा हर्ष प्रकट किया। कुछ दिन उन की सेवा में रह कर वहाँ से कुचेरा पधार गईं और शेष काल में २ मास करीब वहाँ रह कर जनता को धर्मोपदेश द्वारा पुनः जागृति प्रदान की। पाठक पढ़ चुके हैं कि कुचेरा में वे इससे

[redacted]

पूर्व अपनी शिष्या मण्डली सहित पधारी थीं और जिनमन्दिर की आशातना दूर करवा कर धर्म का वीज वपन कर गई थीं। उसे सींचना अत्यन्त अवश्यक था। कुचेरा वालों ने अपने यहाँ चातुर्मास कराने की आग्रहपूर्ण विनती की। परन्तु नवदीक्षिता की वड़ी दीक्षा करानी थी अत: आप नागौर पधार गईं और विक्रम सं० १९४७ की वैशाख शुक्ल ११ को वड़े उत्सवपूर्वक 'सुवर्णश्रीजी' महाराज की वड़ी दीक्षा सम्पन्न हुई, वड़ी दीक्षा के वाद वीकानेर वालों की आग्रहपूर्ण विनती मानकर आपने वि. सं० १९४७ का चातुर्मास वीकानेर किया।

वीकानेर में संस्कृत अध्ययन

वीकानेर में पूज्यपाद गणाधीश्वर भगवान्सागरजी महाराज साहव तथा तपस्वीवर छगनसागरजी महाराज साहव आदि भी विराजमान थे।

चरितनायिका का सस्कृत का अध्ययन अभी अपूर्ण था, उसे पूरा करना भी आवश्यक था, एवं नवदीक्षिता आर्या 'सुवर्णश्रीजी' म० को भी संस्कृत व्याकरण का अध्ययन कराना आवश्यक था, अतः आपने भी वीकानेर साथ ही चातुर्मास करने का निर्णय कर लिया। वीकानेर संघ का आग्रह तो पूरा था ही। अतः आप वहीं रह गईं।

तपस्वीवर छगनसागरजी महाराज साहव की इच्छा साध्वियों को संस्कृत भाषा पढ़ा कर विदुषी वनाने की थी ही, अतः चरित-

नायिका आदि साध्वीवर्ग प्रातःक्रिया से निवृत्त हो पूज्य गणिवर्य महोदय के उपाश्रय में उपस्थित हो जाता, वन्दन विधि के बाद मूलपाठ लिया जाता और कण्ठस्थ किया हुआ सुनाया जाता। व्याख्यान के समय में प्रवचन श्रवण करके साध्वी मण्डल भी गोचरी आदि कार्यों के लिए चला जाता। मध्यान्ह् में पुनः सारस्वत व्याकरण की पढ़ाई आरम्भ हो जाती। पूज्य छगन-सागरजी महाराज साहब लगन पूर्वक शब्दसिद्धि कराते एवं थोड़ी देर आगम ग्रन्थों का पठन-पाठन भी साथ ही करा देते थे।

बीकानेर में श्वेताम्बर जैनों के करीब २००० घर हैं। यहां के लोग स्वभावतः ही धर्मात्मा सरल स्वभावी और देवगुरु धर्म के प्रति अनन्य आस्था रखने वाले हैं। वे जितने व्यापार-व्यवहार में कुशल हैं, उतने ही धार्मिक क्रियाओं में भी। धार्मिक कार्यों में भी अग्रसर रहते हैं। अपने न्यायोपार्जित धन का सदुपयोग करने में भी वे आनाकानी नहीं करते। साधु-साध्वियों के व्याख्यान सुनने में भी उनकी सर्वदा अत्यधिक अभिरुचि रहती है।

गणाधीशजी तथा चरितनायिका आदि के विराजने से संघ में उल्लासमय वातावरण व्याप्त था। चरितनायिका का आकर्षक व्यक्तित्व श्रद्धालुजनों को वरवस अपनी ओर खींच लेता था। आपके दर्शनार्थ जनता रूपी समुद्र उमड़ता ही रहता था और आप भी अपने मधुर वार्त्तालाप, तत्वचर्चा और सत्शिक्षा द्वारा उनके हृदय में अपूर्व स्थान निर्माण करती जा रही थीं।

बीकानेर द्विविध तपोभूमि भी है। ग्रीष्म ऋतु में सूर्य के प्रचण्ड ताप से तप्त बालुका भूमि पर साढ़े नौ बजे बाद पांव रखने से छाले हो जाते हैं। ऐसे समय में नंगे पांवों चलना कितना कष्टप्रद है, यह भुक्तभोगी ही अनुभव कर सकते हैं। गर्मी इतनी अधिक होती है कि प्रस्वेद से कपड़े तरवतर हो जाते हैं। गर्म लूएं (गर्म वायु) शरीर को झुलसा देती हैं। स्त्रियां दिन में चार-चार बार झाड़ू लगाती हैं, फिर भी घरों में धूल ही धूल दृष्टिगोचर होती है। ऐसी आंधियाँ चलती रहती हैं। प्रस्वेद के साथ मिलकर धूल शरीर और वस्त्रों पर चिपक जाती है। स्नान और वस्त्र प्रक्षालन न करने वाले साधु-साध्वीवर्ग को कितना उष्ण परिषह सहन करना पड़ता है, इसका अनुभव सहन करने वाले ही कर सकते हैं।

उस युग में साधु साध्वीगण वस्त्रों को साबुन या सोडे से नहीं धोते थे। अत्यन्त मलीन हो जाने पर महीने में केवल एक बार खाली पानी में धो लेते थे या धूप में सुखा कर मसल लेते थे। सोडे या साबुन का व्यवहार तो बिलकुल होता ही न था। चिकनाहट लग जाने पर भी राख या सज्जी के पानी से साफ कर लिया जाता था।

हमारी चरितनायिका आदि का अधिकतर विचरण राजस्थान के इन शुष्क प्रदेशों में ही होता था। ग्रीष्म ऋतु जैसी ही कष्टप्रद यहां की वर्षा ऋतु और शीत ऋतु है। वर्षा अत्यल्प होती है,

नहीं जैसी। शीत काल में शीत भी अत्यधिक रहता है। प्रातःकाल के समय रेत इतनी ठंडी हो जाती है कि पाँव रखने पर वृश्चिक-दंश की सी पीड़ा का अनुभव होता है।

संस्कृत अध्ययन के अतिरिक्त समय में स्त्रियों तथा बालिकाओं को सामायिक प्रतिक्रमण आदि आवश्यक क्रियाओं एवं जीव विचार नवतत्व आदि प्रकरणों का अध्ययन कराया जाता था।

मध्यान्ह में एक घण्टे चौपाई वाँचन होता था। चरितनायिका की व्याख्यानशैली के विषय में पहले पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। मधुरवाणी, समझाने की कला तथा व्यवहार कुशलता का अद्भुत संमिश्रण जनता को आकर्षित करने का अव्यर्थ उपाय है और साथ में वक्ता का जीवन त्याग तपोमय हो तब तो कहना ही क्या? जन-मन मन्त्र मुग्ध सा खिंचा चला आता है।

इस चातुर्मास में भी श्रीमती शृंगारश्रीजी म० सा० ने चतुर्दश पूर्वों की आराधनास्वरूप चौदह उपवास, तथा श्रीमती केशरश्रीजी महाराज साहब ने नव उपवास, श्रीमती चन्द्रश्रीजी मा० सा० एवं सुवर्णश्री मा० सा० ने सत्रह प्रकार के संयम की विशुद्धि के लिए सत्रह-सत्रह उपवास की महान् तपस्यायें कीं। श्रावक श्राविकाओं में भी पंचरंगी आदि कई प्रकार की तपस्याएं हुईं। इस प्रकार वि० सं० १६४७ का चातुर्मास बीकानेर में सानन्द व्यतीत हुआ।

कार्तिकी पूर्णिमा को विहार करके बीकानेर से ५ कोस पर 'नाल' नामक स्थान में युगप्रधान दादा श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज एवं जिन कुशलसूरिजी महाराज का दादावाड़ी नामक मनोहर स्थान है "जहां उक्त दोनों दादा साहब के चरण विराजमान हैं" वहां पधारे और गुरु चरणपादुकाओं के दर्शन करके अत्यन्त आनन्द को प्राप्त हुए।

वहां से विहार करके ग्रामानुग्राम विचरते हुए धर्मोपदेश द्वारा भव्यजनों को धर्म मे दृढ़ करते हुए जन्मभूमि गिरासर में पदार्पण किया और वहां के निवासियों के अत्यन्त आग्रह से १५ दिन वहां स्थिति की। वैराग्य रसवाहिनी धर्मदेशना से तत्रस्थ जनों को आनन्दित करते हुए लघुभ्राता चुन्नीलालजी के भावों को दृढ़ किया। उधर फलोधी पहुंचने की शीघ्रता के कारण आप जन्मभूमि में अधिक नहीं ठहर सकीं और फलोधी की ओर विहार कर दिया।

फलोधी से दो कोश इधर आप मल्हार गांव में विराजमान थीं। वहीं पर फलोधी के सैकड़ों श्रावक-श्राविका आपके दर्शनार्थ आ उपस्थित हुए और आपके दर्शन करके अत्यन्त हर्षित होकर अपने आपको धन्य-कृतपुण्य मानने लगे।

इससे पूर्व फलोधी से मृगाबाई आदि कई श्राविकायें बीकानेर दर्शनार्थ आई थीं। उन्होंने फलोधी पधारने की आग्रहपूर्ण विनती की और कहा कि—"श्री मूलचन्दजी गुलेच्छा की लड़की ने भी

प्रार्थना की है कि मेरी भावना दीक्षा लेने की है। अतः चातुर्मास उतरते ही आप विहार करके फलोधी पधारें।"

इन समाचारों को सुनकर श्रीमती गुरुवर्य्या महोदया समझीं कि कोई होगी गुलेच्छा कुटुम्ब में दीक्षा लेने वाली! कुमारी रत्नबाई के विषय में तो उन्हें कल्पना तक भी नहीं हुई थी क्योंकि रत्नबाई की माता सुगनबाई कुछ दिन पहले दर्शन करने आई थीं और उन्हों ने केवल उनके विवाह की ही बात की थी।

आपने उपस्थित श्रावक श्राविकाओं से पूछा—हमने बीकानेर में सुना था कि एक लड़की दीक्षा लेने वाली है वह कौनसी है?

इन्हीं के साथ आई हुई एक बालिका ने पास आकर भक्ति-पूर्वक गुरुवर्य्या को नमस्कार किया और विनम्रभाव से अञ्जलि-बद्ध हो इस प्रकार प्रार्थना करने लगी:-

हे भगवति! मेरी भावना दीक्षा लेने की है, 'मैं ही वह वैरागन हूं।' कितने ही लोग बीच में बोल उठे—अरे! तुम दीक्षा लोगी? हम ने तो आज तक किसी कुमारी कन्या को दीक्षा लेते नहीं देखा?

उस बालिका ने कहा-मैं तो अवश्य दीक्षा लूंगी, चन्दनबाला कुमारी ही थीं, उन्हों ने भी तो दीक्षा ली थी। चाहे प्राण ही क्यों न जाय। मेरी प्रतिज्ञा भंग नहीं हो सकती। यदि मुझे कोई दीक्षा लेने से रोकेगा तो मैं अन-शन करके जङ्गल में चली जाऊंगी और प्राण त्याग दूंगी।

इस लड़की का अद्भुत साहस देख कर सभी उपस्थित जन आश्चर्यचकित हो गये ।

यद्यपि रतन कुमारी को अभी यह ज्ञान न था कि अन-शन क्या है ? उस का स्वरूप क्या है ? उन्हों ने अन-शन का केवल नाम सुना था, हाँ इतना वे अवश्य जानती थीं कि अन्न जल का त्याग कर देना पड़ता है । उन्हों ने सोचा ऐसा करने से मुझे अवश्य दीक्षा की आज्ञा मिल जायगी । और समय आने पर उन्हें आहार पानी का भी त्याग करना पड़ा इसी से उन्हें अभीष्ट सिद्धि भी हुई ।

चरितनायिका ने दूसरे दिन धूमधाम से फलोधी में प्रवेश किया । प्रत्येक व्यक्ति के मुख पर केवल एक ही बात थी, रतनबाई की दीक्षा कैसे हो सकती है ? उस की सगाई हो चुकी है, अब तो ससुराल वाले आज्ञा दें तभी दीक्षा हो सकती है । और वे देने को प्रस्तुत नहीं हैं । विवाह की तैयारियाँ हो चुकी हैं ।

पूज्येश्वरी चरितनायिका ने ऐसा वातावरण देखा तो फलोधी से आप लोहावट पधार गईं और विरागिनी रतनकुमारी की संसारावस्था की काकी और अब श्रीमती विवेकश्रीजी महाराज के पास श्रीमती श्रृंगारश्रीजी म० आदि को फलोधी रख दिया ।

सतीत्व का चमत्कार

बालिका की अग्नि परीक्षा और दीक्षा

चरितनायिका महोदया लोहावट के उपाश्रय में सानन्द विराजमान थीं। फलोधी के समाचार प्रायः प्रतिदिन मिल जाया करते थे। फलोधी से लोहावट केवल आठ कोश ही है। लोग कार्यवश भी आते-जाते रहते हैं और इस समय तो गुरुवर्य्या महानुभाव वहाँ विराजमान हैं। उधर रतनकुमारी की दीक्षा के प्रकरण को लेकर फलोधी में भारी हल-चल मची हुई है। विरागिनी बाला रतनकुमारी आज्ञा प्राप्त करने के प्रयत्न में संलग्न हैं पर अभी प्रयत्न सफल होने के लक्षण दृष्टिगोचर नहीं हो रहे। चरितनायिका को लोहावट पधारे अभी सात दिन हुये हैं कि यह अद्भुत विरागिनी आ उपस्थित हुई और विनम्र शब्दों में इस प्रकार प्रार्थना की—पूज्यवर्य्या, आप कृपा करके फलोधी पधारिये, आपके वहाँ पधारे बिना मेरा छुटकारा होना कठिन है। आपके पुण्य प्रताप से मेरी भावना सफल हो सकेगी, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

श्रीमतीजी का हृदय करुणार्द्र हो गया। उन्हों ने फलोधी चलने की स्वीकृति प्रदान कर दी और रतन कुमारी को आश्वासन दिया कि—रतन! तू चिन्ता न कर! गुरुदेव के प्रताप से तेरी अभिलाषा अवश्य शीघ्र ही पूरी होगी। सदा धर्म की जय

होती है, अधर्म की नहीं। तेरी भावना दृढ़ है तो कोई भी शक्ति तुझे रोकने में समर्थ नहीं हो सकती।

इस तेजस्वी वाणी से रतनकुमारी को बड़ा साहस आ गया और उसे अभूतपूर्व अवलम्बन मिला।

रतनकुमारी ने अपनी भावना व्यक्त की—'अब तो आप श्रीमतीजी को लेकर ही मैं फलोधी जाऊंगी।

चरितनायिका ने कहा—'अच्छी बात है! साथ ही चलना।' थोड़े दिन पश्चात गुरुवर्य्या ने फलोधी की ओर विहार किया, विरागिनी रतनकुमारी साथ ही थीं। समय अनुकूल देख कर रतनकुमारी ने निवेदन किया-पूजेश्वरि! मुझ बालिका पर अनुग्रह करके ऐसा कोई उपाय बतलाइये जिससे मेरे पितृपक्ष वाले और श्वसुर पक्ष वाले दोनों ही मुझे दीक्षा लेने की अनुमति दे दें। गुरुवर्या ने कुछ सोचकर उत्तर दिया—अनशन करना चाहिये, यही अमोघ अस्त्र है। परन्तु पहले नम्रतापूर्वक आज्ञा मांगना ही उचित है। यह तो अन्तिम उपाय है।

सब लोग सानन्द फलोधी पहुँच गये। विरागिनी रत्नकुमारी भी अपने घर चली गईं। उसे केवल एक ही धुन थी, शीघ्राति-शीघ्र दीक्षा लेना। इनके पिता श्री मूलचन्दजी का तो देहावसान हो चुका था। अब वागमलजी इनके काका थे, वे घर में बड़े और इन सब के अभिभावक थे।

रत्नकुमारी ने विनयपूर्वक उनसे दीक्षा लेने की अनुमति मांगी। खूब अनुनय विनय से अपना ध्येय उन्हें निवेदन किया।

पर वे भी एक ही हठी पुरुष थे, किसी भी प्रकार दीक्षा की आज्ञा देने को प्रस्तुत नहीं हुये। अब रत्नकुमारी को अन्तिम उपाय सूझा। उन्होंने अनशन आरम्भ कर दिया। इसी के पर्यायान्तर भूख हड़ताल या सत्याग्रह हैं।

सत्याग्रह की प्रवृति अत्यन्त प्राचीन है। भगवान् ऋषभदेव को दोनों पुत्रियों—ब्राह्मी सुन्दरी ने भी अपने भ्राता भरत चक्रवर्ती से दीक्षा की अनुज्ञा न मिलने पर इसी अव्यर्थ उपाय का अवलम्बन लिया और साठ हजार वर्ष पर्यन्त आयम्बिल तप कर के शरीर को सुखा डाला था। तब सम्राट भरत की बुद्धि ठिकाने आई और बहिनों को मुक्त किया। अर्थात् दीक्षा धारण करने की अनुमति दी।

आधुनिक काल में सत्याग्रह की अपरिमित शक्ति का दर्शन हम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में भली-भांति कर चुके हैं। गांधीजी ने राजनैतिक क्षेत्र में इस अस्त्र का प्रयोग किया और उन्हें सफलता मिली।

आज तो सत्याग्रह करना राजनीति में आम बात हो गई है। कोई भी अपनी बात मनवाने व मांगें पूरी करवाने को इस का प्रयोग कर बैठता है। किसी को सफलता मिलती है तो कोई झूठे आश्वासनों के चक्कर में आकर छोड़ बैठता है। सरकारी तौर पर भी अनशन भंग करा देने के लिए नलियों द्वारा जबरन उदर में दुग्ध आदि वस्तुएं पहुँचाई जाती हैं। कार्यसिद्धि के लिए

इसका प्रयोग करना मूर्खता की पराकाष्ठा है। अपनी मांग न्याय्य हो तभी इसका प्रयोग हो और वह भी सीमित।

वास्तव में तो यह आत्मशुद्धि का साधन है। भौतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए अनशन-सत्याग्रह या भूख-हड़ताल करना मिथ्यात्व है। सम्यग्दृष्टि तो केवल कर्म निर्जरार्थ या आध्यात्मिक उपलब्धियों के लिए ही इस साधन को अपनाते हैं।

प्रश्न उठ सकता है कि यदि ऐसा है तो चरितनायिका ने रत्नकुमारी को यह उपाय क्यों बताया? उत्तर स्पष्ट है— रत्नकुमारी को भौतिक सुखों की कोई अभिलाषा न थी। वह तो सर्वत्यागी बनने की इच्छुक थी। साधनामय जीवन व्यतीत करके स्व पर का कल्याण करना ही उसका ध्येय था। अतः पारमार्थिक दृष्टि होने से इसका प्रयोग युक्तियुक्त ही था, दोषपूर्ण नहीं।

किसी को यह भी शंका हो सकती है कि वह रत्नकुमारी तो चौदह वर्ष की बालिका थी। चरितनायिका ने उसे यह उपाय बतला कर उसे बहकाने का प्रयत्न किया। किन्तु सोचने की बात है कि रत्नकुमारी को दीक्षा लेने का किसी ने उपदेश ही नहीं दिया था, वह तो स्वयं की हार्दिक प्रेरणा से साध्वी बनने को प्रस्तुत हुई थी। थोड़े दिनों के सहवास में ही हमारी चरितनायिका महोदया ने रत्नकुमारी की वैराग्य भावना की तीव्रता का पूर्ण अनुभव कर लिया था और देख लिया था कि दृढ़ विचार वाली वैराग्यवती है, इसकी सद्भावना सफल हो। इसके त्यागी बनने और आत्म कल्याण करने के उदात्त विचार पूर्ण हों।

"प्रत्येक मनुष्य की आदर्श भावना या सत्कार्य को पूर्ण करने का उपाय बतलाना, सहायता करना प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति का कर्त्तव्य है।"

इस सिद्धान्त के अनुसार हमारी पूज्यवर्य्या ने केवल अपने कर्त्तव्य का पालन किया था।

रत्नकुमारी ने अनशन आरम्भ कर दिया। उनके इस साहस से सभी चकित थे। काका साहब बागमलजी अपनी हठ पर अड़े हुये थे। वाग्दान सम्बन्ध (सगाई) हो चुका था अतः उन लोगों की अनुमति भी आवश्यक थी।

अनशन के तीन दिन व्यतीत हो गये, किसी ने कुछ नहीं कहा। रत्नकुमारी फलोधी निवासी श्रावक तनसुखजी* के पास गईं और उनसे प्रार्थना की—कृपा करके आप मेरी सहायता करिये और मुझे दीक्षा लेने की अनुमति दिला दीजिये।

उन्होंने यह बात स्वीकार तो कर ली परन्तु घण्टे दो घण्टे बीत जाने पर भी वे जब बाहर न निकले तो रत्नकुमारी ने देखा कि 'ये तो मेरी बात की उपेक्षा कर रहे हैं।' दिन भर धरना दिये बैठी रही। रात को तनसुखजी का हृदय करुणार्द्र हो गया। उन्होंने आज्ञा दिला देने के विषय में प्रयत्न करने का वचन दिया। रत्नकुमारी अपनी माताजी के पास आ गईं। गुरुवर्य्या महोदया को भी इस बात से अवगत किया।

* ये इन की भुवा साहब के श्वसुर थे।

अनशन के चार दिन व्यतीत हो गये, सारे शहर में हलचल मच गई। प्रत्येक व्यक्ति इसी चर्चा में संलग्न था। समाज के नेताओं ने भयभीत होकर सभा की। उसमें लगभग एक सहस्र व्यक्ति उपस्थित थे।

रत्नकुमारी को वहां बुलाया गया। उन्हें दीक्षा न लेने और अनशन तोड़ देने के लिए समझाया जाने लगा। रत्नकुमारी ने कहा—'मैं किसी के सिखाने-बहकाने से दीक्षा नहीं ले रही। मेरी हार्दिक अभिलाषा साध्वी बन कर आत्म कल्याण करने की है। मुझे इस स्वाभाविक प्रवृत्ति से कोई नहीं रोक सकता। मैं अवश्य दीक्षा लूंगी। आप लोगों से मेरी विनम्र प्रार्थना है कि आप मेरे काका साहब आदि को तथा शेरसिंह जी साहब आदि—दोनों पक्ष वालों को समझाकर मुझे दीक्षा लेने की आज्ञा दिला दीजिये, जिससे मैं साध्वी बनकर भगवान् महावीर के शासन की सेवा करती हुई मुक्ति पथ में अग्रसर हो सकूं।'

इस प्रकार रत्नकुमारी की दीक्षा की दृढ़ और उत्कृष्ट भावना जान कर पंच लोगों ने विचार किया कि "इस लड़की की ऐसी भावना है तो हमें भी इसकी सहायता करनी चाहिये और आज्ञा दिलाने का प्रयत्न करना चाहिये यही अपना कर्त्तव्य है।" ऐसा निश्चय करके उस सभा के प्रतिनिधि स्वरूप चालीस पचास प्रधान-प्रधान व्यक्ति मिलकर श्री शेरसिंह जी श्रावक के घर की ओर चले।

ये लोग कोई एक दो फर्लाङ्ग गये होंगे कि परस्पर विचार विमर्श होने लगा—देखो भाई अपन इस कार्य के लिए चल तो रहे हैं, कहीं इस लड़की का विचार कल पलट जाय और यह विवाह करने को तैयार हो जाय तो हम लोगों को लज्जित होना पड़ेगा और दुनिया में मुंह दिखाने के लायक न रहेंगे। अभी बालिका ही तो है! इस विचार से वे सब वापस लौट पड़े।

इधर रत्नकुमारी ने सोचा—कदाचित् ये लोग मुझे दिखाने के लिए उधर कुछ दूर जाकर सब अपने अपने घर चले जायं। अतः देखें तो सही। यह सोचती हुई वे भी छुपती-छुपती पीछे चलीं। जब ये लोग वापिस आने लगे तो चुपचाप दबे पांव अपने घर आ गईं। वे लोग इनके घर आये और कल्पित झूठ बोलते हुए कहने लगे—हम जा आये, आज्ञा देने को बहुत समझाया किन्तु वे किसी प्रकार भी आज्ञा देने को तैयार नहीं हुए।

यह सुनकर रत्नकुमारी ने कहा—आप लोग इतने बड़े होकर झूंठ क्यों बोल रहे हैं! आप वहाँ गये ही कब! आप लोग तो मार्ग में से ही लौट आये। मैं भी तो आप लोगों के पीछे-पीछे यही देखने आई थी।

एक बालिका की यह सच्ची स्पष्टोक्ति सुन कर वे बड़े लज्जित हुए और बोले—कल हम लोग अवश्य जायेंगे और आज्ञा देने के लिए समझायेंगे, आज तो अब काफी देर हो गई है, घर जाते हैं।

रत्नकुमारी के अनशन का सातवां दिन था। इनके काका बागमलजी कई दिनों से अस्वस्थ थे। उस दिन तबियत कुछ अधिक बिगड़ गई। उन्होंने कहा—रतन को समझा कर उसे पारना करवाओ, यह लड़की कहीं मर न जाय। मेरा नाम लेकर कहना कि मैं तो आज्ञा दे दूंगा परन्तु इसके सुसरजी की आज्ञा होगी तब दीक्षा हो सकेगी। मैंने आज्ञा दे दी इसलिए पारना कर लेना चाहिये।

रत्नकुमारी उपाश्रय मे थी, मां ने वहां जाकर समझाया और कहा—तुम्हारे काका साहब ने आज्ञा दे दी। उनकी तबियत खराब है। तुम पारना न करोगी तो उन्हें दुःख होगा, अतः पारना कर लो। रत्नकुमारी ने परिस्थिति की गम्भीरता का विचार किया और घर आकर चौथाई टुकड़ा रोटी का खाकर पानी पी लिया।

उसी दिन दोपहर के समय 'लाभूबाई' जो कि फलोधी के ही निवासी केवलचन्द जी गुलेछा के स्वर्गीय पुत्र सुगनमलजी की पत्नी थी और अभी केवल सोलह वर्ष की ही थी, दीक्षा लेने को उद्यत होकर बन्दोले जीमने जा रही थी उन्हीं के साथ रतनकुमारी भी उपाश्रय की ओर जा रही थी। मार्ग में फलोधी के हाकिम के घर के पास से ये लोग निकले। हाकिम साहब अपने घर के बाहर खड़े थे। पास खड़े हुए नौकर ने अंगुली निर्देश द्वारा रत्नबाई को बता कर कहा—हुजूर यही वह लड़की है जिसके कारण सारे शहर में हलचल मची हुई है।

हाकिम साहिब ने रत्नकुमारी को अपने पास बुलाया और दीक्षा न लेने के लिए उसे साम-दाम भेद से समझाया, किन्तु रत्न-कुमारी अपने विचार पर दृढ़ थी। उनका वैराग्य 'स्मशान वैराग्य' न था। हाकिम साहिब अब दण्डनीति का प्रयोग करने का विचार करके बोले—यदि तू विवाह करना स्वीकार न करके दीक्षा लेने का हठ करेगी तो देख (सामने ही बेड़ियाँ पड़ी थीं उन्हें दिखा कर) ये बेड़ियाँ तेरे पाँवों में डाल दी जायेंगी।

रत्नबाई ने निर्भयता से कहा—मैंने किसी की चोरी नहीं की। और न किसी का कोई अपराध किया। फिर आप मेरे पांवों में बेड़ियाँ कैसे डाल सकते हैं? यदि आप सच्चे हाकिम हैं तो न्याय कीजिये। मैं केवल अपनी आत्मा का उद्धार करना चाहती हूं। इस पर भी यदि आप बेड़ियां डालना चाहते हैं तो डाल सकते हैं। आपके हाथ में सत्ता है, मार भी सकते हैं।

रत्नकुमारी के निर्भीक वाक्यों से हाकिम साहब एक क्षण के लिए अवाक् रह गये, किन्तु दूसरे ही क्षण उनको सत्ता के मद ने अन्धा बना दिया और वे फिर डराते धमकाते हुए कहने लगे—'तुम्हें शादी करनी होगी? हम तुम्हें कभी दीक्षा न लेने देंगे। जबरदस्ती तुम्हारी शादी कर देंगे।' रत्नकुमारी जरा भी क्षुब्ध न हुई, उन्होंने शान्ति से कहा—देखिये हाकिम साहिब! आपका इस प्रकार मुझे डराना-धमकाना और मुझ पर गुस्सा करना उचित नहीं है। आपकी बात मैं मान सकती हूं किन्तु मेरी एक शर्त है! उसे आपको मानना होगा। यदि आप मुझे यह लिख दें

या ठेका लेलें कि तू कभी विधवा न होगी मैं शादी करने को प्रस्तुत हो सकती हूं।

इन शब्दों ने क्रोधाग्नि में घृताहुति का कार्य किया। उन्होंने अपने सेवकों को आज्ञा दी—"इस लड़की को एक कोठरी में बन्द कर के ताला लगा दो और चावी मुझे सौंप दो।"

हाकिम साहिब की आज्ञा सुन कर रत्नकुमारी ने कहा—हाकिम साहब ! आप अन्याय कर रहे हैं, इस का फल अच्छा न होगा।

हाकिम ने पुनः सेवकों को आज्ञा दी—इस को बन्द कर दो। आज्ञानुसार सेवकों ने रत्नकुमारी को एक कमरे में बन्द कर दिया और ताला लगा कर चावी हाकिम साहब को दे दी।

अद्भुत चमत्कार

एक घण्टे बाद ही ताला अपने आप टूट कर गिर पड़ा। यह अद्भुत चमत्कार देखकर हाकिम लज्जित हो गया और रत्नकुमारी को मुक्त कर दिया।

वे सीधी उपाश्रय पहुंची और सारी घटना गुरुवर्या महोदयादि को सुनाई; जिसे सुन कर सभी विस्मित—चकित हो गये और नवकार मन्त्र, वैराग्य और सतीत्व का प्रत्यक्ष प्रभाव देख कर हर्षोत्फुल्ल हो रत्नकुमारी को धन्य-धन्य कहते हुए गद्-गद् हो कर जैनशासन की महत्ता के प्रति नतमस्तक हो गये।

यह उपाय असफल हो जाने पर रत्नकुमारी के श्वसुरने जोधपुर में बड़े आफिसर को तार दिया—'वह लड़की, जिसका विवाह हमारे लड़के के साथ निश्चित हुआ है, विवाह के लिए इन्कार करके दीक्षा लेने को तैयार हुई है। हमारे सभी उपाय व्यर्थ हो गये हैं। हमारी मांग (जिस के साथ सगाई हो चुकी हो उसे मांग कहते हैं) का हमें न मिलना हमारे लिए बड़ी बेइज्जती की बात है। अतः आप शीघ्र ऐसा आर्डर निकालिये कि—"उस लड़की की दीक्षा नहीं हो सकती। उसका विवाह, जिस लड़के से निश्चित किया गया है, कर दिया जाय"। ऐसा आर्डर होने पर हम उसे जबरदस्ती पकड़ कर विवाह के बन्धन में बांध सकेंगे।'

जोधपुर में बड़े अफसर के आफिस में बड़े-बड़े पदाधिकारी जैन थे। उन लोगों को फलोधी की इस हलचल के विषय में भी जानकारी थी। उन्होंने उक्त चमत्कार भी सुन लिया था। अतः विचार किया कि—'उस लड़की की दीक्षा लेने की प्रबलतम इच्छा है, उसे रोकना उचित नहीं होगा। कहीं उसके अभिशाप से अपना अनिष्ट न हो जाय।' अपन तो विघ्न नहीं करेंगे।

उन्होंने बड़े अफसर को सारी परिस्थिति से परिचित कराके कहा—उसे दीक्षा दिलवाने का ही आर्डर होना चाहिये।

आफिसर महोदय ने फलोधी के हाकिम को तार द्वारा आर्डर दिया कि—"रत्नकुमारी का विवाह जबरन न किया जाय, उसकी इच्छानुसार उसे दीक्षित होने दिया जाय और कोई रुकावट न

डाली जाय" । यह तार पाकर वह हाकिम भी शान्त हो गया और रत्नकुमारी के सुसराल वाले भी ठण्डे हो गये क्योंकि अब कोई उपाय न था।

जब फलोधी के पंचों को यह समाचार ज्ञात हुआ तो उन्होंने फिर बड़ी भारी सभा की। उस दिन सभा में पांच हजार व्यक्ति उपस्थित थे। रत्नकुमारी को बुलाकर फिर समझाया गया कि वह दीक्षा न ले और विवाह कर ले परन्तु वे अपने शुभ संकल्प पर दृढ़ रहीं। तब पंचों ने बागमल जी गुलेछा आदि को समझाकर इन्हें आज्ञा दिलवाई और शेरसिंहजी झावक को भी समझा बुझा कर अनुमति ले आये। रत्नकुमारी ने कहा—'आप सब लोग उपाश्रय चलकर श्रीमती गुरुवर्या महोदया को कह आवें।' सब उपाश्रय में गये और सविधि वन्दना करके प्रार्थना की—इनकी दीक्षा ग्रहण करने की तीव्र अभिलाषा है। हमने और अन्य लोगों ने भी इन्हें साध्वी न बनने के लिए बहुत समझाया है, पर ये अपने विचार पर भली भांति अडिग-अचल हैं। यद्यपि फलोधी में अभी कुमारी कन्या की दीक्षा नहीं हुई है और इस लोक रूढ़ि की दृष्टि से हम भी मना करते रहे; किन्तु योग्यता व धर्मनीति की दृष्टि से इनका दीक्षा लेना अनुचित नहीं है। केवल रूढ़ि का पालन करने के लिए उत्कृष्ट त्याग वैराग्य की भावना की अवहेलना करना धर्मशास्त्र के विरुद्ध एवं नीति विरुद्ध है। अतः हम यह भेंट आपको सादर समर्पित करते हैं। इनके पितृपक्ष और श्वसुरपक्ष दोनों से ही हम आज्ञा ले

आये हैं। अब आप अच्छे मुहूर्त में इन्हें दीक्षा देकर कृतार्थ करें।"

चरितनायिका महोदयादि ने धन्यवाद पूर्वक 'तथाऽस्तु' कह कर सबको प्रसन्न किया। वे सब वन्दना करके जब वापिस चले गये तो रत्नकुमारी को भी संकल्प पर दृढ़ रह कर दीक्षा की अनुमति ले लेने पर सहर्ष धन्यवाद दिया और इस अभूतपूर्व सफलता पर हार्दिक बधाई दी।

रत्नकुमारी का नौ दिन से अनशन चल रहा था। वह आज ध्येय पूर्ति के साथ सम्पूर्ण हुआ। दूसरे दिन वहां पर श्री हेमसागर जी महाराज के व्याख्यान में रत्नकुमारी ने चतुर्विध संघ एवं अपने अभिभावकों के सम्मुख आजीवन ब्रह्मचर्य पालन की प्रतिज्ञा ग्रहण की। वि० सं० १९४८ चैत्र शुक्ला ५ के दिन दीक्षा मुहूर्त निश्चित कर दिया गया।

इधर श्री पूनमचन्द जी बाफणा जो रत्नकुमारी के पड़ोस में ही रहते थे और तीन पत्नियों का वियोग हो जाने पर भी चौथा विवाह करने को प्रस्तुत हो रहे थे, अल्पवयस्का रत्नकुमारी को संयम की ऐसी दृढ़ भावना और विरोधियों के सामने निर्भय होकर अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कष्टों की परवाह न करते हुये धीरता और वीरता से संघर्ष में विजय की वरमाला पहनते हुए देखा तो उन्हें अपनी विषय लोलुपता पर बड़ी लज्जा आई। वे विचारने लगे—अहो! इस कन्या को धन्य है कि यह कुमारी ही संयम पथ की पथिका बन रही है। एक मैं हूं ऐसा अधम!

कि तीन विवाह कर चुका हूं फिर भी विषय विमुख नहीं हो रहा और चौथा सम्बन्ध करने जा रहा हूं। मुझे धिक्कार हो! अब तो मैं भी इसी मार्ग का अनुसरण करूंगा।

और वे भी भगवान् महावीर द्वारा निर्दिष्ट पथ पर चलने को प्रस्तुत हो गये। रत्नकुमारी ने इन्हीं से आवश्यक क्रियाएं आदि सीखी थी, एक प्रकार से वे इनकी शिष्या थीं। शिष्य के मार्ग को गुरु भी अपनावे यह कितनी आश्चर्यजनक बात है। इन्होंने भी दीक्षा ली और श्री सुमतिसागर जी महाराज के शिष्य बने।

पूर्वोक्त मुहूर्त में उपर्युक्त लाभूबाई एवं रत्नकुमारी की भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई। रत्नकुमारी का नाम 'रत्नश्रीजी' स्थापित किया गया और श्रीमती विवेकश्रीजी म० सा० की शिष्या बनाई गईं। लाभूबाई का शुभ नाम 'लाभश्रीजी' रखकर श्रीमती शृंगारश्रीजी महाराज साहब की शिष्या घोषित की गईं।

इस प्रकार रत्नकुमारी की अभूतपूर्व दीक्षा सानन्द सम्पन्न हुई। अपने आप ताला खुल जाने वाली घटना से जनता में वैराग्य के इस अद्भुत प्रभाव की चर्चा सतत होने लगी और लोग काफी प्रभावित हुए तथा भविष्य में दीक्षेच्छुकों का मार्ग प्रशस्त और निर्विघ्न सा हो गया। चरितनायिकादि नव-दीक्षिताओं को लेकर लोहावट विहार कर गईं।

भगवान् आदीश्वर की प्रतिष्ठा में चमत्कार

इधर फलोधी में प्राचीन जीर्ण मन्दिर के पास नवीन मन्दिर का निर्माण हो रहा था और प्रतिष्ठा मुहूर्त समीप ही था। अतः फलोधी वाले इस शुभ अवसर पर पधारने की विनति लेकर लोहावट में आ उपस्थित हुए और आपको पधारने की स्वीकृति देनी पड़ी। तदनुसार थोड़े दिन लोहावट में विराज कर आप अपनी शिष्या मण्डली सहित पुनः फलोधी पधार गईं। फलोधी वालों ने प्रतिष्ठा कार्य के लिए महान् त्यागी वैरागी पूज्येश्वर सुखसागरजी महाराज साहब के गुरुवर्य मन्त्रशास्त्र के विशिष्ट-ज्ञाता, महाचमत्कारी श्रीमान् ऋद्धिसागरजी महाराज साहब को सादर आमन्त्रित किया था। "तीर्थाधिराज आबू पर होने वाली आशातनाएं इन्हीं महापुरुष ने बन्द कराई थीं", ऐसा उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है।

नवदीक्षिता बाल साध्वी रत्नश्रीजी महाराज ने एक रात्रि के उषाकाल में स्वप्न देखा कि श्री शेरसिंह जी श्रावक के यहां प्रथम तीर्थंकर आदीश्वर भगवान् की प्रतिष्ठा हुई। श्रीमती रत्नश्रीजी महाराज ने अपना स्वप्न गुरुवर्या महोदया के सम्मुख निवेदन किया जिसे सुनकर वे अत्यन्त चमत्कृत और हर्षित हुईं। श्री शेरसिंह जी को बुलाकर उक्त स्वप्नानुसार प्रतिष्ठा करवाने की प्रेरणा की। उन्होंने प्रसन्नता से इसे स्वीकार किया।

श्री शेरसिंह जी प्राचीन जीर्ण शीर्ण और जमीन में धंसे हुये मन्दिर में से श्री आदीश्वर भगवान की प्रतिमा को महोत्सवपूर्वक अपने घर ले आये और फिर प्रतिष्ठा मुहूर्त पर यही प्रतिमा अष्टाहि्नकोत्सव पूर्वक नवनिर्मित प्रासाद में विराजमान क गई। इस प्रतिष्ठा में जो चमत्कार प्रत्यक्ष देखे गये वे आज भी प्रत्यक्षदर्शी महानुभावों द्वारा सुने जा सकते हैं।

जलयात्रा के वरघोड़े की तैयारियां जोर-शोर से हो रही थीं। मारवाड़ में वसन्त में ही तेज धूप पड़ने लग जाती है और मिट्टी ऐसी तप जाती है कि चने भुन जायं। इस समय-तो ग्रीष्म का प्रचण्ड सूर्य अपनी प्रखर किरणों से ताप की वर्षा कर रहा था। भगवान की पालकी उठाने वाले व्यक्ति, जल के कलश सिर पर रखकर चलने वाली स्त्रियां तथा साधु-साध्वी ऐसी धूप में बिना जूतों के कैसे चल सकेंगे? लोगों के सम्मुख भारी समस्या उपस्थित हो गई। विचारने लगे—क्या करें? वरघोड़ा जल्दी निकल जाय तो सबको सुविधा रहे परन्तु यह असम्भव था। शहर के बाहर से कलश लेकर आते आते कम से कम दोपहर दिन चढ़ ही जायगा और मार्ग की धूल तपकर तवा हो जायगी। उसमें नंगे पाँव चल सकना कठिन ही नहीं, असम्भव है।

प्रतिष्ठाचार्य महोदय भी इस परिस्थिति से अनभिज्ञ न थे। उन्होंने सबको आश्वासन दिया—चिन्ता न करो! शासनदेव सब अच्छा करेंगे।

समय पर सबने देखा कि धीरे-धीरे बादल उमड़ रहे हैं। थोड़ी देर में तो आकाश गहरे मेघों से आच्छन्न हो गया। सबके हृदय में हर्ष की लहरें उठने लगीं। चिन्ता के बादलों ने बिखर कर मेघमाला का रूप धारण कर लिया, रिमझिम वर्षा होने लगी और धरती का ताप शान्त हो गया। वरघोड़े का जुलूस धूम-धाम से निकला। हजारों की मानव मेदिनी विभिन्न चित्र विचित्र वस्त्राभूषण धारण किए देव देवाङ्गनाओं जैसे प्रतीत हो रहे थे। सधवा स्त्रियां विचित्र कलशों को शिर पर धारण किये बड़ी सुन्दर लग रही थीं। भगवान की पालकी के आगे पुरुषवर्ग गायन मण्डली सहित चलता हुआ स्थान स्थान पर ठहर कर भगवान् के गुणवर्णनयुक्त संगीत से स्व पर के हृदयों को प्रमुदित बनाता हुआ, उभयभव सार्थक और सफल बना रहा था। वर्षा थोड़ी देर पूर्व ही हो चुकी थी और अब केवल गगनाङ्गण मेघ-मय छत्रयुक्त होकर जुलूस की दिवाकर के प्रखर ताप से रक्षा कर रहा था। यह सब चमत्कार श्रीमान् ऋद्धिसागरजी महाराज साहब की मन्त्र शक्ति का था।

दूसरा अद्भुत चमत्कार दिक्पालों तथा नवग्रह की पूजा-बलि बाकुला देते समय दिखलाई पड़ा। आकाश में उछाला जाने वाला बलिद्रव्य-बाटी बाकले नारियल आदि वापिस नीचे नहीं गिरे, आकाश में लुप्त हो गये। केवल नारियल के छिलके नीचे आ पड़े, गिरी ऊपर ही दिक्पालों ने ले ली।

इस प्रतिष्ठा महोत्सव पर गणाधीश श्रीमान् भगवान्सागरजी

महाराज साहब, श्रीमान् सुमतिसागर जी महाराज साहब, तपस्वीवर श्रीमान् छगनसागरजी महाराज साहब आदि मुनि मण्डल भी वहीं पधारे हुए थे ।

आसन्न ग्रामों की जैनजनता भी इस प्रतिष्ठोत्सव पर वहाँ आई हुई थी। दूर देशों में व्यापारार्थ निवास करने वाले महानुभाव भी इस शुभ अवसर पर वहीं उपस्थित थे। वे सब उपर्युक्त चमत्कार देख कर अत्यन्त प्रभावित हुये और गणिवर्य ऋद्धिसागरजी महाराज की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगे।

वि. सं. १६४८ की वैशाख शुक्ला ३ शुभ दिन शुभ लग्न में भगवान् आदीश्वर महा प्रभु वेदी पर विराजमान किये गये। इस प्रकार यह प्रतिष्ठा कार्य सम्पन्न हुआ।

संघने गणिवर्य श्रीमान् ऋद्धिसागरजी महाराज को फलोधी चातुर्मास करने की आग्रहपूर्ण विनति की और आपसे भगवती सूत्र श्रवण करने की भावना व्यक्त करते हुये अत्यन्त विनम्र शब्दों में यहीं कुछ काल विराजने की प्रार्थना की। उधर हमारी चरितनायिका ने भी सूत्र सुनने की इच्छा प्रकट करते हुये ऋद्धिसागरजी महाराज साहब को फलोधी में ही चातुर्मास करने का हार्दिक निवेदन किया।

पूज्य गणिवर्य महोदय ने सब की हार्दिक अभिलाषा और विनति का विचार करते हुये चातुर्मास रहने की स्वीकृति प्रदान कर दी ।

आप के ओजस्वी व्याख्यान प्रतिदिन होने लगे और भारी संख्या में जनता ने व्याख्यान श्रवण का लाभ लिया।

आप न्याय व्याकरण काव्यकोश आदि के प्रकाण्ड विद्वान् थे। और साथ ही व्याख्यान शैली भी इतनी सरल हृदयग्राही व वैराग्य रस गर्भित थी कि श्रोताजन आनन्दमग्न हो जाते थे।

प्रतिष्ठा से एक मास पूर्व श्रीमती केशरश्रीजी महाराज की कन्या जिस की छोटी-(पाँच वर्ष की) अवस्था होने के कारण उस वक्त दीक्षा न हो सकी थी, उसनें अब संयमी बनने की अपनी अभिलाषा व्यक्त की। ये अपनी माता के दीक्षित हो जाने के कारण लोहावट में अपने नाना नानी के पास रहती थीं। इनकी अवस्था अब १२ वर्ष की हो चुकी थी। खीचन्द में श्री मनसुखजी गुलेछा के सुपुत्र के साथ वाग्दान सम्बन्ध भी हो चुका था। वे नाना नानी आदि स्वजनों ने गृहस्थाश्रम में ही रह कर धर्म ध्यान करते रहने की राय दी, काफी प्रलोभन भी दिये, किन्तु उनका वैराग्य पतङ्ग के रंग जैसा नहीं था, जो प्रलोभनों के ताप से उड़ जाता। मजीठ का पक्का रंग था जो सहस्रवार धुलने पर और धूप में रखने पर भी वैसा ही बना रहता है।

विक्रम सं. १६४८ की आषाढ़ शुक्ला ३-तृतीया के दिन शुभ मुहूर्त में इनकी भागवती दीक्षा खूब धूम-धाम से हो गई। श्रीमती 'कनकश्रीजी' नाम स्थापन करके हमारी चरितनायिका पूज्येश्वरी की शिष्या बनाई गई। ये हमारी परमाराध्या की प्रथम आबाल ब्रह्मचारिणी शिष्या बनीं।

फलोधी के श्रावक-श्राविकाओं की विनति और श्री भगवती सूत्र श्रवण करने तथा गणिवर्य श्री ऋद्धिसागरजी महाराज साहब से तात्त्विक ज्ञान की प्राप्ति की इच्छा से वि० सं० १६४८ का चातुर्मास आपने फलोधी में ही किया।

प्रातः गणिवर्य का व्याख्यान श्रवण करना तथा मध्याह्न में अन्य विद्यार्थिनी साध्वियों के साथ गणिवर्य से 'आत्म प्रबोध' ग्रन्थ पठन करना, सैद्धान्तिक चर्चाएं करना हमारी चरितनायिका का नित्य नियम हो गया था।

श्रीमान् ऋद्धिसागरजी महाराज भी बड़े वात्सल्यभाव से उन्हें शास्त्रों के गम्भीर रहस्य बताया करते थे और वे बड़े विनम्र भाव से जिज्ञासु बनकर उन रहस्यों के अगाध सागर में अवगाहन करती हुईं अपने आपको कृत-कृत्य मानती थीं।

इस चातुर्मास में आपने नव उपवास का तप किया। श्रीमती शृंगारश्रीजी महाराज ने १६ उपवास, श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज ने २० उपवास की तपस्या की।

चातुर्मास के पश्चात् आपकी प्रेरणा से फलोधी निवासी श्री हजारीमलजी कोचर ने, संसारोद्विग्न हो परम वैराग्य से संयम पथ के अनुसरण करने का निश्चय किया। मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीया को आपकी भागवती दीक्षा हुई और 'श्री धनसागरजी महाराज' नाम रक्खा गया। उसी दिन वागमलजी गुलेछा की पुत्री और स्व० केशरीचन्दजी कोचर की पत्नी 'फूलबाई' भी महावीर प्रभु

निर्दिष्ट महासंयम पथ की पथिका बनीं और उनका नाम 'धनश्रीजी' दिया गया।

कई दिनों से फलोधी के स्व० श्री सूरजमलजी झावक की वधू ज्योतिबाई भी आपके पास वैराग्य दशा में रह रही थी। उनकी भी भावना को सफल बनाया और श्रीमती सिंहश्री जी महाराज की शिष्या बनाकर 'प्रतापश्री' जी म० नाम स्थापन किया। छः महीने तक विद्याध्ययनार्थ अपने ही पास रक्खा। ये भी भविष्य में नामानुरूप प्रतापशालिनी प्रवर्तिनी हुईं। इनका विस्तृत चरित्र अन्यत्र प्रकाशित और प्राप्य है।

इन सब उत्सवों के समाप्त होने पर आपने अपनी शिष्या मंडली सहित विहार कर दिया और नागौर होते हुए नव-दीक्षिताओं की बड़ी दीक्षा कराने पाली पधारीं। वहां तपस्वीवर श्रीमान् छगनसागरजी महाराज साहब आदि ३ मुनिवर्य विराज-मान थे। उनके दर्शन करके अत्यन्त आनन्दित हुए। कुछ दिनों वहीं ठहर कर श्रीमती रत्नश्रीजी महाराज, श्रीमती लाभश्रीजी महाराज, श्रीमती कनकश्रीजी महाराज और श्रीमती धनश्रीजी महाराज की योगोद्वहन क्रियापूर्वक बृहद्दीक्षा करवाकर दश साध्वियों सहित आप पुनः नागौर पधार गईं क्योंकि वहां वालों की आग्रहपूर्ण विनति प्रथम ही स्वीकृत की जा चुकी थी।



प्रिय शिष्या का वियोग

नागौर मे आपका प्रवेश अत्यन्त धूम-धाम से हुआ। वहां की जनता आप श्रीमती जी के प्रभाव से भली-भांति परिचित थी। उधर से पूज्येश्वर गणाधीश भगवानसागरजी महाराज साहब से भी विनति की गई। वे भी मुनि मण्डल सहित वहां पधार गये थे।

प्रातःकालीन व्याख्यान मुनिराजों का होता था तथा मध्याह्न में हमारी चरितनायिका अपनी वैराग्यगर्भित शैली से चरित्र (चौपाई) वांचती थी जिसे श्रवण करने सभी पुरुष, स्त्रियां, बालक, बालिकाएं समय पर उपस्थित हो जाते थे।

श्रावण और भाद्रपद मास में मासक्षमण पक्षक्षमण अट्ठाइयां आदि तपस्याएं खूब हुईं। श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज साहब ने १६ उपवास की तपस्या की। सब प्रकार से आनन्द मङ्गल था। किसी प्रकार की चिन्ता न थी कि अकस्मात् ही श्रीमती केशरश्री जी महाराज का शरीर अस्वस्थ हो गया। अनेक प्रकार के उपचार औषधि प्रयोग किये गये पर वे सब व्यर्थ सिद्ध हुए। उन्हें कोई लाभ न हुआ। रोग प्रति क्षण बढ़ने लगा।

श्रीमती केशरश्रीजी महाराज की हालत दिन दिन गिरने लगी। उन्होंने अनशन करा देने की प्रार्थना की और अपनी गुरुवर्या—हमारी चरितनायिका महानुभावा से अपने अपराधों—

अविनयादि के लिए क्षमा याचना करते हुए निवेदन किया— पूज्येश्वरि ! कनकश्रीजी अभी बालिका हैं, इन्हें सुयोग्य बनाने और संयम में सुदृढ़ रखने का प्रयत्न करियेगा। मैं तो अब कुछ दिन की मेहमान हूं।

पूज्येश्वरीजी महोदया ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा— तुम इनकी चिन्ता न करो और अपना मन शान्त रक्खो। तुम्हारी भावना अनशन की है तो समय पर अनशन भी करा देंगे।

चरितनायिकामहोदयादि सभी साध्वी मण्डल केशरश्रीजी महाराज की सेवा में प्रति क्षण तत्पर रहता था। चरितनायिका कभी देखती थीं कि अन्य साध्वियां किसी कार्य में संलग्न हैं अथवा वाहर गई हैं तो स्वयं लघुनीति आदि परठने में कभी न हिचकती थीं। यद्यपि केशरश्रीजी महाराज उन्हें विनम्रपूर्वक ऐसा न करने की प्रार्थना करतीं पर वे उन्हें चुप कर देतीं।

वे ऊपर से बड़ी धैर्यशीलता, गम्भीरवृत्ति और शान्ति का प्रदर्शन करतीं पर हृदय में अपनी इस प्रिय शिष्या की अस्वस्थता और भावी वियोग से बड़ा कष्ट हो रहा था।

श्रीमती केशरश्रीजी महाराज ने पुनः विनम्र भाव से अपनी अभिलाषा व्यक्त करते हुए सन्थारा करा देने की प्रार्थना की— भगवति ! अब मैं नहीं बचूंगी, आप मुझे सन्थारा करा दीजिये।

चरितनायिका पूज्यवर्या के सम्मुख बड़ी विकट समस्या उपस्थित थी, 'संथारा' अनशन जिसमें भोज्य वस्तुओं का आजी-

यन त्याग कर दिया जाता है" कोई साधारण तप नहीं। करने वाला और कराने वाला दोनों ही अपने २ उत्तरदायित्व को पूरी तौर से समझने वाला हो। देश काल की परिस्थितियों, रोगी की अवस्थाओं भावनाओं और शास्त्रीय ज्ञान की पूरी जानकारी रखता हो तभी अनशन करा सकता है।

हमारी चरितनायिका महानुभावा ने विचार किया—इनकी अवस्था तो दिनोंदिन गिरती जा रही है। बचना असम्भव सा ही है और अन-शन करने की इनकी उत्कट भावना है। फिर भी गुरु महाराज और यहाँ के संघ की सम्मति से ही यह कार्य होना चाहिये। मुख्य २ श्रावकों-श्रीकुशलराजजी- सौभागमलजी कोठारी जयवन्तमलजी, रावतमलजी डागा, अमरचन्दजी खजानची आदि से सलाह करना आवश्यक है। तथा किसी अच्छे वैद्य से भी राय लेना उचित है। तदनुसार सब को आमन्त्रित किया गया। काफी समय तक विचार विमर्श होता रहा। वैद्यजी ने कहा-चेष्टाएं अच्छी नहीं हैं, बच नहीं सकती। श्रावकों ने भी अपनी सम्मति दे दी। सन्थारा करा दिया गया। आस-पास के गांव के लोग सन्थारा वाले साध्वीजी के दर्शनार्थ आने लगे। श्रीमती केशरश्रीजी महाराज को श्रीगणाधीश महोदय ने अन्तिम आराधना करवाई, ज्ञाता-ज्ञात में लगे हुए दोषों का 'मिथ्यादुष्कृत' दिया। सर्व से क्षमा याचना करके श्री नवकारमन्त्र का स्मरण करते हुए समाधि पूर्वक समताभाव की साधना में लीन रह कर शान्तिपूर्वक उन का आत्मा इस नश्वर

शरीर को त्याग कर दिव्य देह धारण करने के लिए कार्त्तिक कृष्ण नवमी के दिन प्रातः काल ही दिव्य लोक को प्रयाण कर गया।

नागौर की देव गुरुभक्त श्रावकमण्डली ने बड़ी धूम-धाम से उन के पवित्र देह का अग्नि संस्कार चन्दन काष्ठ, नारियल, घृत आदि से किया।

श्रीमती केशरश्रीजी महाराज सरल स्वभाव गुरु भक्ति परायण और अत्यन्त विनयवती साध्वी थीं। इनके असामयिक निधन से पूज्यवर्या चरितनायिका आदि को हार्दिक खेद हुआ किन्तु 'जातस्य ध्रुवो मृत्यु' अथवा 'मरणं प्रकृति शरीरिणाम्' वाक्यों का स्मरण करके उन्हों ने सन्तोष धारण किया। निरुपाय थे। दूसरे, जन्म-मरण संयोग वियोग संसार का अटल नियम है। इस में कोई भी अपनी शक्ति से परिवर्तन नहीं कर सकता।

यद्यपि केशरश्रीजी महाराज अभी युवती ही थीं पर कराल काल किसी को भी नहीं छोड़ता। अपनी अपनी आयुस्थिति पूर्ण होने पर सभी जीव शरीर को छोड़ कर दूसरे शरीर को धारण करते हैं। काल के कराल चक्र में बाल युवा और वृद्ध, सभी अपनी अपनी बारी आने पर पिसते चले जाते हैं।

छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा जीव जन्म मरण के इसी चक्र में भ्रमण करता रहता है। जीव के साथ जब तक पुद्गल (जड़) का संयोग है, इस चक्र से बच नहीं सकता। इस संयोग को दूर करने के साधन तप संयम हैं, इनका आचरण ही आत्मा

को मुक्त कर सकता है। जन्म मरण के इस अनवरत चक्र से बचा सकता है। अस्तु।

चातुर्मास के पश्चात् श्रीमती शृंगार श्रीजी महाराज साहब आदि चार को तो फलोधी की ओर विहार करा दिया और आप चार साध्वियों को साथ लेकर कुचेरा पधारे क्यों कि कुचेरा वाले अपने यहां पधारने का आग्रह कर रहे थे।

कुचेरा में आपने अपने अव्यर्थ उपदेशों द्वारा जनता को धर्म मे विशेष स्थिर किया। मन्दिर की सुन्दर व्यवस्था पर सन्तोष व्यक्त किया।

मेरता के अग्रगण्य श्रावक कई वर्षो से आपको मेरता पधारने का आग्रह कर रहे थे। वे समय देख कर अब के कुचेरा में आ पहुँचे और अत्यन्त आग्रह करके आपको मेरता ले गये।

मेरता में आपका खूब धूम-धाम से प्रवेश हुआ। आपका व्याख्यान सुनने जैन जैनतर प्रजा काफी संख्या में एकत्रित होती थी।

आपके व्याख्यान कैसे अद्भुत प्रभावशाली थे। इस को निम्नलिखित घटना भली भांति प्रमाणित करती है।

मेरता में ही रहने वाले श्रीचन्दनमल जी भण्डारी की पौत्री और श्रीदेवीचन्दजी सुराणा की विधवा पत्नी फतेकंवर बाई तथा उनकी अल्प वयस्का पुत्री सौभाग्य कुमारी की भावना

असार संसार के भोगों को नासिकामलवत् त्याग कर भगवान् महावीर के पुनीत पथ का अनुसरण करने की हो गई।

उन्होंने गुरुवर्या महोदया से दीक्षा देने की प्रार्थना की। गुरुवर्या ने फरमाया—भद्रे ऐसी भावना है तो अपने कुटुम्बी जनों से आज्ञा प्राप्त करो।

फतेकंवर बाई ने कहा—मेरे कोई समीपी कुटुम्बीजन तो है नहीं, दूर के रिश्तेदार हैं, उनको आज्ञा की क्या अवश्यकता है। मेरे पीहर वालों की आज्ञा सरलता से मिल जायगी। उस में कोई विशेष विघ्न या रुकावट नहीं होगी, ऐसी मेरी दृढ़ धारणा है।

और तदनुसार फतेकंवर बाई ने अपने पितृपक्ष वालों से आज्ञा भी ले ली। दीक्षा का मुहूर्त फाल्गुन कृष्ण द्वितीया का निश्चित हुआ।

उधर फतेकंवर बाई के श्वसुर पक्ष के कुटुम्बी जनों ने इस में अपना घोर अपमान समझा और उन्होंने राज्य में एक इस आशय की अर्जी देदी कि हमारे कुटुम्ब की एक स्त्री अपनी छोटी कन्या को साथ लेकर दीक्षा ले रही है। मेरता के हाकिम ने एक हुकुम निकाल कर उक्त मुहुर्त पर होने वाली दीक्षा रोक दी।

यह मामला वहाँ से जोधपुर तक पहुंचा फतेकंवर बाई के पितृपक्ष वाले जोधपुर में भी गये। वहाँ बराबर इस केस की सुनवाई हुई न्यायाधीशों ने फतेकंवर बाई के पक्ष में निर्णय देते हुए कहा—

फतेकंवर की दीक्षा उनके खुद के अधिकार में है तथा कन्या की भी वही कानूनी अभिभाविका हैं।

चरितनायिका के रहने का कल्प-दो मास पूर्ण हो चुके थे। अतः वहाँ से विहार कर के वे अजमेर पधार गईं। दोनों विरागिनियाँ माता-पुत्री उन के साथ ही थीं।

अब फतेकवर ने आपसे प्रार्थना की-मेरी दीक्षा लेने की तीव्र भावना है अत. आप यहाँ ही मेरी दीक्षा करा दीजिये।

गुरुवर्या महोदया ने अजमेर के अग्रगण्य श्रावकों श्री गुलाब चन्दजी मंचेती श्री फतेमलजी भड़गतिया श्रीकेशरीमलजी लूणिया आदि को फतेकंवर की भावना बतलाई। उन लोगों ने बड़ी प्रसन्नता से वहां दीक्षा कराना स्वीकृत किया।

उन दिनों प्रसिद्ध फक्कड योगीराज श्री चिदानन्दजी महाराज भी अजमेर मे ही विराजमान थे। उन्हों ने भी इस दीक्षा का हार्दिक समर्थन किया और उत्सवपूर्वक इस कार्य को सम्पन्न करने की प्रेरणा की।

दीक्षा का मुहूर्त विक्रम संवत् १६५० की ज्येष्ठ कृष्ण १२ का निश्चित हुआ। श्री भड़गतियाजी की कोठी पर योगीराज श्रीचिन्दानन्दजी महाराज की अध्यक्षता में विरागिनी फतेकंवर को दीक्षा दी गई। और फतेश्रीजी नाम दिया गया।

रीत्यनुसार दूसरे दिन नवदीक्षिता को साथ लेकर हमारा यह पूज्य साध्वी मण्डल पुष्कर पधार गया। दो दिन वहां

ठहर कर अपनी धर्म देशना से वहां के निवासियों को धर्म में दृढ़ किया।

ब्यावर में धर्मोद्योत

पुष्कर के बाजार में आप का व्याख्यान हो रहा था, सैंकड़ों जैन अजैन तथा अजमेर के भी कितने ही श्रावक श्राविका व्याख्यान श्रवण कर रहे थे। आपका प्रभावशाली और संसार की असारता का दिग्दर्शन कराने वाला प्रवचन चल रहा था।

ब्यावर के कुछ श्रावक भी जो फतेकंवर की दीक्षा देखने आये थे, वहीं उपस्थित थे। उन लोगों ने आपसे ब्यावर पधारने की साग्रह प्रार्थना की। वे बोले-आप एक बार पहले ब्यावर पधारीं थीं किन्तु कुन्थुआजीवों की उत्पत्ति हो जाने से आप हमारे यहां चातुर्मास न रह सकीं और पाली पधार कर वहां चातुर्मास किया था, अबके हम लोगों पर भी कृपा दृष्टि होनी चाहिये। ब्यावर में चातुर्मास करने से हम लोगों को आपश्री के तात्विक व्याख्यान श्रवण करने का सुअवसर प्राप्त होगा। तथा श्राविका वर्ग जो धार्मिक ज्ञान से अनभिज्ञ सा है, उन्हें भी धार्मिक क्रियाएं सीखने की सुविधा मिलेगी। जैन शासन की प्रभावना के अतिरिक्त आप को जन सेवा का लाभ भी होगा; अतः अबके तो आप अवश्य ब्यावर पधारिये।

गुरुवर्य्या ने शान्त भाव से 'वर्त्तमान योग' कहा। इधर अजमेर वाले ब्यावर वालों से कहने लगे-वाह साहब! यह

कैसे हो सकता है। अब के तो गुरुणीजी साहब का चौमासा हम अजमेर में करावेंगे।

ब्यावर वालों ने कहा—हम यहीं ठहरेंगे और सुबह ब्यावर की ओर विहार करायेंगे तथा साथ ही जावेंगे।

अजमेर वालों ने देखा कि ये लोग मानने वाले नहीं हैं। ब्यावर ही ले जायेंगे। तब वे शान्त हो गये।

प्रातः काल विहार हो गया। ब्यावर वाले साथ थे ही, उन्होंने गुरुवर्या से ब्यावर पधारने की सविनय प्रार्थना की। गुरुवर्या ने भी अत्यन्त आग्रह देख कर ब्यावर चलने का निश्चय कर लिया। और ब्यावर की तरफ प्रयाण कर दिया।

मार्ग के ग्रामों में धर्मोपदेश करतीं ब्यावर पधारीं। ब्यावर वालों ने बड़े शानदार ढंग से आपका प्रवेश कराया।

आप वहां पर व्याख्यान में श्रीज्ञाता सूत्र और भावनाधिकार में श्रीवर्द्धमान देशना फरमातीं थीं। आपके व्याख्यान में अन्य सम्प्रदाय के लोग भी आया करते थे! श्रीज्ञाता सूत्र में द्रौपदी का भी आख्यान आता है। 'द्रौपदी जिन प्रतिमा' की पूजा करती थीं' यह वर्णन आया तो एक श्रावक महाशय बोले—वह तो कामदेव की प्रतिमा पूजती थी, जिन प्रतिमा की बात तो हमने कभी सुनी ही नहीं! यह तो आप टीका में लिखी बात कर रही हैं। गुरुवर्या ने गम्भीरता से फरमाया, श्रावकजी! मूल पाठ में भी यही बात है, आपको विश्वास न हो तो पाठ प्रस्तुत है! आप देख सकते

हैं । 'जिन पडिमा' शब्द है कामदेव पड़िमा तो कहीं लिखा ही नहीं है । दूसरे द्रौपदी जिन प्रतिमा के सम्मुख शक्रस्तव से प्रार्थना करती थी, वह शक्रस्तव जिनेश्वरदेव को छोड़ कर अन्य देव के सम्मुख कैसे बोला जा सकता है ? उसमें जितने भी विशेषण हैं वे केवल तीर्थंकरदेव के ही हो सकते हैं ।

वह श्रावकजी सकपका गये और कुछ उत्तर देते बन नहीं पड़ा तो बोले ये पाठ जतियों ने बदल दिये हैं ।

गुरुवर्य्या ने फरमाया-तब तो ये सारे शास्त्र ही आप लोगों को अमान्य होने चाहिये ।

श्रावकजी बोले-हम तो केवल बत्तीस सूत्र ही मानते हैं । ऐसे सूत्र जिनमें जिन प्रतिमा की पूजा आदि का वर्णन हो उन्हें हम नहीं मानते ।

गुरुवर्याने सस्मित उत्तर दिया-भोले भाई । यह ज्ञाता सूत्र है, द्वादशाङ्गों में इसका छट्ठा नम्बर है और आपके मान्य बत्तीस सूत्रों में ही इस की गणना है । यहीं क्यों ! बत्तीसों में ही श्री भगवती सूत्र, श्रीराजप्रश्नीय सूत्र, श्रीसमवायाङ्ग सूत्र, श्रीजीवाभिगमसूत्र, श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र आदि हैं. जिन में स्पष्ट रूप से जिनप्रतिमाओं, सिद्धायतनों, शास्वत जिनायतनों और उन मे होने वाली जिनपूजा भक्ति नृत्यगायन आदि का स्पष्ट वर्णन है । आप लोग उन सूत्रों को मानते हैं, किन्तु उनमें आने वाली बातों को नहीं मानते, यह कैसी सूत्र मान्यता है ? हमारी समझ में नहीं आती ।

इतने में ही एक दूसरे श्रावक महोदय बीच मे ही बोल उठे— हाँ साहब ! सुनते तो हम भी हैं पर यह देवताओं का कर्तव्य है, श्रावकों का नहीं।

गुरुवर्या ने पूछा—देवताओं को इस कर्तव्य का पालन करते पुण्य बन्ध होता है या पाप बन्ध ! जिन भक्ति का फल उन्हें कैसा मिलता है, शुभ या अशुभ ?

श्रावक जी—यह तो हमने कभी पूछा नहीं। परन्तु मन्दिर बनवाने, पूजा आदि करने मे जीव हिंसा होती है और हिंसा में धर्म कैसे हो सकता है ?

गुरुवर्या ने शालीनता से कहा—द्रव्य पूजा में जो हिंसा होती है वह द्रव्य हिंसा है, भाव हिंसा नहीं। इसी प्रकार साधु साध्वी विहार करते हैं, नदी उतरते हैं, उसमें द्रव्य हिंसा तो है परन्तु भाव हिंसा नहीं है।

श्रावक जी झट से बोले—नदी उतरने की तो भगवान की आज्ञा है। पूजा करने की आज्ञा कहां दी है।

गुरुवर्या ने मृदुता से कहा—नदी उतरने की जैसे साधु साध्वी को आज्ञा है वैसे ही श्रावक श्राविका को पूजा करने की आज्ञा है। उपासक दशांग सूत्र में श्रावकों के अधिकार में आता है कि अन्य तीर्थी द्वारा गृहीत चैत्य में वन्दना नमस्कार नहीं करना इत्यादि वर्णन स्पष्ट रूप से आता है। और सूत्र, पुस्तकें आदि छपाने में भी जीव हिंसा तो होती ही है फिर भी लाभ

का कारण होने से छपाते ही हो। ऐसे ही भगवान् जिनेश्वर की पूजा भी भाव शुद्धि हेतु होने से सुज्ञ पुरुषों द्वारा आचरणीय है।

शास्त्रों में चारनिक्षेप, सप्तनय, सप्तभंगी चार प्रमाण जैन दर्शन को समझाने के लिए तथा वस्तु के स्वभाव का ज्ञान कराने के लिए बताये गये हैं। जिस प्रकार नाम निक्षेप मान्य है, उसी प्रकार स्थापना निक्षेप भी पूजनीय, वन्दनीय और माननीय है। समवसरण में स्वयं तीर्थंकर भगवान् पूर्वाभिमुख विराजते हैं। तीन दिशाओं में तो देव निर्मित स्थापना जिन ही होते हैं। वे बिम्ब सर्व परिषद् द्वारा वन्दनीय पूजनीय हैं।

उक्त श्रावक जी विचारमग्न हो गये और थोड़ी देर बाद बोले—आप फरमाती हैं सो सत्य है, मैं इतने दिन ये बातें नहीं जानता था। अब अवश्य दर्शन पूजन किया करूंगा। और उन श्रावक जी ने खड़े होकर आपसे दर्शन का नियम लिया।

इस प्रकार कई श्रावकों को वहां आपने शुद्ध सनातन जैन धर्म की शिक्षा दीक्षा से उनकी गलत धारणाओं को मिटा कर उन्हें सच्चे जैन धर्म का अनुयायी बनाया।

आपकी विद्वता से प्रभावित होकर कई अन्य सम्प्रदाय वाले आपके व्याख्यान में आते और आपकी मधुरवाणी की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा किया करते थे।

कई श्रावक श्राविका और बालक बालिकाएं धार्मिक क्रियाएं

चैत्यवन्दन, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि सीखने आया करते थे।

आपके प्रभावशाली उपदेश से वहां पूजाएं, स्वधर्मीवात्सल्य अट्ठाई महोत्सव आदि कई धार्मिक कार्य हुए।

उधर साध्वी मण्डल ने भारी तपस्याएं कीं। श्रीमती धनश्रीजी महाराज ने ३१ उपवास, श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज ने ७ उपवास और श्रीमती फतेश्रीजी महाराज ने पांच पांच उपवास इक्कीस वार किये अर्थात् पंचोले २१ किये। श्रावक श्राविकाओं मे भी अभूतपूर्व तपस्याएं हुईं।

कितने ही दम्पतियों ने आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत धारण किया। उक्त तपस्याओं और व्रतों के उपलक्ष में तत्रस्थ जैन जनता ने अष्टाह्मिकोत्सव तथा प्रभावनाएं करके अपने न्यायोपार्जित द्रव्य-धन का सदुपयोग किया। इस उत्सव पर समीपस्थ ग्रामों के निवासी भी ब्यावर मे आये थे।

चार मास तक धार्मिक कार्यों की धूमधाम रही। इस प्रकार विक्रम संवत् १६५० का चातुर्मास वड़े आनन्दपूर्वक व्यतीत हुआ।

वहाँ के लोगों ने मौनैकादशी तक विराजने की साग्रह विनति की किन्तु आपने फरमाया-आप लोगों की विनती युक्ति-युक्त है। किन्तु आस-पास के गांवों की जनता को भी लाभ मिलना चाहिये। साधु जीवन की पवित्रता के लिए विहार करते रहना ही

श्रेयस्कर है। अतः आप लोगों को हमारी संयम रक्षा का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

ब्यावर के श्रावकों ने सोचा-आपके विचार कितने उच्च हैं, धन्य है ऐसी ही जन कल्याण की भावना के कारण आप श्रीमतीजी इतनी प्रसिद्ध हुई हैं, इन्हें रोकना उचित नहीं। वे बोले आपके आचार-विचार अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। हम आपको विशेष नहीं रोकेंगे किन्तु यहाँ कुछ श्राविकाओं की भावना कल्याणक-तप करने की है उस तप को ग्रहण करा कर आप विहार करें तो अत्युत्तम हो।

तदनुसार आपने मार्ग शीर्ष कृष्ण पञ्चमी को उक्त तप ग्रहण करा कर षष्ठी के दिन वहाँ से विहार कर दिया।

मार्ग के ग्रामों में धर्म प्रचार करतीं आप पीपलिया पधारीं और वहाँ के लोगों का अत्यन्त आग्रह होने से सात दिन ठहर कर धर्म देशना दी, जिस से वहाँ के निवासियों ने धर्म का स्वरूप समझा और श्रावकोचित व्रत-नियमादि धारण किये।

वहाँ से आपने सोजत में पदार्पण किया। सोजत में आपके व्याख्यानों की धूम मच गई। सैंकड़ों नरनारी व्याख्यान में उपस्थित होने लगे। आप की मधुर वाणी की सभी प्रशंसा करते हुए चातुर्मास करने की प्रार्थना करने लगे। चातुर्मास अभी काफी दूर था, अतः आपने वर्तमान, योग कह कर सबको शान्त कर दिया

श्रावकों ने कुछ दिन ठहर कर ही धार्मिक जागृति करने की प्रार्थना की। इस प्रार्थना को स्वीकृत करना ही पड़ा और १५ दिन

तक यहाँ रह कर आपने धर्म की ज्योति जगा दी। वहाँ पर आपने व्याख्यान में 'गौतम पृच्छा' नामक ग्रन्थ पर विवेचन आरम्भ किया। जिसे सुन कर कई व्यक्तियों ने आलोचनातप* लिया।

'गोतम पृच्छा' एक छोटा सा ग्रन्थ है और इस में भगवान् गौतमगणधर ने भगवान् महावीर प्रभु से अनेक प्रश्न किये हैं यथ-किस पाप के फलस्वरूप जीव अन्धा, काना, लूला, वहरा, गूंगा आदि होता है? भगवान् ने इनके उत्तर दिये हैं। इस मे उदाहरण स्वरूप बोधदायक कई कथाएं भी हैं।

आपकी वैराग्य रसवाहिनी प्रवचन सरिता में अवगाहन कर के एक लघुकर्मी श्राविका–मुहता अमृतराज जी की विधवा धर्म पत्नी महताव बाई का हृदय स्वच्छ हो गया और संयम लेने को प्रस्तुत हो गई किन्तु चरितनायिका किसी को यों एकदम दीक्षा नहीं देती थीं। दीक्षार्थिनी को कुछ दिन अपने साथ रख कर उसकी प्रकृति-स्वभाव आदि जान लेने पर, संयम के योग्य विधिविधान सीख लेने पर ही-वे भागवती दीक्षा देती थीं। केवल जमात बढ़ाना ही उनका ध्येय नहीं था। वे चाहती थीं कि अपने तप त्याग संयम व ज्ञान से स्वपर श्रेय साधन करने वाली आत्माएं ही इस पुनीत वेश को धारण करें।

वाचकवृन्द! आप पढ़ते आ रहे हैं कि चरितनायिका का शिष्या समूह तप-त्याग में कितना अग्रसर रहता आ रहा है। यदि

* लगे हुए दोषों के प्रायश्चित स्वरूप आलोचना तप किया जाता है।

हम इन्हें तपस्विनियों का समूह कहें तो भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी। ये सब प्रायः सम्पन्न व सम्भ्रात घरों की कन्याएं और महिलाएं हैं। किसी धनादि के अभाव में मूंड मुंडा कर केवल उदरपूर्त्ति करना इनका लक्ष्य नहीं। अपितु आत्मकल्याण की साधना में लीन रह कर मानव जन्म सफल करते हुए मुक्ति मार्ग में अग्रसर होना इन का ध्येय है। अस्तु।

महताब बाई को आपने कहा-तुम्हारी भावना अत्युत्तम है, किन्तु अभी हमारे साथ रह कर तुम साधु जीवन के योग्य अपनी चर्या रक्खो। उचित समय आने पर हम दीक्षा दे सकेंगी और अपने सम्बन्धियों से आज्ञा लेना भी अत्यन्त आवश्यक है। अतः आज्ञा लेकर ही हमारे साथ चल सकती हो अथवा जब आज्ञा मिले तब हमारे पास आना उचित है।

विरागिनी महताब बाई ने कहा-महासतीजी, जैसी आप श्रीमतीजी की आज्ञा होगी, वैसा ही करूंगी।

गुरुवर्य्या ने उन्हें आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी भावना सफल हो। यहां से आप पाली पधारीं। कुछ दिन वहां ठहर कर धर्म प्रचार किया। माघ शुक्ला सप्तमी को वहां से विहार करके मरुधर की राजधानी जोधपुर पधारीं।

जोधपुर भी ओसवालों का केन्द्र है। राजस्थान के सब नगरों की अपेक्षा यहां श्वेताम्बरों की आबादी अत्यधिक है। सभी सम्प्रदाय वाले काफी संख्या में बसते हैं। कुछ राज्य कर्मचारी

वैष्णव धर्म के अनुयायी भी हैं, जो अपने महाप्रभु राजाओं के कारण जैन धर्म से विमुख बन गये हैं

जोधपुर से बाहर दीवान पूनमचंद जी मुहता का बनवाया हुआ भगवान् पार्श्वनाथ का मन्दिर है जो मुहताजी के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है।

वहां पर आप सात दिन तक विराजीं और व्याख्यान दिया। जोधपुर से प्रतिदिन सैंकड़ों की संख्या में जनता मुहताजी के मन्दिर में आकर आपके अनुपम व्याख्यानों का लाभ लेती थीं। वहाँ दिन भर मेला सा लगा रहता था। आपके उपदेशों से प्रभावित होकर केवल सात दिन में ही एक बाई-मुहता पंचानदासजी की धर्मपत्नी की भावना असार संसार को त्याग कर भागवती दीक्षा ग्रहण करने की हो गई। उन्होंने आपको जोधपुर मे ही विराज कर दीक्षा देने का आग्रह किया किन्तु आपने इतनी शीघ्रता से दीक्षित करना अस्वीकार कर दिया। दो महीने वहाँ ठहरने की स्वीकृति बड़ी कठिनता से दी।

जोधपुर में धूम-धाम से आपका प्रवेश हुआ। श्रावक श्राविकाओं से घिरी हुई आप केशरियानाथ जी के मन्दिर के पास की धर्मशाला में पधारीं। थोड़ी देर देशना देकर आपने उपस्थित जनों को मांगलिक सुनाया।

आप दो महीने वहाँ विराजीं। प्रतिदिन आपके व्याख्यान होने लगे और सारे शहर में आपके व्याख्यानों की चर्चा होने लगी। बड़े २ राज्याधिकारी आपका प्रवचन सुनने आते थे

और मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हुए आपकी व्याख्यान शैली की मधुरता और तात्विक वार्त्तालाप के विषय में अपनी सद्भावनाएं व्यक्त करते थे।

चातुर्मास के लिए अत्यन्त आग्रह होने पर भी फलोधी पहुंचने की शीघ्रता के कारण आप उनकी आग्रहपूर्ण विनति स्वीकृत न कर सकीं।

फलोधी में आपकी पूज्य गुरुवर्य्याएं—श्रीमती उद्योतश्रीजी महाराज साहबा, श्रीमती लक्ष्मी श्रीजी महाराज साहबा व श्रीमती मग्नश्रीजी महाराज साहबा विराजमान थीं। उनकी आज्ञा शीघ्र फलोधी पहुंचने की थी। अतः आपने वैशाख कृष्ण पक्ष मे जोधपुर से फलोधी की ओर प्रयाण कर दिया।

विरागिनी महताब बाई जोधपुर वाली आपके साथ ही पैदल जाने को उद्यत हो गईं किन्तु आपने फरमाया—गृहस्थिनियों को साथ रखने से हमें चारित्र में दूषण लगने का भय रहता है। अतः तुम को साथ रखना ठीक नहीं। तुम्हें फलोधी आना है तो आ सकती हो।

उस युग में हमारा ये पूज्य साध्वी मण्डल गृहस्थों को साथ नहीं रखता था। यहां तक कि मार्गदर्शक भी साथ रखने की आवश्यकता अनुभव नहीं करता था।

जोधपुर से फलोधी का मार्ग अत्यन्त कष्टप्रद है; और अभी तो ग्रीष्म ऋतु थी। इस ऋतु में विहार और वह भी मरुभूमि में! कितना कष्टकर है, भुक्तभोगी ही जान सकते हैं। साढ़े आठ

बजे तो धूप में तप कर बालूरेत भाड़ जैसी हो जाती है। सूर्योदय हुए विहार करना और पांच कोस मार्ग तय करके अगले गांव में पहुँचना पड़ता है। बीच में झोपड़े तो दूर रहे, पेड़ का नामो-निशान तक नहीं। चलने वाले साधु साध्वियों के पांव टखने तक धूल में धंस जाते हैं। छाले पड़ जाना तो साधारण बात है।

हमारा यह साध्वी मण्डल तिंवरी से ओसियां की ओर प्रयाण कर रहा था। छः कोश लम्बा रास्ता ! मार्ग में केवल एक स्थान पर जाटों के दो चार झोंपड़े बने हुए हैं। चलते २ पिपासा से कण्ठ सूखने लग गये। ऊपर प्रचण्ड सूर्य का ताप और नीचे तपी हुई बालू ! कठिनता से उक्त झोंपड़ों के पास—जो दाना माना की ढाणी के नाम से प्रसिद्ध है, पहुंचा। वहां के निवासियों से स्थान की याचना की। वे बोले—महाराज झोंपड़े तो खाली नहीं है, हाँ रात में बकरियों को बन्द करने का ढंका हुआ स्थान है वहां ठहरना चाहें तो ठहर सकती हैं। हमारे यहां रूखी बाजरे की रोटियाँ और छाछ मिल जायेगी। हम गरीबों के पास और वस्तुएं तो कहां से आ सकती हैं।

गुरुवर्या ने विचार किया—आगे ओसियां तक तो अब पहुँचना असंभव सा हो है; क्योंकि धरती ऐसी तप रही है कि चार कदम भी चल सकना कठिन है। आज तो यहीं की स्पर्शना दीखती है।

वे किसानों की आज्ञा लेकर उस झोंपड़े में ठहर गईं। झोंपड़े में कच्चा आंगन भी न था। कारण कि वहां रात में भेड़

बकरियां रक्खी जाती थीं। मींगणियों का ढेर पड़ा था। मूत्र की गन्ध आ रही थी। उसी में डेरा डालना पड़ा। बीजों और बाजरे की रोटी तथा छाछ लेकर संयम यात्रा का निर्वाह किया। थोड़ा गरम पानी भी मिल गया जो एक पात्र में हांडियां धोने के लिए रक्खा था। साधु जीवन की यही तो विशेष कठिनाइयां हैं और इसीलिए साधुत्व की साधना में साधारण व्यक्ति नहीं लग सकता।

वहां लोगों को और स्त्रियों को आपने कुव्यसनों—तम्बाकू, अफीम आदि की हानियां समझाई जिससे कइयों ने त्याग कर दिया।

स्त्रियों को अहिंसा की महत्ता और हिंसा से होने वाले दुःखों का स्वरूप बतला कर जूयें न मारने की प्रतिज्ञा करवाई।

दूसरे दिन विहार करके ओसियां आदि ग्रामों में एक दिन एक रात्रि निवास करती हुई आप लोहावट पहुँचीं और वहां के श्रावकों के भक्ति भरे आग्रह से कुछ दिन वहां विराज कर अपने मधुर प्रवचनों से धर्म भावना जाग्रत की। श्राविकाओं को धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने का उपदेश दिया और कई बालक बालिकाओं को नित्योपयोगी विधि विधान सिखाये।

फलोधी के कितने ही श्रावक श्राविका आपके दर्शनार्थ तथा चातुर्मास की विनति करने लोहावट आ पहुंचे। उधर लोहावट वालों का भी आग्रह कम नहीं था; परन्तु गुरुवर्या उद्योतश्रीजी

महाराज साहिबा की आज्ञा फलोधी आने की थी। अतः आपने उन्हें 'फिर कभी स्पर्शना होगी तो आना होगा' ऐसा आश्वासन देकर शान्त कर दिया और फलोधी पधार गईं।

फलोधी में पुनः पदार्पण

चरित्तनायिका के फलोधी में पधारने से वहां के निवासियों के मन मयूर नृत्य करने लगे। बड़ी धूमधाम से आपका प्रवेश हुआ और आपने गुरुवर्याओं के दर्शन करके अपने आप को धन्य और कृतार्थ अनुभव किया। गुरुवर्य्याओं ने भी आपकी शासन सेवा पर अत्यन्त प्रसन्नता व्यक्त करते हुए अनेक आशीर्वादरूपी जल विन्दुओं से आपको अभिषिक्त किया। ऐसी विनयवती प्रभावशालिनी शिष्या पर किस गुरुवर्या को गौरव न होता ?

इनके उपदेशों से गुरुवर्या महोदया के शिष्या परिवार में आशातीत वृद्धि होती जा रही थी। जहां भी चातुर्मास किये, धर्म की विजय दुन्दुभि निनादित करते हुए जैन शासन की ध्वजा को फहराया था। इन कारणों से वात्सल्यपूर्ण, हिताभिलाषिणी, गुरुवर्यायें आनन्दित होती थीं।

विरागिनी महताव वाई जोधपुर से आज्ञा लेकर फलोधी आ पहुँचीं। वि० सं० १६५१ की आषाढ़ शुक्ला ६ के दिन शुभ मुहूर्त में उन्हें भागवती दीक्षा के संस्कार से संस्कृत किया गया। 'महतावश्रीजी महाराज' के अभिधान से वे सुशोभित हुईं।

खीचन्द से श्रावक श्राविका वर्ग दीक्षा महोत्सव पर आया हुआ था। आपको खीचन्द शहर पावन करने की प्रार्थना की। आपने अपना विचार फलोधी में गुरुवर्य्या महोदया की सेवा में रहने का व्यक्त किया। वे गुरुवर्या उद्योतश्रीजी महाराज की सेवा में पहुंचे। उन्होंने श्रीमती शृंगारश्रीजी महाराज को चार साध्वियों के साथ खीचन्द भेजने का निर्णय करके खीचन्द वालों की आशा पूर्ण की।

खीचन्द में नवदीक्षिता महतावश्री जी महाराज ने मासक्षमण का उत्कृष्ट तप किया जिससे धर्मोद्योत हुआ।

इधर हमारी चरितनायिका ने फलोधी रह कर गुरु सेवा के अनुपम लाभ के साथ ही मध्याह्न में श्रावक श्राविकाओं के मध्य नवरसमय 'श्री जयानन्द केवली रास' का व्याख्यान सुनाया। प्रातःकाल का व्याख्यान 'जैनन्यायाम्भोनिधि श्रीमद् विजयानन्द सूरि (आत्मारामजी) के शिष्य श्री हंसविजय जी महाराज फरमाते थे।

फलोधी में अन्य शहरों जैसा गच्छाग्रह नहीं था, न अब है। सभी गच्छों के साधु साध्वियों के प्रति सब लोगों का पूज्य भाव रहा है और आज भी अधिक पक्षपात नहीं है।

राजस्थान के निवासी स्वभावतः ही धर्म प्रेमी और गुणग्राही होते हैं। अपने अपने सम्प्रदायों की परम्परा का पालन करते हुए गुणीजनों के स्वागत सत्कार और सम्मान में अग्रसर रहते आये हैं। अस्तु!

चरितनायिका ने इस चातुर्मास में भी अट्ठाई तप किया और श्रीमती धनश्रीजी महाराज ने १६ उपवास किये। अन्य साध्वीजी महाराजों ने भी शक्त्यनुसार तप किया।

इधर श्रावक श्राविकाओं में भी मासक्षमण अट्ठाइयाँ पंचरंगी आदि तपस्याएं अत्यधिक होने से फलोधी तपोवन सा प्रतीत होने लगा।

समय मिलने पर श्रावकगण से तत्व चर्चा करने में तल्लीन हो जाना हमारी चरितनायिका पूज्येश्वरी का दैनिक कार्य-क्रम था। दिन में विश्राम का तो प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि शक्ति-शाली साधु साध्वी को दिवा निद्रा का शास्त्रों में निषेध ही है। कभी कभी तो आहार पानी करने के समय में व्यतिक्रम हो जाता था। पौरुषी का प्रत्याख्यान (दिन का प्रथम प्रहर) प्राय. नित्य ही किया करती थीं। तप के लिए ही साधु जीवन है। मुनि का अपर नाम तपोधन उनकी चर्या से स्पष्ट दृष्टिगोचर और सार्थक हो रहा था। आप सचमुच ही साकार तपोमूर्ति थीं।

इसी चातुर्मास के पश्चात् फलोधी के अग्रगण्य सेठ फूलचन्दजी गुलेछा ने समवसरण की रचना करवा कर अष्टा-ह्निकोत्सव करके अपनी न्यायोपार्जित चञ्चला लक्ष्मी का सदुपयोग किया और पुण्योपार्जन के साथ-साथ लक्ष्मी को स्थिर कर लिया, ऐसा भान होने लगा। अर्थात् उनकी लक्ष्मी बहुत समय तक रहने का विचार करने लगी क्योंकि लक्ष्मी भाग्यशालियों को छोड़ कर दूसरे के यहाँ जाना पसन्द नहीं करती।

इसी महोत्सव के अवसर पर फलोधी निवासी स्व० मगनमलजी वैद् की धर्मपत्नी धूली बाई ने मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा के दिन शुभक्षण में भागवती प्रव्रज्या अंगीकार की और चरितनायिका की शिष्या बनीं। उज्ज्वलश्रीजी नाम रखा गया।

ये कई वर्षों से दीक्षा लेने की अभिलाषिणी थीं, और आज्ञा प्राप्त न होने के कारण त्यागमय जीवन यापन कर रही थीं। अब के चरितनायिका के उपदेशों से प्रभावित होकर सम्बन्धियों ने आज्ञा दे दी और इनकी चिरवाञ्छा सफल हो गई।

इधर श्रीमती मग्नश्रीजी महाराज साहिबा ने अभी तक जैसलमेर की यात्रा नहीं की थी और उनका विचार अबके इस तीर्थ की यात्रा करने का हुआ। उन्होंने अपनी भावना पूज्य गुरुवर्याओं के सम्मुख निवेदन की और उन से आज्ञा मिल जाने पर चरितनायिका की भी साथ चलने की भावना हो गई।

गिरासर से चरितनायिका की माताजी एवं भाई चुन्नीलालजी आदि तथा नागौर से आई हुई जवाहर बाई आदि श्राविकाएं और फलोधी के भी कई श्रावक श्राविकाएं इस यात्रा के लिए प्रस्तुत हो गये।

माघ शुक्ला पूर्णिमा को इस संघ ने फलोधी से प्रस्थान कर दिया और क्रमशः प्रयाण करता हुआ जैसलमेर पहुंचा। शहर के मन्दिरों के दर्शन करके दूसरे दिन श्री लोद्रवपुर में भगवान् श्री पार्श्वनाथ के अद्भुत चमत्कारी बिम्ब के दर्शन करके अत्यन्त प्रमुदित

होते हुए भक्तिपूर्ण काव्यों से स्तवना की और मानव जन्म को सार्थक किया।

श्री लोद्रवपुर का यह मन्दिर अत्यन्त प्राचीन है। भाग्यशाली थीरूशाह भनशाली को किसी समय एक ग्राम वासिनी गोपिका वाला द्वारा लाई हुई चित्रावल्लि सम्प्राप्त हुई और उन्होंने इसके प्रभाव से व्यापार मे करोड़ों रुपया उपार्जन किया। सद्गुरुओं के उपदेश से उन्होंने लोद्रवपुर में भगवान् श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ का कलापूर्ण और मनोहर मन्दिर निर्माण करा कर लक्ष्मी का सदुपयोग करके महान् पुण्यार्ज्जन किया और उसको मूर्तिमान् रूप दे दिया। जो आज भी उनकी कीर्ति की अमर गाथा अपनी विशालता के द्वारा गा रहा है।

इस तीर्थ की यात्रा करके हमारी चरितनायिका अत्यन्त प्रभावित हुईं और वीतरागता के इस प्रत्यक्ष प्रतीक को आत्म-दर्शन का प्रधान हेतु मानते हुए कहा—सचमुच ही भगवान की इस वीतराग मुद्रा के दर्शन से वीतरागभाव प्राप्त करने की प्रेरणा मिलती है। प्रतिमा को पत्थर कहने वाले लोग स्वयं ही कलानभिज्ञ हैं और अपनी जड़ता का प्रदर्शन करते हैं। आपकी पुण्य प्रेरणा से प्रेरित हो वहां पूजा स्वामिवात्सल्य आदि द्वारा गृहस्थ यात्रियों ने भी अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग करके उदारता का परिचय देते हुए पुण्यबन्ध किया।

अमरसर ब्रह्मसर आदि की यात्रा करके यह यात्री संघ

जैसलमेर आ गया और किले पर बने हुए नव मन्दिरों के दर्शन किये ।

किले पर बने हुए मन्दिरों की कला का वर्णन करना सूर्य को दीपक दिखाने जैसा है। दर्शन करके ही वहाँ की कला की कमनीयता और सूक्ष्मता का ज्ञान भली भांति किया जा सकता है। कोई कलामर्मज्ञ ही इनका मूल्यांकन कर सकता है। साधारण जनता तो भक्ति से दर्शन पूजन करके ही अपने आपको कृत कृत्य मान कर सन्तुष्ट हो जाती है।

वहां के श्रावकों ने जैसलमेर विराजने की बहुत प्रार्थना की। किन्तु फलोधी निवासिनी जवाहर बाई का विचार श्रीशत्रुञ्जय महातीर्थ की यात्रार्थ संघ ले जाने का था और आपको भी साथ जाना था, अतः आपने रहना स्वीकृत नहीं किया। फलोधी की ओर विहार कर दिया।



श्री सिद्धाचल का संघ

यद् भक्तेः फल मर्हदादिपदवी मुख्यं कृपेः सस्यव,
च्चक्रित्वं त्रिदशेन्द्रतादितृणवत् प्रासंगिकं गीयते ।
शक्ति यन्महिमस्तुतौ न दधते वाचोऽपि वाचस्पतेः
संघः सोऽघहरः पुनातु चरणन्यासैः सतां मन्दिरम ॥

(सूक्तमुक्तावलि)

अर्थ —जिस संघ की भक्ति का मुख्य फल कृपि के मुख्य फल अनाज की भांति मुक्ति है। चक्रवर्त्तित्व, इन्द्रत्व, राज्यऐश्वर्य आदि तो तृण के समान केवल प्रासंगिक फल कहलाते हैं। जिस की महिमा को वर्णन करने की शक्ति वृहस्पति के वचन में भी नहीं है. वह सर्व पापों का नाश करने वाला साधु साध्वी श्रावक श्राविका रूप चतुर्विध संघ अपने चरण न्यासों से सत्पुरुषों के भवनों को पवित्र करे।

जैसलमेर की यात्रा करके हमारी पूज्यवर्या चरितनायिका गुरुवर्य्या आदि साध्वी मंडल के साथ फलोधी लौट आईं ऐसा हम पूर्वपरिच्छेद में वर्णन कर चुके हैं।

आप उपाश्रय में बैठी हुई स्वाध्याय में लीन थीं कि खीचन्द के प्रसिद्ध सेठ नथमल जी गुलेछा जो उस समय ग्वालियर नरेश

के कोषाध्यक्ष थे, वे आजकल खीचन्द में आये हुए थे, आपकी सेवा में उपस्थित हुए।

"मत्थएण वन्दामि" को ध्वनि से सारा उपाश्रय गूंज उठा। सस्मित मुख मुद्रा से निःसृत "धर्मलाभ" भी उतना ही मधुर था। वन्दना सुखपृच्छा करके उक्त सेठ साहब ने विनय पूर्वक खीचन्द पधारने की विनति की।

आपने फरमाया—भावना तो है स्पर्शना हुई तो अवश्य अवसर देखेंगे।

उक्त सेठ जी ने कहा—ऐसा नहीं, कल ही विहार करके खीचन्द पधारिये। क्योंकि मेरी बहिन जवाहर बाई का विचार सिद्धाचल की यात्रार्थ संघ ले जाने का है। अतः आपको भी वे संघ में साथ पधारने का आग्रह करती हैं।

श्रीमती श्रृंगारश्रीजी महाराज आदि का गत चातुर्मास खीचन्द था। यह पाठकजनों को ज्ञात ही है। उन्होंने जवाहर बाई की संघ ले जाने की भावना जागृत की। तदनुसार आपको भी विनती करने उक्त सेठ साहब पधारे थे।

"गुरुवर्य्या महोदया से प्रार्थना करिये। उनकी आज्ञा हुई तो मुझे आने में एतराज नहीं है' गुरुवर्य्या ने गुरु भक्ति प्रदर्शित करते हुए कहा !

गुरुवर्य्या की सेवा में पहुंच कर सेठ साहब ने अपनी अभिलाषा व्यक्त की। समयज्ञ गुरुवर्य्या महोदय ने कहा–हम भी

संघ में साथ चलतीं पर अब शरीर इस योग्य नहीं रहा। हां पुण्यश्रीजी को अवश्य भेजने की भावना है।

गुरुवर्य्या महानुभावा की आज्ञा लेकर कुछ साध्वियों के साथ आप खीचन्द पधार गईं।

जवाहर वाई अत्यन्त हर्षित होकर खीचन्द संघ के साथ आपके स्वागतार्थ सम्मुख आईं और अपने भाग्य की प्रशंसा करती हुईं साथ ही चलने लगी।

उपाश्रय में पहुँच कर चरितनायिका ने देशना में संघ यात्रा के महत्व पर प्रकाश डाला और मांगलिक सुनाकर तत्रस्थजनों को कृत्तार्थ किया।

संघ यात्रा की तैयारियां जोर शोर से होने लगी। पूज्य मुनिराजों को भी साथ में पधारने की विनति की जो स्वीकृत कर ली गई।

६ साध्वियों के साथ गुरुवर्य्या महोदया तथा अनुमानतः डेढ़ सौ यात्रियों का यह संघ विक्रम संवत् १६५१ की चैत्र कृष्णा एकादशी के दिन शुभ मुहूर्त्त में खीचन्द से प्रस्थान करके फलोधी आया। और क्रमशः प्रयाण करता हुआ ओसियां पहुँचा। ओसियां मे भगवान् महावीर प्रभु का विशाल और नयनाभिराम मन्दिर बना हुआ है। भगवान् वर्द्धमान महाप्रभु की वालूरेत की प्रतिमा सोने के लेपवाली अत्यन्त मनोहर और चमत्कारी है। संघ नायिका जवाहर वाई ने यहां पूजा करवाई और एक

मनोमोहक रत्नहार भगवान् के कण्ठ में धारण करवा कर महान् पुण्य संचित किया। भोजनादि की सम्पूर्ण व्यवस्था भी इन्हीं की ओर से थी।

सारा संघ पैदल ही छहरी पालता चलता था। हां अशक्त व्यक्तियों के लिए वाहन का भी प्रबन्ध था। छहरीपालन किसे कहते है? इसका संक्षिप्त वर्णन उचित समझ कर यहां दिया जा रहा है।

१. एक वक्त भोजन करना अर्थात् एकाशन करना।
२. सचित भक्षण त्याग।
३. पैदल चलना–जूते नहीं पहनना।
४. भूमिशयन–पलंग आदि पर नहीं सोना।
५. सम्यक्त्व व्रत का पालन, मिथ्यात्वी देवपूजा आदि का परिहार।
६. ब्रह्मचर्य का पूर्णतः पालन करना।

यह संघ क्रमशः चलता हुआ जोधपुर पहुँचा। जोधपुर संघ ने भी भक्तिभावपूर्ण स्वागत करके लाभ लिया। तत्रस्थ मन्दिर में पूजा करवा कर और साधर्मियों की भक्ति में संघनेत्रीने मोदक की प्रभावना की। कुछ श्रावक श्राविकाओं की भावना संघ के साथ यात्रा करने की हुई। उन्हें सहर्ष साथ ले लिया गया।

वहां से रवाना होकर ग्राम-ग्राम में एक एक दिन रात्रि ठहरता हुआ यह संघ पाली पहुंचा।

मार्ग के प्रत्येक गांव में चरितनायिका का व्याख्यान होता। ग्रामवासी जन भी आपके व्याख्यान सुनने एकत्र हो जाया करते थे। आप उनको सरल भाषा मे पुण्य पाप का स्वरूप समझाकर इन्हें सदाचार की प्रवृत्ति रखने की प्रेरणा दिया करती थीं। भांग, तम्बाकू गांजा, चरस, शराब आदि से होने वाली स्वास्थ्य, धन और धर्म की हानि का वर्णन करती थीं। इससे कितने ही भद्र और धर्मभीरु सरल ग्रामीण जन उक्त हानिकारक व्यसनों का त्याग कर देते और आपके परम भक्त बन कर अपने घर भोजनादि देने को निमन्त्रित करते थे। आप भी उनकी भावना को सफल बनाने उनके घर से ग्राम्य—सादा भोजन लाकर काम मे ले लिया करती थीं।

पाली में भी संघ का अच्छा स्वागत सत्कार हुआ। संघ नायिका भी भंडार वृद्धि, पूजा, प्रभावना आदि करके यश और पुण्य से लाभान्वित हुई।

पाली से रवाना होकर यह संघ ग्रामों में ठहरता पूजा प्रभावनादि धार्मिक कार्य करता सिरोही से ३ कोश पूर्व के ग्राम में पहुँचा।

सिरोही वालों को समाचार ज्ञात हो गये थे कि फलोधी से संघ आ रहा है। उन्होंने अपने यहां संघ के स्वागतार्थ खूब तैयारियां कर रक्खी थीं। बहुत से व्यक्ति संघ जिस ग्राम में ठहरा हुआ था वहीं आ पहुँचे। गाजे बाजे सहित खूब धूम-धाम से

सिरोही में संघ का प्रवेश कराया। भोजन निवास आदि की सर्व व्यवस्था सिरोही संघ की ओर से सुन्दरतम थी। शहर के चतुर्दशक मन्दिरों के दर्शन करता हुआ निवास स्थान पर पहुँचा। संघनेत्री ने वहां अपनी ओर से सेर २ भर के मोदक की प्रभावना की। मन्दिरों में पूजाएँ करवा कर भगवान् की प्रतिमाओं को- किसी प्रतिमा को मुकुट से, किसी को कुण्डलों से, किसी को केयूर से किसी को हार आदि अलंकारों से अलंकृत किया। किसी मन्दिर में पूजा योग्य कलश, कटोरी, भृंगार आदि पूजोपकरण चढ़ा कर पुण्यसञ्चित किया।

वहां से प्रस्थान करके यह संघ आबूजी की यात्रा करते हुए अचलगढ़ में पहुँचा। इन तीर्थों की यात्रा से अपने जीवन को कृत-कृत्य करते हुए जीरावला ग्राम में भगवान् पार्श्वनाथ के दर्शन किये। अविच्छिन्न प्रयाण करता हुआ यह संघ पालनपुर पहुंचा। संघनायिका जवाहर बाई ने वहां के मन्दिरों में राजप्रश्नीय सूत्र वर्णित सतरह भेदी पूजा करवाई और वहाँ के संघ को साधर्मी-वात्सल्य करके भोजन कराया।

श्रीमती झवेरश्रीजी महाराज आदि तीन साध्वीजी भी यहां आकर यात्रार्थ सम्मिलित हो गईं। गुरुवर्या के दर्शन करके अत्यन्त आनन्दित होते हुए जीवन को सफल माना।

वहां से प्रयाण करता हुआ संघ मेहशाना पहुँचा। मेहशाना के प्रसिद्ध अध्यात्म प्रेमी श्रावक सूरचन्द भाई आपके दर्शनार्थ

आये और आपसे तत्वचर्चा करके वड़े आनन्दित हुए। श्री सूरचन्द भाई आदि श्रावकों के अत्यन्त आग्रह से संघ सात दिन मेहसाने में ठहरा। एक दिन तत्रस्थ संघ ने साधर्मी वात्सल्य किया और छः दिन श्राविका शिरोमणि श्रीमती जवाहर बाई ने महसाना संघ को भोजन कराया।

महसाना से यह संघ भोयणी तीर्थ की यात्रार्थ रवाना हुआ। आन्तरिक रिपु विजेता भगवान मल्लिनाथ के दर्शन करके वहां भी पूजा प्रभावना करता हुआ यह संघ आगे प्रस्थान करके वीरमगांव पहुंचा।

इस संघ यात्रा के पूर्व ही श्रीमती शृंगारश्री जी महाराज आदि छः साध्वीजी फलोधी से विहार करके इस प्रदेश में आ गये थे और यहीं विराजमान थे। वे सब वीरमगाम के संघ सहित स्वागतार्थ सामने पधारे और अपनी गुरुवर्य्या के दर्शन पाकर प्रसन्नता की लहरों में लीन हो गये।

पाठकों को स्मरण होगा कि मेरता वाली फतेकुंवर (श्रीमती फतेश्रीजी महाराज) की कुमारी कन्या सौभाग्य कुंवर की दीक्षा अजमेर में नहीं हुई थी। वह श्रीमती शृंगारश्रीजी महाराज के साथ थी। उसने प्रार्थना की–भगवति! अब तो मेरा भी उद्धार होना चाहिये। गुरुवर्य्या ने फरमाया–शुभे! अभी यहां दीक्षा कैसे हो सकती है? सौभाग्यकुंवर ने विनम्र आग्रह किया–मैं तो यहीं दीक्षा लूंगी।

उसके अत्यन्त आग्रह और उत्कृष्ट भावना को लक्ष्य में रख कर गुरुवर्या ने वहीं दीक्षा प्रदान करने का निर्णय कर दिया।

सात दिन वहां ठहर कर बड़ी धूम-धाम और महोत्सव पूर्वक वि. सं. १९५२ ज्येष्ठ शु. ७ के दिन सौभाग्यकुंवर को दीक्षित किया और दीक्षिता का शुभनाम 'प्रेमश्रीजी' स्थापित कर के चरितनायिका ने उन्हें अपना शिष्यत्व प्रदान किया। वहां से ग्रामानुग्राम प्रयाण करता हुआ यह संघ आषाढ़ शुक्ला १० के दिन तीर्थाधिराज शत्रुञ्जय की पुण्यपावन नगरी पादलिप्तपुर में जा पहुँचा और अनन्त सिद्धों के निर्वाण से पुनीत बनी हुई सिद्धाचल गिरिराज की भूमि का दर्शन स्पर्शन करके जन्मान्तर से सञ्चित कल्मष को नष्ट कर दिया।

गिरिराज पर हर्ष सहित आरोहण करके तीर्थाधिपति श्री आदीश्वर भगवान् की भावपूर्ण स्तोत्रों से स्तुति की। नव वसतियों–जिनालयों में विराजमान भगवान् के अनेक बिम्बों के दर्शन करते हुए पुनः शहरस्थित धर्मशाला में पधार गये।

समस्त संघ ने आप श्रीमतीजी को अपने शिष्या समूह सहित वहीं चातुर्मास करने का भक्तिभावपूर्ण आग्रह किया। अतः आप वहीं विराजीं। वर्षाकाल में गिरिराज की भूमि तृणसंकुल हो जाती है, यातायात करने से वनस्पतिकाय एवं तदाश्रित सूक्ष्म कीटादि की विराधना सम्भव है, अतएव प्रावृड् समय में गिरिराज पर आरोहण करने का निषेध है।

परम पूज्य गुरुवर्या महोदयाजी ने चातुर्मास आरम्भ हो जाने पर गिरिराज की यात्रा न करके उपत्यका से एवं नगर में बने हुए मन्दिरों के दर्शन स्तवनादि का लाभ लिया। पूज्य चरित-नायिका ने अपने प्रभावशाली वैराग्यरसपूर्ण व्याख्यानों से सुधा सलिल की वर्षा करके तत्रस्थ श्रोतृजनों के हृदयगत विषयकषायादि सन्तापों का उपशमन कर दिया और वारिवाहों ने नीर की वर्षा से शारीरिक ताप का शमन कर दिया। इस द्विविध वर्षा से तत्रस्थ जनता आह्लादित हो गई और धर्मकार्यों में विशेष कटिबद्ध होकर मानव जन्म को सार्थक करने लगी।

गुरुवर्या की अनन्य भक्त श्रीमती जवाहर बाई ने भी चातुर्मास में वहीं रह कर धर्मध्यान, तपस्या, साधु-साध्वी एवं साधर्मीजनों की भक्ति में मुक्तहस्त से लक्ष्मी का सदुपयोग करके अतुल पुण्यार्जन किया। इन सुश्राविका ने अट्ठाई का तप करके अष्टाह्निकोत्सव, साधर्मीवात्सल्य प्रभावना आदि कार्यों में अपरिमित द्रव्य का व्यय किया।

वर्षाकाल में तपस्या करना भारतीय परम्परा में सनातन काल से माना जाता है। हमारे पूज्य ऋषि महर्षियों ने मानवकर्त्तव्यों में तप को भी प्रमुख स्थान दिया है। तपस्या के आचरण से कृत कर्म नष्ट होने के साथ ही कर्मों के नवीन आगमन व बन्धन का भी प्रतिरोध हो जाता है। आत्मा के साथ जन्म जन्मान्तरों से बन्ध प्राप्त कर्मसमूह को भस्म कर देने के लिए तप जाज्वल्यमान अग्नि सदृश है।

श्रीसोमप्रभाचार्य महानुभाव ने 'सूक्तमुक्तावलि' में तप की महिमा वर्णन करते हुए उसे कल्पतरु कहा है।

'सन्तोषस्थूलमूलः प्रशमपरिकरः स्कन्धवन्धप्रपञ्चः,
पञ्चाक्षीरोधशाखः स्फुरदभयदलः शीलसम्पत् प्रवालः
श्रद्धाम्भः पूरसेकाद् विपुलकुल वलैश्वर्य सौन्दर्यभोगः
स्वर्गादिप्राप्तिपुष्पः शिवपदफलदः स्यात्तपः कल्पवृक्षः'

भावार्थ :- जिसकी सन्तोषरूप मोटी जड़ है, प्रशम, संवेगनिर्वेदादि स्कन्ध है, पञ्चेन्द्रियों का संयम ही शाखायें हैं, समस्त जीवों को अभय दान देने स्वरूप चमकीले पत्र हैं, शीलसम्पत्ति किसलय हैं, श्रद्धाजलसे सिंचन करने से उत्तम कुलादि में जन्म, अतुल वल, ऐश्वर्य, सौन्दर्य आदि भोगों की प्राप्ति होती है। स्वर्गादि की प्राप्ति ही पुण्य हैं और फल मुक्ति है ऐसा यह तप साक्षात कल्पवृक्ष है।

तीर्थ भूमि में तप करने से शत सहस्रगुण फल मिलता है। अतः हमारा यह पूज्य आर्या मण्डल भी तीर्थाधिराज की पुण्य भूमि में निवास का सुअवसर सम्प्राप्त होने पर भला इस श्रेष्ठ लाभ की उपलब्धि से कब वञ्चित रहने वाला था।

श्रीमती शृंगार श्रीजी महाराज, लाभश्रीजी महाराज, उज्ज्वल श्रीजी महाराज आदि ४ ने परमश्रेष्ठ मासक्षमण का तप करके कर्मेन्धन को जला दिया। श्रीमतो महताव श्रीजी महाराज ने १६

उपवास और श्रीमती रत्नश्रीजी महाराज ने पक्षखमण की श्रेयस्कर तपस्याएँ कीं।

श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज ने सिद्धिसम्प्राप्त करने वाला श्रेष्ठ सिद्धितप किया।

इस तप की विधि निम्नांकित है:—

१ एक उपवास पारना, दो उपवास पारना, तीन उपवास पारना, चार उपवास पारना, पाँच उपवास पारना, छः उपवास पारना, सात उपवास पारना, आठ उपवास पारना। प्रत्येक पारने के दिन बियासना करना पड़ता है। इसमें सिद्धपद के खमासमण-नमस्कार, कायोत्सर्ग व जप किया जाता है। ३६ दिन तपस्या के ८ दिन पारने के ऐसे चमालीस दिन लगते हैं।

चातुर्मास बड़े आनन्द से सम्पूर्ण हुआ। आपके प्रभावशाली उपदेशों से अनेक भव्यात्माओं ने दान शील तप भावना रूप धर्म का उत्कृष्ट भावों से आराधन करके अपने तन मन धन को सार्थक किया।

फलोधो से कार्त्तिक पूर्णिमा की यात्रार्थ आये हुऐ व्यक्तियों ने तथा आपके साथ संघ में आये हुऐ और वहीं चोमासा करने को रहे हुये लोगों ने आपसे पुनः फलोधी ही पधारने का आग्रह किया। किन्तु आपने कहा—मेरी भावना अभी इसी प्रदेश में विचर कर आस पास के तीर्थों की यात्रा करने की है। आप लोगों का आग्रह ही है तो श्रीमती शृंगार श्रीजी आदि कुछ साध्वियों को उधर विहार करा दिया जायगा।

उक्त लोगों ने कहा—जैसी श्रीमती जी की मरजी पर हमें भूल न जाइयेगा। फलोधी अभी नहीं तो वर्ष दो वर्ष में अवश्य पधारियेगा।

श्रीमती शृंगार श्रीजी महाराज आदि को तो फलोधी की ओर विहार करा दिया। यद्यपि आपका मन इस परम पवित्र तीर्थ की यात्रा को छोड़ कर जाने का नहीं होता था किन्तु साधुओं को चातुर्मास के पश्चात् उसी स्थान में रहने का निषेध है अतः आप दूसरी धर्मशाला में पधार गईं और निनाणु यात्रा करने का विचार होने से आप वहीं रहीं। बड़ी उत्कृष्ट भावना से विधि-पूर्वक निनाणु यात्रा की।

माघ कृष्ण पक्ष में यात्रा पूर्ण हो जाने पर आपने वहाँ से विहार कर दिया। उपरियाला तीर्थ की ओर जाते हुए बजाना ग्राम के लोगों का अत्याग्रह होने से आपने वहाँ मास कल्प किया अर्थात् एक महीने वहीं निवास किया।

इस भूमि में विचरने का आपका प्रथम ही अवसर था। इस प्रदेश में बड़े भद्र और धर्म प्रेमी जनों का निवास है। ऐसी विदुषी साध्वीजी को पाकर वे अपना अहोभाग्य मानने लगे। आपके व्याख्यानों की सरसता से जनता उमड़ी पड़ती थी। धर्मचर्चा और तात्विकगोष्ठी करने को जिज्ञासु व्यक्तियों का समूह प्रत्येक दिन उपस्थित हो जाता और आपसे तत्वज्ञान पाकर आनन्दित होता हुआ आपकी सहृदयता, शास्त्र, तर्कशक्ति और



गणाधीश स्व० श्रीमान् त्रैलोक्यसागरजी म० सा०

वाग्मिता की भूरि-भूरि प्रशंसा करता था। आपकी अमोघवाणी ने यहां भी एक हरिबाई नामक श्राविका के हृदय पर अपना अव्यर्थ प्रभाव स्थापित करके उसे संसार से विरक्त कर दिया, वह भागवती दीक्षा लेने को प्रस्तुत हो गई किन्तु आपने सहसा दीक्षित करना अस्वीकृत कर दिया और साथ रहने की सम्मति दी। वह आपके साथ जाने को तैयार हो गई। विहार करने पर अपने कुटुम्बियों से आज्ञा लेकर साथ साथ रहने लगी।

वहां से आप उपर्यालातीर्थ की यात्रा करती हुई श्रीशंखेश्वर पार्श्वनाथ पधारीं। विश्वगृह के प्रदीप भगवान् पार्श्वनाथ के अत्यन्त प्राचीन बिम्ब के दर्शन करके अत्यन्त आनन्दित हुई। वहां से विहार करके ग्रामानुग्राम विचरतीं भगवान् महावीर के पुनीत धर्ममार्ग का प्रचार करती चैत्र कृष्णा सप्तमी को आप 'पाटण' पहुंची।

श्रीमत्त्रैलोक्यसागरजी महाराज सा. को पुनीत प्रव्रज्या

परमपूज्य शीलगुण सूरि के अनन्य भक्त वनराज चावड़ा का बसाया हुआ अणहिलपुर पाटण बारह सौ वर्ष प्राचीन नगर है। पाटण को अनेक महापुरुषों को जन्म देने, अंक में क्रीड़ा कराने, और उन को अभ्युदय के शिखर पर आरूढ़ करने का सौभाग्य सम्प्राप्त है। श्रीजिनेश्वरसूरि यहीं के नृपति दुर्लभराज

की राज सभा में चैत्यवासियों पर विजय प्राप्त करके खरतर विरुद से विभूषित हुए थे ! यहांके जैन नृपतियों, महमात्यों, दण्ड-नायकों और जैनश्रेष्ठियों ने पृथ्वी को ऐसे ऐसे जैनमन्दिरों से मण्डित किया जिनकी स्थापत्य कला तक्षण कला और विशालता देख कर उस युग के जैनों की धर्मभावना और ऐश्वर्यशालिता का प्रत्यक्ष भान होता है। इन कलापूर्ण कृतियों को देखने विदेशी लोग सहस्त्रों मील का मार्गोल्लंघन करके भारत में आते हैं। और धर्मप्राण जैन जनता के लिए तो ये तीर्थस्थान ही है।

पाटण स्वयं भी एक तीर्थ नगर है। पंचासर पार्श्वनाथ का मन्दिर तीर्थ स्वरूप माना जाता है। अन्य भी कई देवमन्दिर यहां पर हैं।

परमार्हित् महाराज कुमारपाल और उन के गुरु कलिकाल सर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य को कौन जैन नहीं जानता ? इस राजाने अठारह देशों में अमारिउद्घोषणा करवा कर भगवती अहिंसा का अनन्य प्रचार किया था। इस के राज्य में जानवरों को पानी छान कर पिलाया जाता था। एक वृद्धा को यूका मारने के अपराध के प्रायश्चित्त स्वरूप एक मन्दिर निर्माण कराना पड़ा जिसका नाम 'यूकाविहार' रक्खा गया था।

आज भी पाटन ऐश्वर्यशालियों और धर्मप्राणों की नगरी है। गगनचुम्बि जिनभवनों और अट्टालिकाओं से सुशोभित इस नगरी की शोभा अपूर्व है।

हमारी पूज्येश्वरी चरितनायिका खरतर गच्छ की जन्मभूमि में प्रवेश करके अत्यन्त आनन्दित हुई। प.टण में खरतरगच्छीय आचार्यो को सम्प्राप्त हुआ सम्मान उनके स्मृतिपथ में अवतीर्ण होने लगा।

ओह! यह वही पाटण है, जहां महान् त्यागी और श्रेष्ठ विद्वान् जिनेश्वर सूरिने चैत्यवासियों को वाद में जीत कर यहां के नरेश से 'खरतर' विरुद प्राप्त किया था। दादा श्री जिनकुशल-सूरिजी का आचार्यपदोत्सव यहीं के प्रसिद्ध धनवान् श्रेष्ठि तेजपाल ने अगणित द्रव्य व्यय करके किया था। युगप्रधानाचार्य श्री जिनचन्द्रसूरिजीने यहीं पर धर्मसागरोपाध्याय को उत्सूत्रवादी घोषित करके खरतरगच्छ की प्रतिष्ठा में वृद्धि की और 'नवाङ्गी वृत्तिकार श्रीमदभयदेव सूरी खरतरगच्छीय नहीं थे' इस भ्रम को दूर करके तत्कालीन चौरासी गच्छ के आचार्यो से यह हस्ताक्षर करवाये की 'श्रीअभयदेवसूरि खरतरगच्छीय ही थे, श्रीज्ञान विमलसूरि को श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराज ने सहस्र कूटों के नाम बता कर मारवाड़ी साधुओं के अगाध ज्ञान का परिचय देते हुए विस्मय विमुग्ध कर दिया था।

उस युग में यहां खरतरगच्छ साधुओं का प्रबल प्रभाव था। सुविहित विधि के आराधक खरतरगच्छ के श्रावकों के सैंकड़ों घर थे।

जब हमारी चरितनायिका का यश और आगमन सन्देश पाटण निवासियों के कर्ण कुहरों में पहुंचा तो वे लोग उनका स्वागत

करने आये सम्मुख और बड़े भक्ति भाव से धूम-धाम पूर्वक आपकानगर प्रवेश करवाया।

शहर के जिन मन्दिरों में दर्शन करती हुई आप शिष्या परिवार सहित उपाश्रय में पधारीं। अपनी प्रभावशाली धर्मदेशना से पाटण निवासियों को विमुग्ध कर दिया। वे लोग उसी दिन आप से चातुर्मास विराजने का विनम्र आग्रह करने लगे। बोले:-

'श्रीमतीजी हमारे शहर में चातुर्मास किये विना हम आपको जाने नहीं देंगे। आपको पाटण में चातुर्मास करना ही होगा। हमने तो आज प्रथम वार ही अपने जीवन में साध्वियों का ऐसा विद्वत्तापूर्ण तात्विक व्याख्यान सुना है।

गुरुवर्या ने फरमाया:- अभी तो वर्षा काल बहुत दूर है, जैसी, स्पर्शना होगी देखा जायगा। अभी कुछ नश्चय नहीं किया जा सकता!

प्रातः काल व्याख्यान होता था, जिसमें सैंकड़ों व्यक्ति आते थे मध्याह्न में भी कितने ही तत्व जिज्ञासु आप से तत्व ज्ञान की चर्चा करने आ जाते थे।

श्राविकाएं भी आपकी सत्शिक्षा प्राप्त करने भारी संख्या में उपस्थित होकर यथेष्ट लाभ लेती थीं।

विरागिनी हरिवाई जो आपके साथ ही थी, उनकी दीक्षा की भावना उत्तरोत्तर तीव्र होती जा रही थी। त्याग तप व संयम के प्रति अनन्य निष्ठा, गुरुजनों का आत्यन्तिक विनय, पद पद पर

विवेकयुक्त आचरण और सर्वतोभावेन आत्मसमर्पण दीक्षार्थी भव्यजनों का मनोहर शृंगार होता है। इस अलौकिक शृंगार से अलंकृत हरिबाई ने गुरुवर्या के हृदय में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था। हरिबाई ने विनम्र भाव से प्रार्थना की—पूज्यवर्ये ! अब तो मेरी अभिलाषा पूर्ण होनी चाहिये, जीवन क्षणभङ्गुर है। और साथ ही जीवन का प्रत्येक क्षण बहुमूल्य भी है। उन अमूल्य क्षणों को नष्ट करना कहां तक समुचित है। आपश्री की उत्तम सङ्गति और सहवास करते हुए काफी समय व्यतीत हो हो चुका है अब तो सदा के लिए अपने पवित्र चरणों में स्थान देने का अनुग्रह होना चाहिये।

श्रीमनीजी ने फरमाया—तुम्हारी भावना सफल होगी, धैर्य धारण करो, समय की प्रतीक्षा है। उपयुक्त अवसर उपलब्ध होने दो, तुम्हारी भावना शीघ्र ही फलीभूत हो यही प्रयत्न करूंगी।

पाठकों को स्मरण, होगा श्रीमती चरितनायिका के सहोदर लघुभ्राता इन्हीं की सत्प्रेरणा,से वैराग्य वासितान्तःकरण से २३ वर्ष की युवावस्थां में ब्रह्मचर्य से जीवन यापन कर रहे थे। पिता माता का प्रेम पूर्ण संसार बन्धन का आग्रह इन धर्मवीर को त्याग-मार्ग से विचलित करने में असमर्थ सिद्ध हुआ। अपनी चिरका-लिक भावना व्यक्त करते हुए इन्होंने माता पिता भ्राता आदि पूज्य जनों से सयम मी जीवन में प्रवेश करने की आज्ञा प्राप्त करली और अपने लघुभ्राता अमीचन्दजी को साथ लेकर वे बहिन के दर्शनार्थ पाटण में आ गये।

संयोगवश श्रीमान् बलदेव सागरजी महाराज भी समीप के

गांवों में विचरते हुए पाटण में पधार गये थे। चरितनायिका ने श्री चुन्नीलाल जी की भावना जानी तो प्रेरणा की कि यहीं दीक्षा समारोह होना उत्तम रहेगा। पूज्येश्वर गणाधीश श्रीमान् भगवान् सागर जी महाराज साहव उन दिनों मारवाड़ में थे। उनकी आज्ञा प्राप्त करना आवश्यक था।

उनकी सेवा में पत्र प्रेषित करके आज्ञा प्राप्त कर ली गई। एक विद्वान् पण्डित से दीक्षा मुहूर्त्त लिया गया। श्रीचुन्नीलाल जी व हरिबाई का दीक्षा मुहूर्त्त क्रमशः वि.सं. १६५३ के द्वितीय ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी और द्वितीया का निश्चित हुआ। तदनुसार उक्त दोनों की दीक्षाएं वड़े महोत्सव पूर्वक गुजरात की प्राचीन राजधानी पाटण में हुई।

श्री चुन्नीलाल जी श्रीमान् वलदेव सागर जी महाराज के कर कमलों से दीक्षित होकर पूज्य गणाधीश जी के शिष्य वने और 'त्रैलोक्य सागर जी' नाम स्थापित किया गया तथा श्रीमती हरिवाई का नाम हर्ष श्री जी रख कर चरितनायिका की शिष्या घोषित की गईं।

श्रीवलदेव सागर जी महाराज आदि नव दीक्षित मुनि श्रीमान् त्रैलोक्य सागर जी महाराज सहित पाटण से मारवाड़ की ओर विहार कर गये।

हर्ष श्री जी अत्यन्त विनयवती सेवाभावी साध्वी थीं और साथ ही चरित्र रक्षा के प्रति भी सतत सावधान रहती थीं, अभिमान का तो उनके मन में लेश भी न था। गुरुवर्या के प्रति तो

अनन्य श्रद्धाभक्ति थी ही गुरुभगिनियों के प्रति भी उनका व्यवहार विशेष प्रेमपूर्ण और नम्रतायुक्त था।

चरितनायिका ने भी पाटण से विहार करने का विचार व्यक्त किया तो कई अग्रगण्य श्रावकगण हठ कर के अड़ गये और चातुर्मास की विनंति स्वीकृत कराकर ही रहे। गुरुवर्या महोदया भी समयज्ञ थीं, अत्यन्त आग्रह देखा तो स्वीकृति देनी ही पड़ी और विवेक श्री जी आदि ३ साध्वी जी को पालनपुर भेज दिया।

इस चातुर्मास में आपने व्याख्यान में उत्तराध्ययन सूत्र, भावनाधिकार में श्री विमलनाथ चरित्र तथा मध्याह्न में उपदेशतरंगिणी ग्रन्थ पर विवेचन किया।

आपके व्याख्यान में श्रोताओं का जमघट लग जाता था। अद्भुत आकर्षण था इनकी वाणी में! साध्वी व्याख्यान के विरोधी जन भी आपकी अनुपम व्याख्यान शैली को सुन कर दाँतों तले अंगुली दबाने लगते थे और परस्पर कहते थे कि भाई ऐसा व्याख्यान तो हमने अपने जीवन में विद्वान् कहलाने वाले मुनियों के मुख से भी नहीं सुना ये साध्वीजी तो ऐसी सरल और सुबोध व्याख्या करती हैं कि हठात् हृदय से धन्य धन्य की ध्वनि स्वतः ही प्रस्फुटित हो जाती है। वाणी की मधुरता के विषय में तो कहना ही क्या? आवाज ऐसी सुरीली है कि मानो वीणा ही बज रही है।

श्रावण मास अपनी वर्षा की रिमझिम से अपूर्व उल्लास लेकर आता है। मेघमालाएं अपनी स्वच्छ

जलधारा से अवनि का कलुष प्रक्षालन करने के साथ साथ उसकी उर्वरशक्ति को भी उत्तेजित करती हुई शस्य-श्यामला वना देती है। भौतिक अग जग तो प्रीणित विकसित होता ही है, धार्मिक और आध्यात्मिक संसार में भी कम उत्साह नहीं होता। धार्मिक जनता धर्मश्रवण, पूजा, प्रभावना, तप, जप, रथ यात्रा आदि धार्मिक कार्यों में विशेष रूप से रस लेकर आत्म विशुद्धि के पुनीत कार्य में संल्लग्न होती हुई स्वकल्याण के साथ दूसरों के लिए भी आदर्श उपस्थित करती है। आध्यात्मिक व्यक्ति भी शान्त शीतल वातावरण में परम श्रेय की साधना में तल्लीन हो जाते हैं।

हमारा यह पवित्र अथच पूज्य आर्या मण्डल सिद्धिपथ में अग्रसर होने लिए के प्रति वर्ष प्रावृट्काल में जन्म जन्मान्तरों के सञ्चित कर्मकलुष को नष्ट करने के लिए विशिष्ट तप करता रहता है। इस वर्ष भी मासक्षमण पक्षक्षमण अट्ठाई पंचरंगो आदि तपस्या के द्वारा आत्म विशुद्धि की।

श्रावक श्राविकाओं में अपूर्व उत्साह की ऊर्मियां उच्छलित होने लगीं और यथाशक्ति अट्ठाइयां पंचरंगी आदि तपस्याएं करने के साथ ही प्रभूपूजा, अष्टाह्निकोत्सव, साधर्मिक वात्सल्य, प्रभावना आदि पुण्यकार्यों में तन मन और धन का सद्व्यय करके शासनोन्नति के साथ ही आत्मोत्कर्ष का कार्य भी होने लगा।

इस प्रकार विक्रम सं. १६५३ का चातुर्मास सानन्द व्यतीत हुआ। विहार का विचार व्यक्त किया तो पाटन वाले बोले—

जी अभी विहार नहीं होगा, हम श्रीमुख से योग शास्त्र सुनने की बड़ी अभिलाषा रखते हैं। हमने अभी यह शास्त्र किसी से भी श्रवण नहीं किया, कृपा करके हमें अवश्य सुना कर कृतार्थ करें।

गुरुवर्या ने फरमाया-हमें मारवाड़ जाना है, आपकी प्रार्थना स्वीकार करके चातुर्मास यहां रहे, अब अतिरिक्त समय में रहना शास्त्र विरुद्ध भी है।

श्रावकगण बोले- आप दूसरे उपाश्रय में पधार कर हमारी जिज्ञासा पूर्ण करें, इसमें दोष भी नहीं लगेगा। दूसरे, लाभ हानि का भी विचार करना चाहिये, शास्त्रीय विधान एकान्त नहीं हैं, उन में उत्सर्ग अपवाद भी है ही। जनोपकार की दृष्टि से वर्षाकाल के बाद भी रह सकते हैं। हमारी विनति स्वीकृत करनी ही होगी।

उन लोगों की भावना का विचार करके कुछ मास रहने का आश्वासन दिया। और आपने दूसरे उपाश्रय में ४ मास विराज कर योग शास्त्र की विवेचना की। इस प्रकार आठ मास पाटन में ही विराजीं।

आप पाटन में विराजती थीं कि पालनपुर से मुख्य श्रावकों का प्रतिनिधि मण्डल अपने यहां चातुर्मास कराने की प्रार्थना करने आ गया। उनकी प्रार्थना स्वीकृत करके आपने पालनपुर की ओर विहार कर दिया। पाटन के भक्त श्रावक श्राविकाओं ने आपको भाव भीनी विदा दी और कई ग्रामों तक साथ २ रहे।

अन्त में तो छोड़ कर आना ही पड़ा। गुरुवर्या के मधुर व्यवहार व अमृत वाणी की स्मृति का संबल ही अब मात्र उनका आधार था।

पालनपुर की जनता ने बड़े भक्ति भाव से आपका ठाठदार नगर प्रवेश कराया।

जिन मन्दिरों के दर्शन करते हुए आप शिष्या समूह सहित धीर गम्भीर गजगति से गमन करती हुईं उपाश्रय में पधारीं। जय जय ध्वनि से उपाश्रय गूंज उठा।

थोड़ी देर मधुर वचनों से मानव जीवन की दुर्लभता, श्रुतिलाभ श्रद्धाभाव और संयमी जीवन की दुष्प्राप्यता पर प्रकाश डाला। समय हो जाने से सर्वमंगल सुना कर सब को कृतकृत्य किया गया। प्रभावना लेकर प्रसन्नता पूर्वक सब लोगों ने अपने २ घरों की ओर प्रयाण किया। साध्वी मंडल भी अपने आवश्यक कार्यों में लग गया।

व्याख्यान में आप समवायांगसूत्र और मुनिपति चरित्र फरमाती थीं। श्रोतृवर्ग आपकी अनुपम और सरल व्याख्या शैली से अत्यन्त प्रभावित हो एक चित्त से ध्यानपूर्वक व्याख्यान सुनता था।

श्रावणमास तपस्या का सन्देश लेकर आ गया। साध्वीमंडल में से श्रीमती श्रृंगारश्रीजी महाराज ने चतुर्दशपूर्व की आराधना स्वरूप चवदह उपवास का तप किया। श्रीमती हर्षश्रीजी महाराज

ने अष्ट प्रवचन माता की शुद्धि के लिए अट्ठाई तप करके हर्ष प्राप्त किया। श्रावक श्राविकाओं में भी पंचरंगी, अट्ठाइयां आदि तपस्याएं हुई और इस उपलक्ष में अट्ठाई महोत्सव प्रभावनाएं साधर्मिक वात्सल्य आदि धर्मकार्य करके तत्रस्थ निवासियों ने न्यायोपार्जित द्रव्य का सदुपयोग करके पुण्यानुबन्धी पुण्य सञ्चित किया।

भाद्रपदमास में पर्वाधिराज पर्यूषणपर्व का आराधन सम्पन्न हुआ। सब लोग आनन्द की ऊर्मियों में निमग्न थे, पर्वपर धर्म श्रवण के लिए निकटस्थ ग्रामों की जनता भी पालनपुर में आई थी, वह भी पर्वाराधन करकेवा पिस लौट चुकी थी।

आसपास के गांवों से प्लेग के समाचार आ रहे थे, पालनपुर शहर में भी दो चार केस प्लेग के हो चुके थे। श्रावकों ने गुरुवर्या से प्रार्थना की—भगवति ? प्लेग महामारी का आक्रमण इस शहर में भी हो गया है। आप कहीं बाहर पधार जायं तो ठीक रहे।

श्रीमतीजी ने आज तक प्लेग नहीं सुना था, पूछा—श्रावकजी, प्लेग क्या बीमारी है ? हमने तो इस का नाम आज ही सुना है।

श्रावक बोले—साहेबजी ! यह बड़ी भयंकर बीमारी है, एक दो दिन बुखार आया और एक गांठ गले पर, कांख या रान में हो जाती है, और मनुष्य देखते २ चल बसता है। दूसरे, यह रोग संक्रामक भी है। त्वरित गति से इसके कीटाणु वायुमण्डल में फैल कर दूसरों पर आक्रमण कर देते हैं। अतः हमारी प्रार्थना

है कि आप शहर से बाहर एकान्त स्थान में विराजें तो उत्तम हो।

भला चातुर्मास में स्थानान्तरण कैसे किया जा सकता है ? यद्यपि जैनशास्त्रों में साधु साध्वियों को उपद्रव युक्त स्थान को वर्षा काल में भी छोड़ कर अन्यत्र चले जाने का आदेश है तथापि अभी कुछ वैसा उपद्रव-महामारी आदि नहीं है ; अतः ऐसा समय आने पर देखा जायगा। अभी तो यहीं पर रहने का विचार है। गुरुवर्या ने धीर गम्भीर वाणी से कहा "।

श्रावकगण मौन हो गये। आश्विन का कृष्ण पक्ष सानन्द व्यतीत हो गया। उधर नगर में दिन प्रतिदिन प्लेग का जोर बढ़ने लगा। महामारी ने शीघ्र ही विकराल रूप धारण कर लिया। लोग टपाटप मरने लगे। कई लोग नगर छोड़ कर भागे जा रहे थे।

लघु शिष्या का आकस्मिक निधनः—

लघुवयस्का साध्वीजी प्रेमश्रीजी को जोरों का ज्वर चढ़ आया, प्लेग की गांठ भी हो गई। यह देखकर सबको भारी घबराहट हो गई।

प्रेमश्रीजी अभी पनरह वर्ष की किशोरी ही थी, बुद्धि विनय नम्रता आदि गुणों से सभी की आंखों का तारा बनी हुई थी। उन्हें इस भयंकर महामारी का भोग बनने की आशंका से ही सबके हृदय विदीर्ण होने लगे।

श्रावकों में दौड़ा दौड़ मच गई, डाक्टर आया, उचित उपचार हुए. पर रोग क्षण-क्षण बढ़ता जा रहा था। प्रेमश्रीजी ने

गुरुवर्या से प्रार्थना की-पूज्येश्वरि ! आपको इस प्रकार घवराना नहीं चाहिये। संयोग वियोग तो संसार का स्वभाव है। आप तो मेरी सच्ची हितैषिणी हैं न ? मुझे इस अन्तिम समय में सहायता देने के कर्त्तव्य को न भूलिये। शीघ्र अनशन करा कर मुझे आराधनादि करवाइये।

छोटी साध्वीजी का साहस देख कर सबने अपना जी कड़ा किया। उन्हें आराधना कराई गई, और अनशन भी करा दिया। सर्व के साथ क्षमा याचना करते हुए अर्हम् पद के ध्यान में लीन हो कर इस बाला आर्या ने आश्विन शुक्ला ६ के दिन नश्वर औदारिक शरीर का त्याग करके दिव्य वैक्रियक देह धारण करने को स्वर्ग में प्रयाण कर दिया। बाल साध्वीजी के इस असामयिक निधन से पालनपुर निवासी भी दुखः करने लगे। सदा से धीर गम्भीर और प्रफुल्ल मन रहने वाली गुरुवर्या महोदया को भी इस आकस्मिक वज्राघात ने विचलित कर दिया। किन्तु ऐसे ही समय तो मनुष्य की सच्ची परीक्षा होती है, विपम परिस्थि-तियों में भी जो अविचल अडिग रह सके वही सत्वशाली है। साधारण जन कष्टों-परिपहों इष्ट-वियोग अनिष्ट-संयोगों में अपने आप पर से काबू खो बैठते हैं। गुरुवर्या महोदया असाधारण सत्वशालिनी थीं, उन्होंने शीघ्र ही अपने आपको संभाला। साधिका जीवन के कर्त्तव्यों का विचार उन्हें इस अवस्था में अव-लम्ब रूप बना।

सच्चे वैराग्य, धर्मशूरता, और वास्तविक तत्व ज्ञान की कसौटी तभी होती है, जब कष्टों के पहाड़ आंखों के सम्मुख अड़े हों, विघ्नबाधाएं मार्गावरोध करके खड़ी हों, मृत्यु का भयंकर अट्ट-हास हृदय का कम्पित कर रहा हो, प्रियजन का जीवनदीपक प्रलय प्रकम्पन के एक ही झोंके में निर्वाण हो जाने वाला हो अथवा हो चुका हो, भय और आतक की तीक्ष्ण-तीव्र गामिनी ज्वालाएं कालसर्प की जिह्वा के समान लपलपाती, भस्म करने को त्वरित गति से अग्रसर हो रही हों, चारों ओर से करुण क्रन्दन और हृदयवेधी चीत्कार सुनाई पड़ रहा हो, एक एक क्षण मृत्यु के संवादों से परिपूर्ण हो। अर्द्ध विकसित कुसुमकलिका असमय में वृन्तच्युत हो धूलि धूसरित-पददलित हो गई हो, इस प्रकार की संकटापन्न भीषण परिस्थिति में भी गुरुवर्या ने धैर्य से काम लिया और दूसरों को भी धैर्य धारण करने का उपदेश दिया।

साधु जीवन का पथ कुसुम कोमल नहीं है, तलवार की तीक्ष्ण धार का मार्ग है, यहां सुख सुविधाओं से भरपूर सरल राजमार्ग नहीं, विषम घाटियों वाला कण्टकाकीर्ण पथ है जिसमें पथ पथ पर नुकीले कांटे व तीखे प्रस्तरखण्ड चरण चूमते हैं, श्वाप जन्तुओं की दहाडें हृदय को दहला देती हैं। बड़ी बड़ी आकाश पाताल को मिला देने की डींगें मारने वाले शूरम्मन्य विकट भट भी इस पथ पर चलते हुए लड़खड़ा जाते हैं, उनकी अहम्मन्यता नतमस्तक हो पलायन कर जाती है, उनका साहस पीठ दिखा देता है। धैर्य गाम्भीर्य और सत्व की साक्षात जङ्गम

मूर्तियां ही इस कठोर पथ पर चलने योग्य होती हैं। जो कायर नपुंसक है, जो संकटापन्न स्थितियों में पथभ्रष्ट हो जाता है, 'मोह ग्रस्त होकर 'इष्ट-वियोग अनिष्ट-सयोग, में' सन्तुलित नहीं रह सकता, वह साधुत्व के परमोच्च शिखर पर आरूढ नहीं हो सकता। वह साधना का पथिक ही कैसा ? जिस की आंखों में मृत्यु का ताण्डव नृत्य देख कर अश्रुविन्दु छलक आयें।

चरितनायिका महोदया ने अपने जीवन में कई उथल पुथल देखी हैं। सुख की कोमल शय्या का भी अनुभव किया है और दुख की कंटकाकीर्ण कष्टप्रद तल्पिका का भी वे आसेवन कर चुकी हैं। वे सुख में फूली नहीं, न कष्टों से भयभीत हुईं। दारुण परिस्थितियों में भी भयत्रस्त होना उनकी प्रकृति मे ही नहीं है। लोमहर्षक काण्डों की दृश्यावलियां देख कर भी वे सन्तुलित रही हैं, ऐसे अवसरों पर तो उनका विशिष्ट साधुत्व चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाता है।

पालनपुर संघ भी इन लघुवयस्का आर्या प्रेमश्रीजी के आकस्मिक निधन से अत्यन्त उदास हो गया।उसके नयनों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। उक्त घटना पालनपुर के लिए कलंक स्वरूप थी। कई लोग तो चरितनायिका के सामने फूट २ कर रो रहे थे। पूज्य गुरुवर्या ने उन्हें मृदु वचनों से आश्वासन देते हुए कहा-भाई, इस प्रकार शोक और रुदन करने से क्या होगा? यह क्या आपके या हमारे वश की बात है ? यह तो संसार का

अविचल विधान है, इसमें परिवर्तन करना या इसे मिटाना किसी की भी सामर्थ्य से बाहर है। मृत्यु शरीर की होती है, आत्मा तो अजर अमर और अविनाशी है। इसका आयुष्य इतना ही था। फिर यह तो अपने दुर्लभ मानव जीवन को सार्थक बना कर गई है। ऐसा निष्पाप जीवन तो किसी भाग्यशाली आत्मा को ही प्राप्त होता है, छोटी सी आयु में ही त्याग वैराग्य और साधना के पथ पर चल रही थी। पर आयुकर्म के दलिक समाप्त हो चुके थे, यह महामारी तो केवल निमित्तभूत बनी। यहां इस प्रकार शरीर त्याग लिखा था, पंचभूतमय देह यहीं विशीर्ण होने वाला था। ऐसे आदर्श त्यागमय जीवन व्यतीत करने वालों के लिए तो शोक न करके प्रत्युत श्रद्धांजलि अर्पित करना ही श्रेयस्कर है। यह घटना तो हम सबको चेतावनी देने वाली है, प्रत्येक प्राणी को सतत सावधान रह कर प्रभुस्मरण और धर्माचरण ही करना चाहिए। अब प्रमाद का त्याग करके धर्मपालन करना और गफलत में न रहना" ।

सभी लोग नतमस्तक हो करजोड़ कर खड़े थे, कहने लगे— धन्य हो गुरुवर्या। सचमुच आप अलौकिक विभूति हो।

बड़ी धाम-धूम से पवित्र देह का अग्नि संस्कार किया गया। सभी लोगों ने आप से यहां न रहने की प्रार्थना की पर वे अपने विचारों पर दृढ़ थीं।

अहो! चरितनायिका में कैसा आत्मबल और अपूर्व साहस था!! कैसी भीषण लीला थी महामारी की! मृत्यु का कैसा

ताण्डव नृत्य था। अन्तस् में कोई भी भय नहीं! आंखों के सामने रत्नोपम बालशिष्या का इस प्रकार अकाल निधन हो गया था, फिर भी ज्ञानियों के वचनों पर अनन्य विश्वास! धैर्य की पराकाष्ठा। ऐसे समय में–महाकाल की रौद्र ताण्डवलीला में वस्तु स्वभाव जान कर साहस और धैर्य से स्थितप्रज्ञ रहना उन्हीं महा सत्वशालिनी का काम था। उपर्युक्त प्रवचन आपके अन्तरंग का प्रतिबिम्ब था।

थोड़े दिनों बाद पालनपुर में शान्ति हो गई। प्लेग रूप महायम कई प्राणियों की बलि लेकर अन्यत्र प्रयाण कर गया।

चातुर्मास समाप्त हो जाने पर आपने वहां से विहार कर दिया। कई लोग दूर तक पहुँचाने आये और भरे हृदय से विदा कर के कठिनता से वापिस लौटे।

वहां से छः कोश पर मण्डाना नामक ग्राम में आपने तत्रस्थ श्रावक श्राविकाओं की आग्रहपूर्ण विनति से मासकल्प किया। अर्थात् एक महीने वहां विराजीं और अपने प्रवचनों तथा उत्तम आचरणों का तत्रस्थ जनमानस पर अमिट प्रभाव अंकित कर दिया। वहां पर कोई जातीय विवाद था, उसे भी आपने अपने सचोट उपदेशों से शान्त करके एकता स्थापित की।

पांटण से कई भक्तजन दर्शनार्थ यहां आये और आपको पुनः पाटण पधारने का हार्दिक आग्रह किया अतः आप पाटण पधारीं। कुछ दिन बाद ही फलोधी संघ द्वारा प्रेषित एक ठाकुर पत्र लेकर

वहां आ पहुंचा। पत्र में फलोधी संघने आपको पाटण से सीधे फलोधी शीघ्रातिशीघ्र पहुंचने की प्रार्थना की थी क्यों कि वहां कई विरागिनियां दीक्षोन्मुख थीं और आपका पधारना अत्यन्त आवश्यक था। अतः आपने शीघ्र ही वहां से विहार कर दिया।

मार्गस्थ ग्रामों में केवल एक रात्रि विश्राम करते हुए, पथ में आने वाले विशिष्ट तीर्थस्थान अर्बुदगिरिराज नाकोड़ा आदि तीर्थभूमियों में देवदर्शन करते हुए चैत्र शुक्ला १० के दिन आपने लोहावट में प्रवेश किया। फलोधी से श्रीमती शृंगारश्रीजी म. आदि भी दर्शनार्थ पधार गई थीं।

पूज्येश्वर गणाधीश भगवान सागरजी म. सा. तपस्वीवर छगनसागरजी म. स. नवदीक्षित मुनि त्रैलोक्य सागरजी म. स. आदि वहीं विराजमान थे। उनके दर्शन करके परम भक्ति भाव से वन्दना की। सुखपृच्छानन्तर गत तीन चातुर्मास के विशिष्ट कार्यों को निवेदन करते हुए बालसाध्वी प्रेमश्रीजी के असामयिक निधन का समाचार भी सुनाया। साथ ही उनके अन-शन पूर्वक समाधि मरण और अन्तिम समय तक सावचेती आदि का वर्णन भी किया जिसे सुन उक्त पूज्यवरों के मुख से अनायास ही धन्य २ के शब्द निकल पड़े।

प्रातः कालीन व्याख्यान तपस्वीश्रेष्ठ छगनसागरजी म. स. फरमाते थे, मध्याह्न में चरितनायिका अपनी अमोघवाणी के रस की अविरल धारा में जन-मन का कलुष क्षालन करके उसमें

वैराग्य बीज वपन कर रही थीं। इस अव्यर्थ उपदेश का प्रभाव लोहावट निवासी अमोलकचन्दजी पारख की विधवा पुत्री फूली बाई, (जो केवल २२ वर्ष की नवयुवती थीं) पर पड़ा और वह पवित्र संयम पथ पर चलकर आत्मकल्याण करने को प्रस्तुत हो गईं। उनकी उत्कृष्ट त्याग भावना देखकर सम्बन्धिजनों ने उन्हें पुनीत प्रव्रज्या लेने की अनुमति दे दी। तदनुसार वि सं. १९५५ की ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया के दिन शुभ मुहूर्त में दीक्षा देकर श्रीमती शृंगारश्रीजी म. का शिष्यत्व प्रदान किया और विद्याश्रीजी नाम रखा गया।

विद्याश्रीजी महाराज अतीव विनयवती सेवाभावी और चारित्रनिष्ठा साध्वीरत्न थीं। उन्होंने शीघ्र ही गुरुवर्या के हृदय में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया।

फलोधी से कई भक्त श्रावक श्राविका दीक्षा के प्रसङ्ग पर लोहावट आये हुए थे, उन्होंने फलोधी शीघ्र ही पधारने का भक्तिपूर्ण आग्रह किया। आपने उनकी विनति स्वीकृत की और गणाधीशजी की आज्ञानुसार फलोधी की ओर विहार कर दिया।



दीक्षाओं की धूम

अनादिकाल से भव-भव में भ्रमण करने वाले जीवों पर जन्म जरा और मृत्युभावकी नंगी तलवार लटकती रहती है तथा अप्रत्याशित रूप से अपनी तीक्ष्ण धारा से प्रतिक्षण प्राणियों का संहार करने में तत्पर रहती है। संसार में कोई प्राणी ऐसा नहीं है जो इस त्रिविध ताप से सन्तप्त न हो, इस तलवार के वार से वच सकता हो। स्वर्ग निवासी देव देवी गण भी अपने दिव्य जीवन में शान्ति या समाधि पूर्वक नहीं रह पाते, उनको भी जब यह ज्ञात होता है कि अब हमें इस दिव्यलोक, दिव्य भोगों, अनुपम वैभवों और इस दिव्य देह को छोड़ कर यमराज का अतिथि बनना पड़ेगा! तब उनके हृदय पर भारी आघात होता है, अन्तःकरण कम्पित हो उठता है, कहीं पर भी किसी भी राग रंग और नृत्यदर्शन में मन नहीं लगता, चित्त में अत्यधिक व्यग्रता और मानस पर उदासी का साम्राज्य छाया रहता है। मन रो रो पड़ता है। मृत्यु का भय अर्थात् अशान्तिमय दयनीय स्थिति। केवल दुखःपूर्ण रुदन।! ऐसे समय में कौन आश्रय प्रदान करे! कौन मृत्यु की स्वच्छन्द सत्ता से रक्षा कर सके! कौन अभयवाणी का आश्वासन प्रदान करे!

ऐसा ही भय जन्म का होता है, गर्भावास की भयंकर यातनायें जो दृष्टिगोचर हो सकें तो मानव त्राहि त्राहि पुकार उठे!

कंपकंपी छूटने लग जाय। सभी प्राणियों का मन घृणा और ग्लानि से अभिभूत हो जाय इस गर्ह्य स्थान पर निवास करना तो दूर, उसे देखने की भी अभिरुचि न हो। ऐसे स्थान मे घड़ी दो घड़ी नहीं, सवा नव महीने रहना! कितना कष्टकर है! और जन्म लेने के पश्चात् भी प्राणी कई प्रकार की आधिव्याधि और नाना प्रकार की उपाधियों-वेदनाओं से ग्रस्त हो जाता है, विविध विडम्बनाओं में फंसा रहता है। पराधीनता की वेड़ियों में जकड़ा हुआ, परिजन-परिवार की चिन्ताओं से घिरा हुआ, अर्थप्राप्ति की अभिलाषा से अनाचरणीय अकरणीय और निन्दनीय कार्यों को करता हुआ शान्ति और सन्तोष की सांस नहीं ले पाता है।

वृद्धावस्था की करुण अवस्था का विचार ही मनुष्य की सारी शेखी भुला देने वाला होता है, वड़े वड़े शक्तिशाली महायोद्धा भी जराभिभूत हो जाने पर अपने आपको कुछ कर सकने में असमर्थ जानते हुए तरुणों के हास्यपात्र वनने को विवश हो जाते हैं। प्रिय परिजनों से उपेक्षित हो कर जैसे तैसे आयु स्थिति पूर्ण करने को वाध्य होते हैं।

अनन्तकाल से जीवों की इस अधम दुर्दशा में कोई आश्वासन? कोई शरणदाता? कोई अवलम्बन है?

हां है! वीतराग का शासन! प्रभु के अमृतोपम उपदेश वाक्य भगवान् उमा स्वाति वाचक कहते हैं-:" जन्म जरामृत्यु भयैं रभिद्रुते व्याधिवेदना ग्रस्ते जिनवर प्रवचनादन्यत्र नास्ति शरणं क्वचिल्लो के॥ "

जन्म जरा और मृत्यु के भयसे हुए और विविध व्याधि वेदनाओं से ग्रस्त इस लोक में प्राणियों को जिनेश्वर के प्रवचन शासन के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी शरण स्थान नहीं है।"

सचमुच केवल मात्र तीर्थंकरों के प्रवचन ही शरण भूत हैं। सुधास्यन्दी आश्वासन है, जिसे पाकर मोहमल्ल से आत्मा सुरक्षित हो जाता है, तापत्रय से सन्तप्त जीव इस आश्वासन सुधा का पान करके शीतल शान्त और कर्मरोग से मुक्त हो जाते हैं।

उन विश्वोपकारक वीतराग महाप्रभु के वचन मानव मात्र को सर्व विरति जीवन के पथिक बनने को प्रेरित करते हैं। उनकी उद्घोषणा ही यह है कि–:"जहा सुहं देवाणुप्पिया मा पडिवद्धं करेह" अर्थ है:- देवानुप्रिय ! यदि तुम्हें वास्तविक सुख की अभिलापा है तो यथा सुख कार्य करो, उस में क्षणमात्र भी विलम्ब न करो"

समयं गोयम मा पमायए' "हे गौतम ! क्षण मात्र भी प्रमाद मत करो"

स्वर्गीया पूज्येश्वरी चरितनायिका भी मानो परमात्मा की इसी परम आज्ञा–शासन की ध्वजा फहराने के लिए ही पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई थीं। उन्होंने अपना जीवन सफल बनाने के साथ साथ अपनी अमोघ अमृतवाणी से कई जीवों का मोहविष दूर करके उन्हें अनन्त सुख, अजर अमर पद प्राप्ति के लिए योग्य

बनाया और उस मार्ग पर आरूढ़ कर दिया। कदाचित् ही कोई चातुर्मास ऐसा गया हो जिस में कोई इस पथ का पथिक न बना हो।

आपने फिर फलोधी की रत्नभूमि में पदार्पण किया है। आपने गत चातुर्मास करने के लिए शृंगारश्रीजी महाराज, विवेकश्रीजी महाराज और आबाल ब्रह्मचारिणी रत्नश्रीजी महाराज आदि को फलोधी भेज दिया था। इन वीरांगनाओं ने अपने प्रभावशाली व्याख्यानों द्वारा कितनी ही सद्यो विधवाओं को पवित्र प्रव्रज्या धारण के लिए प्रेरित करके दृढ़ बना लिया था। अब आपके प्रेरणादायक वचनों से वे शीघ्र संयमी जीवन में प्रवेश करने को उत्सुक हो गईं और मुमुक्षु रूप में तत्व ज्ञान प्राप्त करने को आपकी छत्रछाया में निरन्तर उपस्थित रहने लगीं। ये सोलह विरागिनियां थीं। इनका परिचय इनकी दीक्षाओं के अवसर पर यथास्थान लिखा जायगा।

चातुर्मास में चरितनायिका की अनन्य भक्त शिष्या, तप त्याग की साक्षात् प्रतिमा श्रीमती हर्षश्रीजी ने ३३ दिन के निराहार तप से ३३ आशातना से होने वाले कलुष का क्षालन किया। कई साध्वी वर्याओं ने शक्त्यनुसार पक्षक्षमण अष्टाह्निका आदि तप करके आत्मनिर्मलता के साथ ही जैन शासन की महत्प्रभावना की। सुयोग्य भावुक और मोक्षार्थी श्रावक श्राविकाओं ने इस प्रसङ्ग से यथेष्ठ लाभान्वित होने के लिए अट्ठाई आदि तपस्या के साथ २

चञ्चला लक्ष्मी का सदुपयोग करने के लिए अष्टाह्निक महोत्सव प्रभु पूजा, प्रभावना, साधर्मिक वात्सल्य आदि सत्कृत्य करके पवित्र पुण्यार्जन किया।

चातुर्मास पूर्ण हो जाने पर आपने विहार की इच्छा व्यक्त की। उपर्युक्त मुमुक्षु विरागिनियों ने आपसे प्रार्थना की-भगवति! हमारा उद्धार किये विना विहार कैसे कर रही हैं। ऐसा नहीं हो सकता! हमारी दीक्षा का मुहूर्त दिखलाइये और दीक्षा देकर फिर विहार करिये।

गुरुवर्या ने शान्त स्निग्ध स्वरों में कहा–'तथास्तु' सर्वत्र प्रसन्नता की लहर दौड़ गई।

दीक्षा का मुहूर्त्त दिखलाया गया। विक्रम सं १६५५ पौष शुक्ला सप्तमी के दिन नियत हुआ और चार विरागिनियों को दीक्षित करना निश्चित किया गया।

मौनेकादशी के पर्व का मौन पूर्वक सानन्द आराधन करने के पश्चात् निम्नाङ्कित चार विरागिनियां दीक्षा के लिए उद्यत होकर वन्दोले जीमने लगी। उधर साथ ही श्रीमती शिवश्रीजी महाराज की ३ विरागनियां वन्दोले जीमने लगीं। वे तीनों विधवायें थीं।

उन तीनों के नाम क्रमशः सुन्दरश्रीजी चेयरश्रीजी और अजितश्रीजी रक्खे गये।

१ श्री देवीचन्दजी लोढा की २१ वर्षीया सुपुत्री सोनीबाई जो समरथमलजी गुलेछा की विधवा पत्नी थीं।

२ श्री केवलचन्दजी गुलेच्छा की पुत्री और मीखणचन्दजी वैद की पत्नी बाल विधवा १३ वर्ष की बालिका गीयाबाई।

३ श्री बागमलजी लोंकड़ की पुत्री और बदनमलजी लूनावत की विधवा पत्नी १८ वर्षीया गोरजाबाई।

४ श्री बागमलजी लोंकड़ की पुत्री और मगनमलजी वैद की सौभाग्यवती पत्नी बीरांबाई जो केवल षोडशवर्षीया बाला थी।

इन चारों की दीक्षा उक्त मुहूर्त में बड़े उत्सव पूर्वक हुई और चारोंने ही पूज्यवर्या चरितनायिका का शिष्यत्व स्वीकार करके अपने जन्म को सफल किया।

इनके नाम क्रमशः सौभाग्यश्रीजी, ज्ञानश्रीजी, गौतमश्रीजी और विजयश्रीजी, रक्खे गये।

ये चारों ही विनयवती और सुशीला थीं। इनमें से सब से अल्पायु में दीक्षा लेने वाली ज्ञानश्रीजी, अत्यन्त भद्र प्रकृति हैं जो आज भी हमारे सौभाग्य से समुदाय के अधिष्ठात्री पद को अलंकृत करती हुई, हमारी शिरच्छत्र बनी हुई, समुदाय का कुशल सञ्चालन कर रही हैं।

शेष तीन भी बड़ी प्रभावशालिनी थीं। श्रीमती सौभाग्यश्रीजी महाराज तो चरितनायिका के मन्त्री पद को सुशोभित कर रही थीं और चरितनायिका पूज्येश्वरी से २ वर्ष पूर्व ही स्वर्गवासिनी बन चुकी थीं।

इन चारों की दीक्षा गणाधीश श्रीमद् भगवान् सागरजी महाराज सा. आदि मुनि मण्डल के कर कमलों से हुई और बड़ी

दीक्षा भी वहीं माघ शुक्ला ७ को खूब समारोह पूर्वक हुई।

इधर नागौर से कई श्रावक श्राविका इस महोत्सव को देखने फलोधी आये हुए थे। उन्होंने नागौर पधारने की साग्रह प्रार्थना की। आपने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए श्रीमती शृंगारश्रीजी महाराज को १३ साध्वियों के साथ नागौर भेजने की स्वीकृति प्रदान की। तदनुसार श्रीमती शृंगारश्रीजी महाराज को नागौर की ओर विहार करा दिया। उन्होंने नागौर में चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन शुभ मुहूर्त में लाधूरामजी मिनिया की विधवा पत्नी मृगाबाई, को दीक्षा देकर 'मोहनश्रीजी' नाम दिया।

चरितनायिका की पूज्य गुरुवर्याएं फलोधी में विराजमान थीं। उनकी सेवा में आप सदा तत्पर रहती थीं। बड़ी धर्मशाला में स्थान की कमी के कारण रात्रि में आप कुछ शिष्याओं को साथ लेकर गुरुवर्या की आज्ञानुसार समीप के उपाश्रय में पधार जाया करती थीं।

प्रातःकाल पुनः लौट कर पूज्यों की परिचर्या में कटिबद्ध हो जाती थीं। आपकी विनय भक्ति और सेवा भाव ने गुरुवर्या के हृदय में अपूर्व स्थान बना लिया था। वे सदैव आपकी उन्नति की कामना किया करती थीं। आज्ञापालन और वैयावृत्य का अद्भुत गुण ही आपको उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर समारूढ़ कर सका।

अभी कई विरागिनियां संयम धारण की प्रबल इच्छा रखती थीं। इस कारण आपको फलोधी में ठहरना पड़ा।

श्री मुकुन्दचन्दजी झावक की पुत्री स्वर्गीय वागमल जी वैद की धर्मपत्नी वाघूवाई तथा उनके पुत्र सम्पत् लालजी वैद की विधवा पत्नी माङ्गू वाई और गुलेच्छा भीमराजजी की पुत्री वदनमलजी वैद की विधवा पत्नी माङ्गू वाई इसी प्रकार मेघराज जी वैद की लड़की, सम्पतलालजी नीमाणी की विधवा पत्नी जतन वाई भी भागवती प्रव्रज्या धारण करने को प्रस्तुत हो गईं।

उक्त सभी दीक्षार्थिनियों के कुटुम्बियों से आज्ञा प्राप्त हो चुकी थी। ये सभी सम्पन्न घराने की महिलाएं थी। वड़े महोत्सव पूर्वक विक्रम सं. १९५६ के वैशाख मास की शुक्ला षष्ठी के दिन शुभ मुहूर्त्त में इनकी दीक्षाएं हुई और क्रमशः निम्नाभिधानों से सुशोभित हुई :— श्रीमती हुल्लास श्रीजी, श्रीमती माणिक्य श्रीजी, श्रीमती हीरश्रीजी, श्रीमती पद्मश्रीजी, ।

ये चारों ही युवतियाँ थीं। संसार की असारता प्रतिपादन करने वाले गुरुवर्या के प्रवचनों से इन्होंने जैन शासन की शरण लेकर आत्म कल्याण की प्रकृष्ट साधना आरम्भ कर दी।

धन्य है जैन शासन की इस पद्धति को ! जिसमें वाल वृद्ध युवा और वैधव्य प्राप्त अवला, सभी के लिए सम्माननीय जीवन व्यतीत करते हुए मुक्ति की ओर अग्रसर होने की समान सुविधाएं प्राप्त हैं ।

जैन व ईसाई सम्प्रदाय को छोड़ कर अन्य सम्प्रदायों में ऐसी कोई विशिष्ट संस्थाएं नहीं है जहां स्त्री स्वतन्त्र रह कर सुरक्षा

पूर्वक अपने सतीत्व, सच्चारित्र और सद्ज्ञान की आराधना करती हुई आदर्श जीवन यापन कर सके। वह युग स्त्रियों के लिए कैसे बन्धन वाला था, यह सर्वविदित है। और विधवाओं की स्थिति तो अत्यन्त दयनीय थी; उनका तो कोई स्वत्व ही न था। अन्य सम्प्रदाय वाले लोग विधवा को पति के साथ ही सती हो जाने-जीवित जलने को वाध्य करते रहते थे। गृहस्थाश्रम में रहना उनके लिए बड़ा कष्टकर था, विधवा दर्शन अमङ्गल सूचक माना जाता था। पद पद पर अपमान निरादर और विवशता के विष की ये कटु घूंटें थीं, जो मूक रहकर पीनी पड़ती थी।

ऐसी अवस्था में जैन शासन की तीर्थव्यवस्था-(साधु साध्वी श्रावक श्राविका रूप) प्रत्येक प्राणी को शरण भूत निर्भय स्थान सिद्ध हुई। धन्य है वीतराग के इस पवित्र पथ को! आज भी सहस्रों व्यक्ति इसके पवित्र पथ पर चल कर स्वपर श्रेय का साधन कर रहे हैं।

चरितनायिका का शिष्याओं के प्रति अपूर्व वात्सल्य भाव था। उनकी शरण में आकर वे अपने आपको सुखी और निर्भय अनुभव करती थीं। तभी तो त्रयताप सन्तप्त भव्यात्माएं इस शीतलच्छाय वृक्ष के नीचे निवास करने को आतुर होकर शीघ्र दौड़ी आ रही थीं।

इन चारों की बड़ी दीक्षा भी गणाधीश महोदयादि की अध्यक्षता में हो गई। दीक्षा पर लोहावट निवासी भी आये

हुए थे। उन्होंनें गुरुवर्या से प्रार्थना की–श्रीमती पुण्य श्रीजी महाराज साहबादि को अबके लोहावट चातुर्मास करने की आज्ञा फरमाइये। वहाँ भी हम लोग धर्म श्रवण के अभिलाषी हैं।

गुरुवर्या ने उनकी विनति स्वीकृत करके आपको ८ साध्वियों सहित लोहावट विहार करा दिया।

वहां खूब धूम धाम से आपका स्वागत हुआ। आपकी सुधा मधुर वाणी की वहाँ भी अजस्र वर्षा होने लगी। प्रातः काल श्री उत्तराध्ययन सूत्र, धन्ना शालिभद्र चरित्र और मध्याह्न में जयानन्द केवली का रास फरमाती थीं।

आपका चातुर्मास जाटावास में था, किन्तु वहां से एक माइल दूर विष्णोई वास में निवास करने वाले श्रावक श्राविका भी व्याख्यान सुनने जाटावास प्रतिदिन उपस्थित होकर आपके प्रवचन पीयूष का पान करके आप्यायित (तृप्त) होते थे।

चरितनायिका के ऊपर व्याख्यान तत्वचर्चा आदि कार्य होते हुए भी वे कर्मापचय कारक तपका आराधन करने मे सदैव तत्पर रहती थीं। उपवास आयंबिल एकासना आदि तप तो प्रत्येक तिथि को करती ही रहती थीं। वर्षावास में विशिष्ट तप करना भी न भूलती थीं।

तदनुसार इस वर्ष भी आपने स्वयं अट्ठाई तप किया और दोनों समय व्याख्यान भी देती रहीं। अद्भुत आत्मशक्ति थी उनकी! संतत जागृति का ऐसा उदाहरण अन्यत्र उपलब्ध होना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

साथ की साधिकाएं भी पश्चात्पद न थीं। उन्होंने भी यथाशक्ति इस यज्ञ में भाग लिया।

श्रीमती हुल्लासश्रीजी म. ने सर्व तपस्याओं में श्रेष्ठ मासक्षमण का उत्कृष्ट तप करके आत्मा को कर्ममल से रहित किया।

अन्य साध्वी समूह ने भी पक्ष क्षमण अट्ठाई आदि पुनीत तप के आचरण से कर्म रज का क्षालन किया और आत्मा को उज्ज्वल बनाया।

श्रावक श्राविओं में भी अट्ठाइयां पंचरंगी आदि तपस्या हुई। इन तपस्याओं के उपलक्ष में भव्य भावुक और धर्मनिष्ठ श्रावकों ने अष्टाह्निकोत्सव पूजाएं साधर्मीवात्सल्य आदि कार्यों में अस्थिर लक्ष्मी का व्यय करके उसे जन्मान्तर के लिए भी विवृद्ध और स्थिर कर लिया।

चातुर्मास पूर्ण हो जाने पर आपने विहार की भावना व्यक्त की। लोहावट निवासियों के हृदय कुम्हला गये और उन्होंने कुछ दिन वहां अधिक विराजने की प्रार्थना की। जनकल्याण की भावना का लक्ष्य ध्यान में रखते हुए आपने उनका आग्रह स्वीकार कर लिया।

पालनपुर के चातुर्मास में जीवीबाई नामक एक श्राविका को आपकी वैराग्यगर्भित वाणी ने संसारोद्विग्न कर दिया था। वह दीक्षा के पवित्र पथ का अनुसरण करने को वैराग्यदशा में आपके साथ ही रह कर साधु जीवन के योग्य ज्ञान, चर्या आदि का अभ्यास कर रही थी। वह पुनीत भागवती प्रव्रज्या प्रदान करने की प्रार्थना करने लगी।

फलोधी का श्री संघ इन वैरागिनी की दीक्षा अपने यहां कराने को कटिबद्ध होकर लोहावट आया और फलोधी पधारने का विनम्र आग्रह किया किन्तु लोहावट वाले भी कम नहीं थे वे अपने यहां दीक्षा कराने का आग्रह करने लगे। अन्त में दोनों में समझौता हो गया। और इस शर्त पर वे राजी हुए कि चरित-नायिका लोहावट ही रहें, दीक्षा भले फलोधी हो।

समयज्ञ गुरुवर्या ने भी श्रीमती विवेकश्रीजी महाराज आदि तीन साध्वीजी को दीक्षा समारोह पर फलोधी भेज दिया।

वैरागिन जीवीबाई ने अपने दशवर्षीय पुत्र मणिलाल और कुटुम्बी जनों की आज्ञा लेकर वि. सं. १९५६ की माघशुक्ला पचमी के दिन प्रशस्त मुहूर्त्त में महोत्सव पूर्वक दीक्षित होकर 'दयाश्री' नाम धारण करते हुए दयाप्रधान तीर्थंकरों के मार्ग का अनुसरण किया।

इन को विवेकश्रीजी महाराज ने चरितनायिका की शिष्या बनाया। उधर नागौर में भी श्रीमती शृंगारश्रीजी महाराजने फलोधी की तीन वैरागिनियों को दीक्षित किया।

ये श्रीमती मोहनश्रीजी महाराज की गृहस्थाश्रम की पुत्रवधू और पौत्रियां थीं।

इन के गृहस्थावस्था के नाम क्रमशः राजबाई, गुलाबबाई और धन कंवर थे।

इनकी दीक्षा वि. सं. १९५६ की माघशुक्ला त्रयोदशी के दिन शुभ बेला में महोत्सवपूर्वक हुई। गुलाबबाई, धनकंवर कुमारियां

थीं। राजबाई का नाम रेवन्तश्रीजी, गुलाबबाई का नाम जीवनश्रीजी और धनकंवर का नाम कमल श्रीजी रक्खा गया।

फलोधी और लोहावट दोनों ही स्थानों से काफी संख्या में जनता इस शुभ प्रसंग पर नागौर पहुँची थी। दीक्षा महोत्सव के समाचार सुनकर चरितनायिका अत्यन्त प्रसन्न हुईं। फाल्गुन चातुर्मासी लोहावट हो चुकी थी। फलोधी में पूज्यगणाधीश्वर भगवान सागरजी महाराज का शरीर अस्वस्थ सुनकर आपने फलोधी की ओर विहार कर दिया और शीघ्र ही फलोधी पहुँच गये। लोहावट से केवल आठ कोश पर ही फलोधी है।

गुरुदेवों और गुरुवर्याओं के दर्शन से आल्हादित होकर विनम्र भाव से सेवा में तल्लीन हो गये।

गणाधीश्वरजी का स्वर्गवास

श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज आदि का चातुर्मास जयपुर था। ग्रीष्म ऋतु में प्रायः बड़े शहरों में विशूचिका (हैजा) आदि महामारियों का प्रकोप हो जाता है। जयपुर में हैजा जोरों से चलने लगा।

साध्वियों पर भी इसका आक्रमण हुआ जिनका आयुष दीर्घ था वे तो लपेट में आकर भी बच गईं परन्तु नवयुवती आर्याएं–धनश्रीजी महाराज और विजयश्रीजी महाराज काल के इस कराल आक्रमण से न बच सकीं। ज्येष्ठ शुक्ला ११ के दिन

धनश्रीजी म. और ज्येष्ठ शुक्ला १३ को विजयश्रीजी म. ने इस नश्वर शरीर और मृत्युलोक को त्याग कर समाधि पूर्वक अनशन करके स्वर्गभूमि में निवास कर लिया। दोनों ही आर्याएं सुशीला विनयवती और साथ ही बुद्धिशालिनी थीं। इनके स्वर्गवास के समाचार फलोधी पहुंचे। चरितनायिका महोदयादि साध्वी मण्डल इन दोनों की असामयिक मृत्यु सुन कर अत्यन्त खिन्न हो गया पर जीवों की कर्मविचित्रता, जीवन की क्षणिकता और चरित्र की दुर्लभता आदि के विचारों से मन को शान्त किया। और भावी भाव जानकर सन्तोष धारण किया।

उधर श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज के पास दो साध्वियां कम हो गई थीं अतः नागौर से तीन साध्वीजी को जयपुर भेजने का सन्देश दिया।

यहां फलोधी में गणाधीश्वर महोदय का शरीर अस्वस्थ और अशक्त था ही। वे भी ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्दशी को समुदाय का भार तपस्वीवर श्रीमान् छगनसागरजी महाराज के कन्धों पर रख कर अनशन पूर्वक दिव्यलोक को प्रयाण कर गये। सारे संघ में शोक छा गया। बड़े समारोह पूर्वक उस संयम तप और त्याग से पवित्र बनी हुई देह का चन्दन नारियल और घृत से अग्नि संस्कार किया गया। इस अवसर पर श्रीसंघने अष्टाह्निकोत्सव किया।

जयपुर की दुर्घटनाओं को अभी तीन दिन हुए थे कि नागौर में लघुवयस्का साध्वी जीवनश्रीजी जिन्हें दीक्षित हुए अभी मात्र

चार मास और चार दिन ही व्यतीत हुए थे, इसी हैजा रूप महामारी से आक्रान्त हो कर आषाढ़ कृष्ण द्वितीया को ऐहिलौकिक लीला संवरण करके परलोक को प्रस्थान कर गईं।

काल की गति भी कितनी विचित्र और निर्दय है! यह न बाल देखती है न युवा या वृद्ध! इसका अविच्छिन्न और अविरत चक्र निरन्तर गतिशील रह कर प्राणियों का पेषणकार्य करता ही रहता है। इस चक्र से कोई भी प्राणी बच नहीं सकता! इसी लिए ज्ञानीजन उद्घोषण करते रहते हैं— सावधान रह कर धर्मसाधना करो, जीवन का कुछ ठिकाना नहीं! न जाने कब कालबली का आक्रमण हो जाय!

मनुष्य भविष्य के सुनहरे स्वप्नों में मुग्ध रह कर वर्त्तमान में निशंक भावों से पापाचरण में उद्यत रहता हुआ धर्म से विमुख रहता है। सोचता है—वृद्धावस्था में धर्म तप जप संयम आदि करूंगा अभी तो खाने खेलने के दिन हैं। चार दिन मौज भी तो कर लें।

धन्य हैं वे माता पिता जो अपनी सन्तान को धर्म की शिक्षा देकर उन्हें बालवय से ही धर्म करने की—तप संयममय जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा करते रहते हैं और उनकी भावना का मूल्यांकन करते हुए उन्हें सहर्ष संयमी जीवन में रहने की आज्ञा दे देते हैं।

बाल साध्वी जीवनश्रीजी को माता की अमूल्य और सतत प्रेरणा ने संयम प्रेमिणी बनाकर उनके जीवन को सार्थक कर

दिया। आयुकर्म के दलिक तो समाप्त होते ही और गृहस्थ रहतीं तो भी काल का कवल तो बनती हीं। चार मास चार दिन के स्वल्प संयमी जीवन में रह कर उन्होंने मानव जीवन को सार्थक कर लिया। एक दिन का संयम मानव का उत्कर्ष कर देता है। अस्तु ऐसी महान् आत्माओं का हार्दिक अभिनन्दन करते हुए इस प्रसङ्ग से अलम्।

चातुर्मास समीप आ गया था, फलोधी वालों की तो प्रार्थना थी ही। गुरुवर्या महोदयाओं ने भी चरितनायिका पूज्येश्वरी को वहीं वर्षावास करने का आदेश दिया। अतः अपना परम सौभाग्य समझती हुई वे फलोधी ही विराजीं।

इस चातुर्मास में आपके ऊपर प्रातः कालिक व्याख्यान का दायित्व तो था नहीं। तपस्वीवर छगनसागरजी महाराज साहब वहीं विराजते थे। उनकी तात्विक और वैराग्यरस गर्भित वाणी सुनने प्रायः सभी आर्याएं व्याख्यान समय उपस्थित रहती थीं।

तपस्वी प्रवर भी अद्भुत विभूति थे। समुदाय की सारणा वारणा प्रेरणा, परिप्रेरणा करने में वे सदा से ही दक्ष थे। साधु साध्वियों की स्वल्प शिथिलता भी सहन करना उनकी प्रकृति के विरुद्ध था, वे तत्काल ही उसे दण्डित करके भविष्य के लिए सावधान रहने का आदेश देते थे। और गणाधीश पद संभाले बाद तो समुदाय के सर्व साधु साध्वियों को चारित्रनिष्ठ रह कर ज्ञान प्राप्त करने की प्रेरणा करते रहते थे। कोई भी उनकी

आज्ञा भंग करने का साहस नहीं कर सकता था। स्वयं गणाधीश-कठोर चारित्री हो तो समुदाय भी शिथिल नहीं हो सकता। कर्तव्यनिष्ठ और जागरूक सेनाध्यक्ष के सैनिक कायर और भीरु बन कर रणभूमि से पलायन नहीं कर सकते, प्रत्युत वीरता पूर्वक युद्ध करके विजय की वरमाला धारण करते हैं।

साधु साध्वियों को ज्ञान दान करने में भी आप सदा अप्रमत्त रहते थे। उन्हें शासन की सेवा करने योग्य बनाने का आपका विशेष लक्ष्य था।

गुरुवर्या महोदयाएं तथा चरितनायिकादि साध्वी मण्डली मध्याह्न में आपसे सूत्रार्थ श्रवण मनन और वाचन करती थीं। नवदीक्षिता आर्याएं भी सूत्रों के बोल, स्तोक (थोकड़े) संस्कृत व्याकरण, शास्त्रीय लिपि लेखन आदि का अभ्यास करती रहती थीं।

श्रावण की प्रेरणात्मक हरीतिमा पवित्रात्मा मुमुक्षुओं के लिए एक विशेष सन्देश लेकर आती है। वर्षा की झड़ियों के साथ तपस्या की झड़ियां भी लग जाती हैं।

श्रीमती विद्याश्रीजी महाराज और उज्जवलश्रीजी महाराज ने २५ उपवास करके पांच महाव्रत की पंचविंश भावनाओं को उज्जवल बनाया। अन्य साध्वियों ने भी यथाशक्ति तप का आचरण करके आत्मा के कल्मष को धो डाला।

दो श्राविकाओं—सौभाग्य बाई और भाऊ बाई ने सिद्धों के ३१ गुणों की स्मृति स्वरूप ३१ उपवास की तपस्या की। अन्य

पृष्ठ २४३

नोट

इसी वर्ष यों एक और दीक्षा पूज्य तपस्वी श्रेष्ठ के कर-कमलों से हुई।

फलोधी के निकटस्थ रोहिणा ग्राम निवासी श्री हनुमान् सिंह जी चौधरी के अष्ट वर्षीय सुपुत्र श्री हरिसिंह को वि. १९५७ की आषाढ़ कृ. ५ को दीक्षा देकर 'हरिसागरजी' के नाम से अलंकृत किया। ये भविष्य में समुदाय के आचार्य बने। स्वभाव से ही शान्त धीर व गंभीर थे। इनकी विद्वत्ता व साहित्य सेवा अद्वितीय थी।



श्रद्धाशील और धर्मात्मा व्यक्तियों ने भी अट्ठाई पंचरंगी आदि तपस्याएं कीं।

पूज्यपाद तपस्वीवर और चरितनायिका के वैराग्यमय उपदेश और प्रेरणा से श्री छोगमलजी भावक ने सपत्नीक और पूनमचन्दजी वैदने भी सपत्नीक आजीवन ब्रह्मचर्य धारण किया।

इन सब तपस्याओं और व्रत धारण के उपलक्ष में अष्टाह्निकोत्सव प्रभावना साधर्मिक वात्सल्य आदि धार्मिक कार्य हुए।

वि. सं, १६५७ का चातुर्मास सानन्दपूर्ण हुआ। आपको विहार करना था, किन्तु तपस्वीवर और गुरुवर्याओं के आदेश से आप वहीं विराजीं। और तात्विक ज्ञान सम्प्राप्त करने का तथा गुरुवर्याओं की वैयावृत्य करने का सौभाग्य सम्पादन किया।

पौष मास समाप्त होते ही लोहावट से श्री ज्ञानमलजी कोचर की वहिन दीपीबाई दीक्षा देने की प्रार्थना करने आ गई। ये कई दिनों से विरागभाव मे रह रही थीं, सतत प्रयास करके कुटुम्बीजनों से आज्ञा प्राप्त हुई तब विनति करके लोहावट में दीक्षा कार्य कराने की अपनी भावना व्यक्त की।

इस विरागिनी की विनति से गुरुजनों का आदेश लेकर माघ कृष्ण द्वितीया को आपने कई साध्वियों को साथ लेकर विहार कर दिया और दूसरे ही दिन लोहावट पहुँच गईं।

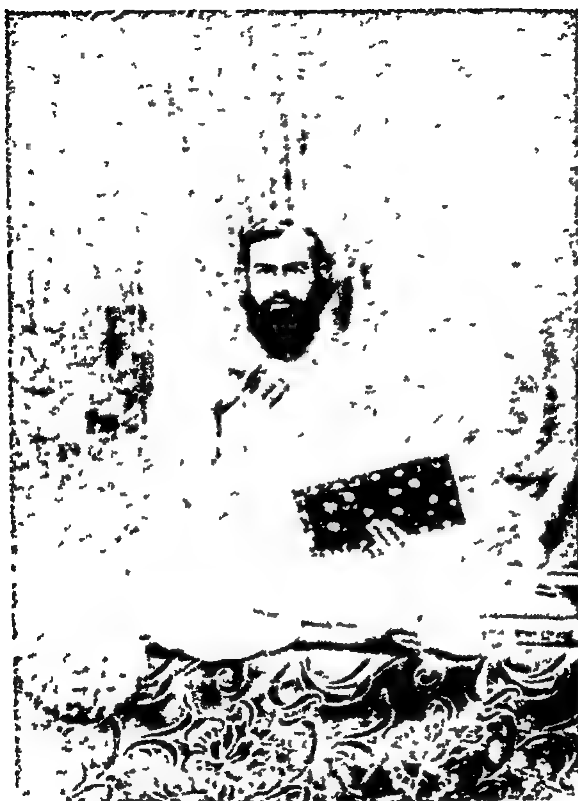
दीपीबाई की दीक्षा बड़े समारोह पूर्वक माघशुक्ला पंचमी को प्रशस्त मुहूर्त में सम्पन्न हुई। इनका नाम 'दीपश्रीजी' रखा गया।

बीकानेर से श्रावकों द्वारा भेजा हुआ प्रतिनिधि मण्डल चातुर्मास की विनति लेकर आ उपस्थित हुआ। आपने स्वयं पधारना स्वीकार न करके श्रीमती शृंगारश्रीजी महाराज को सात साध्वियों सहित फाल्गुन कृष्ण द्वितीया को बीकानेर की ओर विहार करा दिया।

आपने जोधपुर वालों को बहुत पहले एक बार फरमाया था कि चौमासे की भावना है, कभी क्षेत्र स्पर्शना होगी तब हो सकेगा।

वे अबके अवसर देख कर विनति करने आ गये और फाल्गुन कृष्ण एकादशी के दिन जोधपुर की ओर विहार कराके ही सन्तुष्ट और आनन्दित हो कर गये। गुरुवर्या के साथ इस विहार में केवल ६ साध्वीजी ही थे। उधर आप श्रीमतीजी के जोधपुर पहुँचने से पूर्व ही जयपुर से श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज आदि ६ साध्वीजी जोधपुर पधार गई थीं।

श्रीमती सुवर्णश्री महाराज सा. की चरितनायिका के प्रति अनन्य भक्ति थी। इतने दिनों वे गुर्वाज्ञा शिरोधार्य करके नागौर जयपुर आदि नगरों में रहीं। वहां चातुर्मास करके धर्म की ज्योति जागृत करती रहीं। अब आज्ञानुसार जोधपुर पहुँची। यद्यपि गुरुवर्या २ दिन में जोधपुर पहुंचने वाली थीं पर भक्ति का अतिरेक श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज साहब को नवकोश दूर तिवरी में खींच लाया। वे तिवरी में सम्मुख आ पहुंचीं, उस समय का इन गुरु शिष्याओं का मिलन दृश्य सचमुच ही अद्भुत था। श्रीमती सुवर्णश्रीजी म. स. अश्रुपूर्ण नेत्रों से चरणों में झुकी हुई



स्व० आचार्यदेवश्रीमज्जिन हरिसागर
सूरीश्वरजी म० सा०

हैं। हर्षातिरेक से कण्ठ अवरुद्ध हो गये हैं। कुछ भी शब्द मुख से निःसृत नहीं हो पा रहे।

उधर गुरुवर्या भी इन विनयवती सुशीला और सुयोग्य शिष्या के प्रति वात्सल्य की पराकाष्ठा से मूक सी बनी उन्हें चरणों से उठाने का प्रयत्न कर रही हैं।

थोड़ी देर बाद दोनों ही प्रकृतिस्थ हुईं और सुख प्रश्न तथा अनुभूत सुख दुख की संक्षेप से वार्त्ता करने लगीं। जोधपुर से कई भक्त श्रावक श्राविका भी कितने पैदल और कितने ही रेगिस्तानी जहाजों (ऊंटों) पर तथा बैलगाड़ियों में आये थे। तिंवरी वालों ने सबका आतिथ्य किया। ३ दिन तक तिंवरी मे निवास करके श्रीमती रत्नश्रीजी महाराज द्वारा प्रतिबोधित श्रावक श्राविकाओं को विशेषरूप से धर्मस्थिर किया। श्री जिन मन्दिर की सुव्यवस्था के लिए कई महत्वपूर्ण नवीन सुझाव रक्खे। वहां के लोग आपसे बड़े प्रभावित हुए और दर्शन पूजा सामायिक आदि के नियम धारण किये।

वहां से विहार करके आपने जोधपुर के समीप सूरसागर नामक स्थान पर एक दिन एक रात्रि ठहर कर फाल्गुन शुक्ला नवमी के दिन धूम धाम से जोधपुर शहर में प्रवेश किया।

जोधपुर में आपने अपनी वचन सुधा से कई भव्यजनों के विषय विष का शमन करके उन्हे वैराग्य रस रंगित किया।

वि. सं. १९५८ का चातुर्मास जोधपुर वालों के अत्यन्त भक्ति पूर्ण आग्रह से वहीं किया।

यहां पर व्याख्यान में आपने औपपातिक सूत्र और भावनाधिकार में परिशिष्ट पर्व नामक कथा ग्रन्थ पर रोचक प्रणाली से ऐसी अद्भुत व्याख्या प्रारम्भ की कि जोधपुर के सुशिक्षित श्रोतागण आश्चर्य मुग्ध बन गये। व्याख्यान में जनता भारी संख्या में उपस्थित होती थी। आपकी सरल सुबोध किन्तु सैद्धान्तिक रहस्यों से परिपूर्ण देशना और विभिन्न प्रकार के तत्वगर्भित मनोरञ्जक दृष्टान्त सुन कर लोगों के मुख से अनायास ही वाह वाह ! धन्य धन्य ! के शब्द निकल पड़ते थे।

आपके उपदेशों से प्रभावित हो कर श्री सूरजराज जी भण्डारी की कुमारी पुत्री द्वादशवर्षीया उमराव कुमारी ने विवाह न करने का प्रत्याख्यान कर लिया और दीक्षा लेने को प्रस्तुत हो गई।

पावस की सुन्दर ऋतु में साध्वी श्रेष्ठाओं ने मेघ से प्रतियोगिता करते हुए तपस्या की झड़ियां लगा दीं।

श्रीमती मेहताबश्रीजी महाराज ने श्रेयस्कर मासक्षमण तप किया, व विद्याश्रीजी महाराज ने १६ उपवास किये, श्रीमती सौभाग्य श्रीजी म. ने ८ उपवास, श्रीमती गौतमश्रीजी म. ने ६ उपवास, श्रीमती कनकश्रीजी महाराज ने ६ उपवास और श्रीमती फतेश्रीजी महाराज ने धर्मचक्र तप किया। (इस की विधि पूर्व उल्लिखित हो चुकी है)

श्रावक श्राविकाओं में अट्ठाइयां पंचरंगी आदि तपस्याएं

हुईं मास क्षमण के पारणे के अवसर पर जोधपुर के ही श्री सूरजराजजी भण्डारी की दशवर्षीया कुमारी कन्या उमरावकुंवर ने दीक्षा लेने की प्रतिज्ञा की। तथा श्री दूल्हेराजजी भनशाली ने आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार किया। और भी कई श्रावक श्राविकाओं ने यथाशक्ति व्रत प्रत्याख्यान लिए।

जोधपुर के धर्मात्मा श्रावकों ने इस शुभ प्रसंग पर पूजा प्रभावना आदि धर्मकार्यों में धन व्यय करके पुण्य सम्पादन किया।

चातुर्मास सानन्द व्यतीत हुआ। विहार का विचार होने लगा। पर फलोधी से श्रीसिद्धाचलजी तीर्थ की यात्रार्थ जाने वाला संघ आने वाला था अतः आप जोधपुर ही ठहर गईं। दूसरे कुछ वैरागिनियां फलोधी से आ रही थीं।

उधर श्रीमती शृंगारश्रीजी महाराज बीकानेर में सानन्द चातुर्मास करके फलोधी की ओर पधार गईं थीं।

जोधपुर के अग्रेसर श्रावक श्राविकाओं ने प्रार्थना की कि-फलोधी आदि में तो आप दीक्षा देती ही रहती हैं। इन वैरागिनियों की दीक्षा यहां ही कराइये।

गुरुवर्या ने स्वीकार कर लिया और वैरागिनियों तथा उनके कुटुम्बीजनों ने भी जोधपुर में दीक्षा होने की सम्मति व्यक्त की।

तदनुसार बड़ी धूम धाम से विक्रम सं. १९५८ मार्गशीर्ष मास की कृष्णा १२ के दिन रेखचन्दजी वैद की पुत्री, कस्तूरचन्दजी नौसाणी की धर्मपत्नी नानीबाई की दीक्षा हुई और नवल श्रीजी नाम स्थापन किया गया। अन्य वैरागिनियों के नाम से

की कन्या सुगनमलजी कानूंगा की विधवा पत्नी मगनी बाई। इन दोनों के नाम क्रमशः भक्ति श्रीजी, मेघश्रीजी रक्खे गये। ये तीनों ही श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज साहबा की शिष्याएं बनाई गईं।

फलोधी से श्री फूलचन्दजी गुलेछा १५० यात्रियों का संघ लेकर सिद्धाचलजी की यात्रा करने जा रहे थे। वे जोधपुर आ पहुंचे और चरितनायिका को साथ चलने की साग्रह प्रार्थना की। आपने फरमाया-मैं सिद्धाचल तीर्थाधिराज की यात्रा तो दो बार कर चुकी हूं अब उधर जाने की भावना नहीं है क्यों कि मैंने अभी तक केशरियाजी की यात्रा नहीं की, अबके उधर जाने का विचार है, इधर मेरी साथ की साध्वियों की भावना भी केशरियाजी की यात्रा करने की है। उन लोगों की भावना को भी सफल करना है। अतः हमें उधर जाना है। आप लोग सानन्द यात्रा करिये। वैसे अन्य पूज्य साधु साध्वी आपके संघ के साथ हैं ही। पाली तक हम भी साथ ही चलने की भावना रखती हैं। नागोर से संघ लेकर माणकचन्दजी खजांची की पुत्रियां गुलाबबाई और मघाबाई पाली में हमसे मिल जायेंगी। हमें उनके साथ केशरियाजी जाना पड़ेगा। उन्हें पूर्व ही वचन दिया जा चुका है। अतः मैं विवश हूं।

श्री फूलचन्दजी गुलेछा आपके इस निर्णय से हताश हो गये। वे बोले-जैसी श्रीमतीजी की मरजी! आप पधारतीं तो अत्यन्त उत्तम होता। हमारे भाग्य कहां? कि आप संघ में

पधारें। संघ के साथ आपने भी अपने शिष्या समूह सहित पाली के लिए प्रस्थान कर दिया। नागौर का ११० यात्रियों का संघ भी पाली में सम्मिलित हो गया। पाली श्रीसंघ ने सब का यथा योग्य स्वागत व आतिथ्य किया।

श्री केशरिया जी की यात्रा

चरितनायिका महोदया भी १६ शिष्याओं सहित संघ के साथ प्रस्थान करतीं गोडवाड़ के तीर्थों की यात्रा करतीं देसूरी की घाटी होकर जीलवाड़े की समतल भूमि में चलती हुई चैत्र कृष्ण एकादशी के दिन उदयपुर के समीप पहुँचीं। उदयपुर श्रीसंघ स्वागतार्थ सम्मुख आया। धूमधाम से नगर प्रवेश करके शहर के मन्दिरों के दर्शन करते हुए धर्मशाला में पधार कर देशना दी।

वहां आप को ज्ञात हुआ कि मंडवारिया से यात्री संघ ११० गाड़ियों में आरोहण करके श्रीकेशरियाजी की यात्रार्थ आ रहा है। अतः आप १० दिन उदयपुर ही ठहर गईं। संघ आने के पश्चात् दोनों संघ साथ ही रवाना हुए और चैत्र शुक्ला ६ के दिन श्री धुलेवा पहुँच कर श्री केशरियानाथ भगवान् के दर्शन करके आनन्दित हुए।

चरितनायिकादि ने भी प्रथम बार ही इस तीर्थ की यात्रा की थी, शीघ्रतापूर्वक मन्दिर में प्रवेश करते हुये निसिही (नैषिधिकी) का उच्चारण किया और अनन्त कान्ति से देदिप्यमान सुवर्ण के सिंहासन पर विराजमान आन्तरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त

करने वाले श्री आदिनाथ भगवान् के प्रतिबिम्ब के दर्शन करके अपूर्व भावना उच्छलित होने से रोमाञ्चयुक्त शरीर से पञ्चांग नमस्कार करते हुए इस प्रकार स्तुति की-

श्री तीर्थ नाथ ! भवतो ऽग्निशिखानुमक्त :,
सातङ्क शङ्क मभिशंक्य वपु मुपाङ्कः ।
नष्टः स्वयं द्रुततरं तत रङ्क भावं,
दूरे कथा ऽत्रतु तदीरित पत्रिपात. ॥ १ ॥
ज्ञानि त्वतो जगति यः प्रथितो ऽपि साक्षात,
संङ्गं सनातन महो पिशुनेन विभ्रत् ।
संस्तूयते वुधवरै रनुवासरं स
वर्ण्येत वर्णित गुणो गुणिनाऽनु केन ॥ २ ॥
श्री मन्यते प्रणिपताभि पतामि चांघ्रयो,
स्त्वां वा ऽऽलये सुकलये हृद्ये दयेच्छोः ।
त्वं रक्ष रक्ष मुहु रक्षर रक्ष रक्ष,
रक्षेति हर्ष सहितर्पभ मस्तवीत्सा ॥ ३ ॥

अर्थः- हे तीर्थनाथ ! आपके केशर से चर्चित शरीर को देखकर कामदेव भय और शंकापूर्वक अपने आपको दरिद्र-असमर्थ समझता हुआ शीघ्र ही पलायन कर गया। फिर उसके वाणों की तो बात ही क्या ? ॥ १ ॥

जगत् में ज्ञानी नाम से प्रसिद्ध भी साक्षात् पिशुन (केसर, मूर्ख) से नित्य संसर्ग रखते हुए ही विद्वानों से स्तुत-

प्रशंसित हैं, ऐसे वे श्री केशरियानाथ किस गुणी से वर्णन किये जा सकते हैं। अर्थात् उनके गुणों का वर्णन करने में कौन समर्थ है ? कोई भी नहीं ॥ २ ॥

हे स्वामिन्! मैं आपको प्रणाम करती हूं और आपके चरणों में पड़ती हूं। आपको अपने हृदयरूपी भवन में धारण करती हूं, हे दयावान्! मुक्ति साधक! आप मेरी रक्षा करें, बारंबार रक्षा करें। इस प्रकार हर्ष सहित गुरुवर्या ने भगवान् की स्तुति की।

चैत्री पूर्णिमा को वहां बड़ा भारी महोत्सव हुआ। संघपति ने पूजा प्रभावना, साधर्मिक वात्सल्य आदि धर्म कार्यों में विपुल द्रव्य व्यय करके पुण्योपार्ज्जन किया।

वैशाख वदि एकम को विहार करके क्रमशः प्रयाण करते हुए संघ सहित पांचवें दिन उदयपुर पधार गये

इस अवसर पर रतलाम से प्रसिद्ध वाफना परिवार की सदस्या सेठानी श्रीमती रूपकुंवर बाई भी श्री केशरिया जी की यात्रार्थ आई हुई थीं। आपके दर्शन करके बड़ी प्रभावित हुई और रतलाम पधारने की साग्रह प्रार्थना की। आपने स्वयं के लिए अस्वीकृति देते हुए श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज को भेजने की स्वीकृति प्रदान की और सात साध्वियों सहित उन्हें विहार करा दिया।

उदयपुर वालों की प्रार्थना से आपने वि सं. १९५९ का चातुर्मास उदयपुर ही किया।

आपका प्रवचन प्रतिदिन होने लगा। श्रोतृजन इस वैराग्य

गर्भित अथच मधुरवाणी से अत्यन्त प्रभावित हो कर चित्रवत् व्याख्यान श्रवण करते थे। सारे शहर मे आपकी प्रशंसा होने लगी।

मध्याह्न में भी आपने हरिविक्रम चरित्र, शालिभद्र चरित्र, चन्द्रलेखा चरित आदि नव रस युक्त कथाओं पर विवेचन किया जिसे श्रवण करने भारी संख्या में जनता आती थी। इन कथाओं के व्याज से धर्म तत्वामृत पिला कर आपने श्रोतृ वर्ग की संसारासक्ति में भारी कमी कर दी जिससे वे धार्मिक कार्यों मे अत्यन्त उत्साह रखने वाले हो गये।

इसी का प्रतिफल था कि उदयपुर में उस चोमासे मे भारी तपस्याएं हुईं।

तप का वर्णन निम्नाङ्कित है :—

स्वयं चरितनायिका ने अष्ट कर्मो का क्षयोपसम करने को अष्टाह्निका की, अर्थात् आठ उपवास किये।

श्रीमती नवल श्रीजी महाराज ने ३१ उपवास निरन्तर किये। श्रीमती रत्नश्रीजी महाराज ने नव उपवास का तप किया। श्रीमती महतावश्रीजी म. श्रीमती हुल्लासश्रीजी महाराज और उज्जवल श्रीजी महाराज ने अट्ठाई की तपस्या से आत्मा को उज्जवल बनाया। श्राविका समूह भी पश्चात्पद कब रहने वाला था। किसी ने २१ किसी ने १६ किसी ने १३ किसी ने ११ किसी ने १० तो किसी महानुभावा ने ६ उपवास किये। और अट्ठाई

की तपस्या तो कई धर्मात्मा श्राविकाओं ने की। इन तपस्याओं के अतिरिक्त पंचरंगी और विकीर्ण तपस्याएं भी खूब हुई। इन तपस्याओं के उपलक्ष में पूजा प्रभावनादि कार्य भी अत्यन्त उत्साह पूर्वक हुए।

इस प्रकार उदयपुर का अभूतपूर्व चातुर्मास बड़ी धूमधाम से आनन्द पूर्वक व्यतीत करके श्रीमतीजी मार्ग शीर्ष एकम को विहार कर दिया और २ कोश पर रहे हुए सीहार ग्राम में पधारीं। विरह से व्याकुल उदयपुर का श्रीसंघ भी साथ आया। दूसरे दिन वहां से विहार करके मेवाड़ देश में स्थित अनेक तीर्थों की यात्रा करते हुए अघाठ तीर्थ के दर्शन करके आनन्दित हुये। वहीं पर रात्रि में आपको ज्वर आया। कई दिनों तक ज्वर से पीड़ित रहीं। जब ज्वर का वेग कुछ कम होने लगा तो आपने वहां से विहार कर दिया और माघ कृष्ण में पुनः केशरियाजी पधार गईं। माघ कृष्ण त्रयोदशी भगवान ऋषभदेव का निर्वाण दिवस है। श्री ऋषभदेवजी का तीर्थ होने पर भी वहां निर्वाण महोत्सव का कोई विशेष आयोजन नहीं होता था। आपने प्रबन्धकों को प्रेरणा की इस तीर्थ में निर्वाण महोत्सव होना चाहिये। आपके इस सुझाव का उन लोगों ने स्वागत किया और खूब धूम धाम से निर्वाण दिवस मनाया गया। तब से अद्यापि पर्यन्त वहां निर्वाण दिवस मनाया जाता है। इसका श्रेय हमारी चरितनायिका को है। श्रीकेशरियाजी में कुछ दिन ठहर कर आप उदयपुर पधार गईं, कुछ दिन वहां ठहर कर विहार करने की

इच्छा की। विहार की प्रथम रात्रि के पिछले प्रहर में आपने स्वप्न देखा, कोई मुनि आपको सम्बोधित करके कह रहे थे-साध्वी श्रेष्ठे! दीक्षेच्छु को दीक्षा प्रदान किये बिना ही आज विहार कैसे कर रही हैं। ये शब्द सुन कर आप जागृत हो गईं। सम्भ्रम हर्ष और आश्चर्य से अभिभूत होकर सहसा नेत्र खोल कर बैठ गई और विचारने लगीं यह कौन बोला! कैसा स्वप्न देखा! यहां तो कभी दीक्षा की बात भी नहीं सुनी! किसी ने अपनी भावना ही व्यक्त नहीं की। अन्य स्थानों से भी इन दिनों में दीक्षा विषयक कोई समाचार नहीं आये। इस प्रकार के विचारों में आप उलझी हुई थीं कि उसी समय श्रीमती सुवर्ण श्रीजी महाराज सा. द्वारा प्रेषित जावरे से जवलचन्द जी छाजेड़ की पुत्री द्वादशवर्षीया कुमारी ठमी बाई उपस्थित होकर भक्ति सहित वन्दना नमस्कार करके प्रार्थना करने लगी-पूज्येश्वरि! महाराज साहिबा, मैं तो आपकी सेवा में दीक्षा लेने को आई हूं। चार महीने से श्रीमती सुवर्ण श्रीजी म. सा. के साथ ही थी। उन्होंने यहां दीक्षा लेने के लिए भेजा है, मेरी दीक्षा करवाइये। ऐसा कहती हुई साथ में लाया हुआ पत्र भी अपनी जेब से निकाल कर श्रीमती जी के कर कमलों में समर्पित कर दिया पत्र पढ़ कर आपने सारी बातें जान लीं और उक्त दीक्षार्थिनी को साशीर्वाद आश्वासन दिया कि दीक्षा देकर ही विहार करेंगी। अपने स्वप्न को तत्काल ही इस प्रकार फलीभूत होते देखकर आप विस्मयान्वित एवं आनन्दित हो गईं।

वहां के श्रीसंघ ने बड़े महोत्सव पूर्वक माघ शुक्ला ७ को इस बाई की दीक्षा कराई। 'चेतन श्रीजी' नाम रखा गया।

श्री केशरियानाथ भगवान् की यात्रार्थ सादड़ी से संघ आया था वह वापिस लौटते हुए उदयपुर में आया और आपसे सादड़ी पधारने की विनति की। आप श्रीमती जी को तो उधर पधारना ही था, अतः आपने सहर्ष स्वीकृति प्रदान कर दी और फाल्गुन कृष्ण द्वितीया को उदयपुर से संघ के साथ चलते हुए माघ कृ० १४ को आपने सानन्द राणकपुर में श्री त्रैलोक्यदीपक नामक विशाल और अद्भुत प्रासाद में विराजमान भगवान युगादिदेव के दर्शन करके जीवन को सार्थक किया। दूसरे दिन विहार करके सादड़ी में प्रवेश किया।



गोडवाड़ में उपकार

उधर मारवाड़ से श्रीमती श्रृंगार श्रीजी महाराज आदि ६ साध्वी जी तीन विरागिनियों सहित विहार करते हुए आपके दर्शनार्थ सादड़ी में फाल्गुन शुक्ला एकादशी को आ पहुंचे। आपके दर्शन करके अत्यन्त हर्षित होते हुए वन्दना की। इस समय आप ऐसी शोभित हो रही थीं मानो सत्ताइस नक्षत्रों सहित चन्द्रमा सुशोभित हो।

सादड़ी में आपने श्री सिद्धचक्र का आराधन खूब धूमधाम से कराया। श्रीपालचरित्र पर बहुत सुन्दर प्रवचन किया, जिसे सुनकर वहां की जनता अत्यन्त प्रभावित हुई और वैरागिनियों की दीक्षा सादड़ी में कराने की विनम्र आग्रह करने लगी।

दीक्षा का मुहूर्त वि. सं. १९९० के वैशाख मास की सप्तमी को शुभ लग्न में प्राप्त हुआ।

सादड़ी वालों ने उक्त मुहूर्त में बड़े महोत्सव पूर्वक दो विरागिनियों की दीक्षाएं करवाईं। उन विरागिनियों का परिचय इस प्रकार है:-

१. गौरजाबाई, पिता का नाम धनराज जी वैद, पति का नाम छोगमल जी बाफणा, जन्म स्थान-नवा गांव।

२. छगनबाई, पिता का नाम-ओम चन्दजी कोचर, पति का नाम समीरमलजी गुलेछा, जन्म स्थान-पोकरण।

दोनों के नाम क्रमशः गुणश्रीजी, हितश्रीजी स्थापन करके उन्हें लाभ श्रीजी म. की शिष्या घोपित किया गया।

अजमेर के श्री संघने सादड़ी मे आपको अजमेर पधारने की विनति की तथा जोधपुर वालों ने भी चातुर्मास कराने की साग्रह प्रार्थना की। दोनों स्थानों के कई व्यक्तियों का प्रतिनिधि मंडल विनति करने आया, देसूरी वाले भी प्रार्थना करने आये थे।

आपने स्वयं की असमर्थता प्रकट करते हुए श्रीमती शृंगार श्रीजी महाराज सा. को आठ साध्वियों सहित अजमेर, और श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज सा. को छह: साध्वियों सहित जोधपुर, श्रीमती विवेकश्रीजी महाराज को पांच साध्वियों सहित देसूरी भेजना स्वीकृत किया। तदनुसार उन्हें विहार भी करा दिया। और आप एक विरागिनी को दीक्षित करने वहीं विराजीं।

यह विरागिनी थी खीचन्द के प्रतापमलजी गुलेच्छा की पुत्री और वहीं के वृद्धिचन्दजी वोथरा की विधवा धर्मपत्नी माणकबाई। ज्येष्ठ शुक्ला ५ को इनकी दीक्षा भी खूब समारोह से हुई। माणकश्रीजी नाम दिया गया।

नारियलों की गांव में प्रभावना दी गई थी।

आपका विचार विहार करने का था, परन्तु सादड़ी वालोंने आपको चातुर्मास किये विना जाने ही नहीं दिया। चातुर्मास की विनति स्वीकृत कराके ही शान्त हुए।

श्रीमती सुवर्ण श्रीजी महाराज आदि ने जोधपुर में उमराव कुमारी को दीक्षित किया।

पाठकों को स्मरण होगा, जोधपुर में चरितनायिका के पास उमराव कुमारी ने दीक्षा लेने की प्रतिज्ञा की थी।

उक्त कुमारी तेरह वर्ष की हो गई थी। माता पिता के सहर्ष अनुमति देने पर दीक्षा समारोह आरम्भ हो गया। वैरागन बन्दोले जीमने लगी। वैरागन उमराव कुमारी के मुख पर एक विषैला स्फोटक हो गया। भारी दर्द था उसमें! इलाज हो रहा था, पक जाने पर भी फूटता ही न था। डाक्टर ने आपरेशन की राय दी किन्तु वैरागन ने नहीं कराया। दीक्षा मुहूर्त्त समीप आता जा रहा था। पीड़ा की व्याकुलता प्रतिदिन बढ़ रही थी। माता पिता ने कहा—इस मुहूर्त्त पर दीक्षा कैसे हो सकेगी? आगे हो जायेगी। वैरागन ठहरने को प्रस्तुत न थी। अन्त में दीक्षा उसी मुहूर्त्त मे कराने का निर्णय हुआ। वि. सं. १९६० आषाढ शुक्ला १० को प्रातः काल दीक्षा का वरघोड़ा खूब धूमधाम से निकला। शहर के मुख्य राजमार्गों से चलता हुआ वरघोड़ा नगर के बाह्य प्रदेश में स्थित प्रसिद्ध मुहताजी के मन्दिर में पहुँचा। वहीं पर नन्दी रचना की गई थी। श्रीमती सुवर्ण श्रीजी महाराज साहब आदि पूर्व ही वहां पधार गये थे।

रथ से उतर कर विरागिनी मन्दिर में विराजमान श्री पार्श्वनाथ भगवान् के दर्शन करके दीक्षा स्थान पर उपस्थित हुईं और सविधि वन्दना करके देववन्दन आदि विधिविधान के पश्चात् मुण्डन क्रिया से निवृत्त हो साध्वी वेश धारण करके दीक्षा धारण करने को प्रस्तुत हुई, हाथ में रजोहरण लेकर देव वन्दन

विधि करने को खड़ी थी कि क्षमा श्रमण सूत्रोच्चारण के समय रजोहरण की डांडी की ठेस लगने से उक्त स्फोटक फूट गया! उस में रहा शल्य जो काफी वड़ा था निकल गया जिससे पीड़ा एकदम शान्त हो गई और दीक्षा कार्य सानन्द सम्पन्न हुआ।

श्रीमती कनकश्रीजी महाराज के नाम की शिष्या घोषित करके श्रीमती उमंगश्रीजी म. नाम प्रदान किया गया।

दीक्षा प्रसंग पर जोधपुर के बड़े २ राज्याधिकारी उपस्थित थे। वे इस त्रयोदश वर्षीया कुमारी की दीक्षा से अत्यन्त प्रभावित हुए। अनेक भव्य महानुभावों ने यथाशक्ति व्रत नियम आदि ग्रहण किये। विरागिनी की लघुभगिनी केशरकुमारी ने भी दीक्षा लेने की प्रतिज्ञा की, तथा नवदीक्षिता की दोनों भुवा साहब जो स्थानकवासियों का मत मानती थीं, शुद्ध सनातन जैन धर्म की अनुयायिनी बनीं। साथ ही उनके पति आदि ने भी सम्यक्त्व धारण किया।

ये सव समाचार विस्तृत रूप से जोधपुर में विराजमान चरित-नायिका की दक्षिण भुजा स्वरूप महाप्रभावशालिनी श्रीमती सुवर्ण श्रीजी म. सा. ने सादड़ी में विराजमान अपनी पूज्येश्वरी को पत्र में लिखे जिन्हें पढ़ कर वे अत्यन्त प्रसन्न हुईं।

सादड़ी के चातुर्मास में आपने कर्म विपाक की विचित्रता के वर्णनों से पूर्ण श्री विपाक सूत्र पर प्रवचन आरम्भ किया तथा भावनाधिकार में वैराग्योत्पादक श्री यशोधर चरित आलोचनात्मक

शैली से वांच कर श्रोताजनों को कर्म वैचित्र्य, कृत अशुभ कर्म का दुर्विपाक और उस से भोगे जाने वाले दुखों का ऐसा हृदय-ग्राही वर्णन श्रवण कराया कि श्रोतृवर्ग चतुर्गति भ्रमण से कांप उठा और मुमुक्षु बन कर धर्मतत्पर हो गया। अनादि कालीन मोहमूर्च्छित आत्माएं जागृत होकर तप द्वारा कर्मेन्धन को भस्म कर देने के लिए विभिन्न प्रकार की तपस्याओं का आचरण करने को बद्ध प्रतिज्ञ हुईं।

साध्वी मण्डल में से श्रीमती विद्या श्रीजी महाराज ने तथा ज्योतिश्रीजी महाराज ने २१ शबल दोषों की आलोचना स्वरूप २१ उपवास का आदर्श तप किया।

श्रीमती रेवन्तश्रीजी महाराज ने नव उपवास, बाल साध्वी चेतन श्रीजी महाराजने आठ उपवास की तपस्या से आत्मा के कर्म मल को भस्म कर दिया।

श्राविकाओं में भी अभूतपूर्व तपस्या हुई जो इस प्रकार है:-

१ मासक्षमण

२१० अट्ठाइयां तथा पंचरंगी तपस्या, एकान्तर तप, चान्द्रायण तप आदि अनेक प्रकार की तपस्याएं करके आत्मा को उज्ज्वल बनाया। इन तपस्याओं के उपलक्ष में पूजा प्रभावना रात्रि जागरण साधर्मिक वात्सल्य आदि धर्म कृत्य भी अभूतपूर्व हुए।

सादड़ी का चातुर्मास निर्विघ्न पूर्ण करके आपने विहार कर दिया। आस पास के क्षेत्रों-धाणेराव, नाडोल, नाडलाई आदि की

यात्रा करते हुए वहां पर धर्म प्रचार का कार्य अपने व्याख्यानों द्वारा करके आपने शासन सेवा भी अभूतपूर्व की।

आप खीमेल में पधारीं, तत्रस्थ संघने आपका जोरदार स्वागत किया। प्रतिदिन व्याख्यान में पट्टगुरुप चरित्र बड़ी अनुपम शैली से फरमाती थीं, साथ ही सामाजिक कुरूढ़ियों से होने वाली हानियों के विषय में भी आप अच्छा प्रकाश डालती थीं जिस से वहां किसी के स्वर्गवास पर होने वाला रात्रि-रुदन बंद हो गया। तथा और भी कई कुरूढ़ियां-मिथ्यात्व सेवनादि का कई श्रावक श्राविकाओं ने त्याग कर दिया।

श्रीमती सुवर्ण श्रीजी महाराज भी जोधपुर का चातुर्मास सम्पूर्ण करके १० साध्वियों सहित वहां पधार गईं।

उनको साथ लेकर समस्त साध्वी मण्डल सहित आपने वहां से विहार कर दिया। प्रत्येक गांव में धर्मोपदेश रूपी जल की वर्षा करतीं, जनता के विषय कषायादि मल का प्रक्षालन करतीं क्रमशः शिवगंज पधारीं।

श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज ने अर्बुदगिरिराज तीर्थ की यात्रा करने की भावना व्यक्त की। अतः आपने जाने की आज्ञा प्रदान करके ११ साध्वियों सहित विहार करा दिया। वे आबू पधार गईं।

पाठकों को स्मरण होगा आपने पाटण में चातुर्मास किया था। वहां पर एक भव्यात्मा श्राविका को वैराग्य का रंग

लग गया। उसने अपनी भावना उस समय तो गुप्त रखी, किन्तु आपके विहार कर देने के पश्चात् आज्ञा प्राप्त करने का प्रयत्न किया। दो वर्ष के सतत प्रयत्न से परिवार वालों की आज्ञा प्राप्त करके यहां शिवगंज मे दीक्षा धारण करने आ गई। उसका साहस देख कर चरितनायिका ने सधन्यवाद दीक्षित करने की स्वीकृति प्रदान की।

वह श्राविका थी पोरवाड़ ज्ञातीय काजीशाह की लड़की, फतेचन्दजी की धर्मपत्नी जीवाबाई।

बड़े महोत्सवपूर्वक इन्हें वि. सं. १६६० माघ शुक्ला सप्तमी को शुभ मुहूर्त में भागवती दीक्षा देकर 'जयश्रीजी' इस शुभ नाम से अलंकृत किया।

इस शुभ प्रसंग के पश्चात् जालोर वालों की हार्दिक प्रार्थना स्वीकार करके आपने २३ शिष्याओं के परिवार सहित वहां से विहार कर दिया और ग्रामानुग्राम विहार करतीं, महावीर प्रभु के पवित्र त्याग मार्ग का प्रचार करतीं आपने फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को जालोर मे प्रवेश किया। जालोर की जनता ने हर्षविभोर हो आपका हार्दिक स्वागत किया।

आबू की यात्रा करके श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज आदि भी वहीं आपकी सेवा में उपस्थित हो गईं।

कई नगरों के श्रावक चातुर्मास की विनति लेकर उपस्थित हुए। उन लोगों की विनति स्वीकार करके यथासाध्य अन्य

साध्वियों को अन्य नगरों में भेजने का निर्णय करके जालोर वालों की विनति मानी हुई होने के कारण आपने १७ साध्वियों सहित जालोर में ही चातुर्मास करने का निश्चय किया।

श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज आदि सात को फलोधी भेज दिया तथा श्रीमती विवेकश्रीजी महाराज आदि ५ को आहोर चातुर्मास की आज्ञा प्रदान की। तदनुसार ये सब अपने गन्तव्य स्थान की ओर प्रस्थान कर गईं।

श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज ने शीघ्रता से प्रयाण कर फलोधी में पदार्पण किया।। वहां एक विरागिनी सुगनबाई, जेठमलजी वैद की लड़की, मगनमलजी कोचर की विधवा धर्मपत्नी केवल पन्द्रह वर्ष की अवस्था वाली थी। अन्य भी कई थीं पर अभी आज्ञा नहीं मिली थी, अतः वे तो इस समय दीक्षा न ले सकीं।

सुगनबाई की भागवती दीक्षा वि० सं० १९६१ के वैशाख मास में शुक्ला१० के दिन शुभ मुहूर्त में धूमधामसे हुई। मुक्ति की परम अभिलाषा से ही भव्य प्राणी संयम मार्ग के पथिक बनते हैं। अतएव इनका शुभ नाम भी 'मुक्तिश्रीजी' स्थापन किया। यह शुभ संवाद श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज साहब ने जालोर में विराजमान अपनी पूज्य गुरुवर्या को पत्र द्वारा निवेदन किए। तथा नवदीक्षिता को २ साध्वीजी के साथ जालोर भेज दिया।

चरितनायिका महोदया ने जालोर चातुर्मास में वैराग्यरस की सरिताका प्रवाह अखण्ड रूपसे प्रवाहित किया। व्याख्यानमें आप वैराग्यमय आख्यानों से पूर्ण श्री ज्ञातृधर्मकथांग सूत्र पर अनुपम

और स्पष्ट सरल व्याख्या करती थीं तथा भावनाधिकार में नवरस मय होते हुए भी शान्त रस में समाप्त होने वाला श्री हरिविक्रम चरित्र भी चित्ताकर्षक शैली में फरमाती थीं, जिसे सुनने आबाल वृद्ध, सभी जन आवश्यक कार्य छोड़ कर भी समय पर उपस्थित हो जाते थे और चित्रवत् एकाग्रमन से श्रवण करते थे।

आपके इन वैराग्यमय उपदेशों का तत्रस्थ जनता पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। वे भोगों से विरक्त से बन गये और तपस्या करने को प्रस्तुत होकर बड़े भावों सहित उत्तम तपस्याएं कीं जिनका वर्णन निम्नलिखित है—

श्रावक श्राविकाओं मे	ग्यारह	उपवास	११
,,	दश	,,	१०
,,	नव	,,	९
,,	अट्ठाइयां	,,	८०

पंचरंगी तपस्या तो चार वार हुई। कई भव्यात्माओं ने १२ व्रत, कई ने ७ व्रत, कई ने ५ अणुव्रत और कुछ विरक्त दम्पत्तियों ने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। ऐसा अभूतपूर्व तप हुआ।

हमारा पूज्या आर्यामण्डल कब पश्चात्पद रहने वाला था! स्वयं चरित्रनेत्री ने अष्टाह्निक उपवास किये, श्रीमती विद्याश्रीजी महाराज ने चतुर्विंशति तीर्थंकरों की आराधना स्वरूप २४ उपवास का उत्कृष्ट तप किया, श्रीमती महताबश्रीजी महाराज ने अट्ठाई,

श्रीमती रेवन्तश्रीजी महाराज ने सत्रह प्रकार के संयम की विशुद्धि के लिये १७ उपवास, श्रीमती नवलश्रीजी महाराज ने अट्ठाई, तथा नवदीक्षिता वालसाध्वी श्रीमती मुक्तिश्रीजी महाराज ने प्रथम वार ही नव उपवास का श्रेष्ठ तप किया।

जालोर वालों ने तपस्या और व्रत ग्रहण आदि के उपलक्ष में पूजाएं, प्रभावनाएं, अष्टाहिनकोत्सव, रात्रि जागरण और कई सार्धमिक वात्सल्य करके पुण्योपार्जित द्रव्य का पुण्य कार्यों में सद्व्यय करके पुण्यानुवन्धी पुण्य का संचय किया।

श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज साहव के वैराग्योत्पादक व्याख्यानों से फलोधी में एक नवोढ़ा—केवल एक मास ही विवाहित हुए व्यतीत हुआ था—सौ० चम्पावाई को वैराग्य का रंग लग गया। ये खीचन्द के रूपचन्दजी दूगड़ की पुत्री तथा रेखचन्दजी गुलेछा की धर्मपत्नी थीं। इन्होंने वड़े प्रयत्न से परिवार वालों से शीघ्र ही संयम धारण की अनुमति प्राप्त कर ली। श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज साहव के पास अभ्यास करने लगीं। आश्विन शुक्ला चतुर्दशी को वे गुरुवर्या के दर्शनार्थ जालोर आई थीं। जालोर की जनता इस नवविवाहिता का यह वैराग्य देखकर दंग रह गई। विस्मय से दांतों तले अंगुली दवा ली। आगेवान लोगों ने चरितनायिका से प्रार्थना की—महाराज साहिवा! इनकी दीक्षा तो यहां जालोर में कराइये। गुरुवर्या ने विरागनी के सम्वन्धियों की इच्छानुसार करने की वात निश्चित

की। जालोर श्री संघ ने खीचन्द वालों को पत्र देकर अपने यहां दीक्षा कराने की सहमति प्राप्त कर ली और दो मास पूर्व से ही तत्रस्थ श्री संघ इस समारोह की तैयारियों मे जुट गया।

जालोर वालों का उत्साह देखने योग्य था। जोर शोर से दीक्षा कराने की भावना से उन्होंने हजारों मनुष्यों के योग्य भोजन सामग्री का प्रबन्ध किया। भारत के सभी प्रदेशों के १२१ नगरों में आमन्त्रण पत्रिकाएं भेजी गईं।

मार्ग शुक्ला पूर्णिमा के दिन से विरागिनी वन्दोले जीमने लगी और विरागिनी को गीत गान तथा वाद्य यन्त्रों की ध्वनियुक्त प्रतिदिन हजारों नरनारी साथ चल कर उपाश्रय पहुंचाते थे। वहां प्रभावना वितीर्ण की जाती थी तथा रात्रि में भी वैराग्य विषयक गायन होते थे और प्रभावना दी जाती थी।

दीक्षा के मुहूर्त पोषी पूर्णिमा पर्यन्त नव-नव उत्सवों की परम्परा चलती रही। ऐसा उत्सव अद्यापि पर्यन्त हुई दीक्षाओं मे कहीं नहीं हुआ था। ७००० जनता बाहर से इस उत्सव पर सम्मिलित हुई थी। सारा जालोर धर्म नृपति की चमू से व्याप्त दृष्टिगोचर होता था।

विक्रम संवत् १९६१ पौष शुक्ला पूर्णिमा को अखण्ड सौभाग्यवती चम्पाबाई ने षट्काया के शस्त्ररूप गृहस्थाश्रम का परित्याग करके भगवान् महावीर प्रभु द्वारा निरूपित अनगार धर्म को स्वीकृत किया। जय-जय और धन्य-धन्य के मंगल घोष

पूर्वक इन महानुभावा का नाम 'श्रीमती वल्लभश्रीजी' प्रसिद्ध किया गया।

इस उत्सव में जालोर श्री संघ ने छः सहस्र रुपयों का सद्-व्यय करके चारित्र धर्म की अनुमोदना से आत्मा को पवित्र बनाया। विरागिनी के परिवार वालों ने जो इस शुभ प्रसंग पर द्रव्य व्यय किया वह उपर्युक्त राशि से अतिरिक्त था।

(वल्लभश्रीजी अत्यन्त विनयवती चारित्रनिष्ठ, बुद्धिमती और सुशीला साध्वीवर्या थीं पर अल्पायु होने के कारण शासन सेवा का लाभ न ले सकीं, वे आज विद्यमान नहीं हैं)

उधर इस दीक्षा से पूर्व खीचन्द में श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज साहबा के कर कमलों से दो विरागिनियों की दीक्षाएं धूमधाम से सम्पन्न हुईं।

फलोधी के श्री हीरालालजी वरड़िया की पुत्री, चुन्नीलालजी ललवानी की विधवा धर्मपत्नी चन्दाबाई।

लोहावट के श्री रतनचन्दजी लूणिया की द्वादशवर्षीया पुत्री, खीचन्द के श्री माणकलालजी बोथरा की बालविधवा धर्मपत्नी श्रीमती बीरांबाई।

चन्दाबाई की दीक्षा मार्गशीर्ष शु० ५ को हुई और 'चम्पाश्रीजी' नाम रखा गया।

बीरांबाई की दीक्षा पौष शुक्ला द्वादशी को हुई और 'विनयश्रीजी' अभिधान दिया गया।

जालोर में विराजित गुरुवर्या को ये समाचार यथासमय खाचन्द से श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज साहब ने प्रेषित किये थे ।

इस प्रकार भाग्यशालिनी चरित्रनायिका के शिष्या समुदाय में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही थी। सच है पुण्यवानों को अनायास ही वैभव की उपलब्धि होती रहती है।

हमारी चरितनायिका ने जालोर से माघ शुक्ला नवमी को विहार कर दिया। लोगों ने गद्गद् कण्ठ से भावपूर्ण विदा दी। तीन कोस तक हजारों नरनारी पहुँचाने आये, वहां पर साधर्मिक वात्सल्य हुआ।

वहां से बागरा होते हुए आप शिष्या मण्डली सहित सियाणा पधारे। श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज साहब भी फलोधी से विहार करके फाल्गुन सुदी एकादशी को सियाणा पधार गये, गुरुवर्या के दर्शन करके अत्यन्त आनन्दित हुए।

यहां से गुरुवर्या ने ११ साध्वियों सहित श्रीमती कनकश्रीजी महाराज साहब को जोधपुर भेज दिया।

सियाणा वालों की आग्रहपूर्ण प्रार्थना से सवा महीने वहां विराज कर धर्मोपदेश दिया। वहां से आपने सिरोही राज्य में भ्रमण करके उपदेश सरिता प्रवाहित करने के लिए विहार कर दिया। ग्रामानुग्राम विचरण करते देलन्दर में पधारे। एक विरागिनी लाधूबाई (फलोधी के जमनालालजी बच्छावत की पुत्री,

सौभाग्यमलजी नीमाणी की विधवा वधू) आपकी सेवा में ही कई दिनों से रह कर संयमी जीवन का अनुभव कर रही थीं।

देलन्दर के श्री संघ ने प्रार्थना की—इन विरागिनी महोदया की दीक्षा हमारे ग्राम में ही होनी चाहिये। हमें भी इससे लाभ होगा। इस आग्रह को स्वीकृत करके लाधूबाई को वहीं वि० सं० १९९२ चैत्र शुक्ला त्रयोदशी (महावीर जन्म जयन्ती) को भागवती प्रव्रज्या प्रदान की। इन्हें श्रीमती लब्धिश्रीजी नाम देकर कनकश्रीजी महाराज की शिष्या बनाई गयीं।

देलन्दर वालों ने इस शुभ प्रसंग पर २०००) रुपये व्यय करके उदारता का परिचय देने के साथ ही भवान्तर में ले जाने योग्य संबल का भी संग्रह कर लिया। नारियलों की प्रभावना और लापसी का जीमन हुआ था।

वहां से विहार करके बरलूट होते हुए जावाल में बड़ी धामधूम से प्रवेश किया। आपके प्रभावशाली व्यक्तित्व से आकर्षित होकर समीपस्थ ग्रामों की जनता दर्शन करने, उपदेश सुनने और अपने ग्राम में पधारने की विनति करने जावाल में प्रतिदिन आने लगी। इससे वहां मेला सा ही लगा रहने लगा। दर्शनार्थियों और धर्म पिपासु व्यक्तियों के आवागमन के कारण साध्वीवर्ग को आहार का समय भी स्वल्प ही मिलता था। पाड़ीव वालों की विनति से आप पाड़ीव पधारीं और कुछ दिन वहां धर्म सलिल की वर्षा की।

आप शिष्या समुदाय से परिवेष्टित हो व्याख्यान दे रही थीं कि सिरोही से श्री संघ का प्रतिनिधि मण्डल आपकी सेवा मे उपस्थित हुआ और चातुर्मास की आग्रहपूर्ण विनति की। उनके आग्रह को मानकर आपने सिरोही की ओर विहार कर दिया। २ आषाढ़ कृष्ण त्रयोदशी के मङ्गल प्रभात मे जय-जयकार की तुमुल ध्वनि के साथ सिरोही में प्रवेश किया। एक हजार नर-नारी आपके स्वागतार्थ शहर से बाहर उपस्थित थे। नगर में स्थित जैन शासन की उज्ज्वल कीर्त्ति के प्रतीक चक्रवर्ती सम्राट के चतुर्दश रत्नों के समान चतुर्दश जिन भवनों में विराजमान जिन बिम्बों के दर्शन से परम आल्हादित होते हुए आपने उपाश्रय मे पदार्पण किया। चतुरंगीय अध्ययन की प्रथम गाथा पर विवेचन करते हुए मानव जीवन, शास्त्र श्रवण, श्रद्धा भाव और धर्म साधना की दुर्लभता पर अच्छा प्रकाश डाला, श्रोतृ वर्ग विस्मयाभिभूत होकर परस्पर चर्चा करने लगे—इन साध्वीजी का जैसा नाम सुना था उससे भी ये अधिक ही हैं। हम लोग बड़े भाग्यवान हैं जो ऐसी त्याग वैराग्य और ज्ञान की साकार जंगम प्रतिमा हमारे शहर में पधारी हैं। हम तो इनका व्याख्यान सुनने हजार काम छोड़कर भी प्रतिदिन आया करेंगे।

सिरोही में आपके साथ काफी साध्वी समुदाय था और समीपस्थ ग्रामों के लोग अपने यहां चातुर्मास कराने को अत्यन्त लालायित होकर विनति कर रहे थे कि हमारे यहां भी आपकी

शिष्याओं को भेजकर हमारी सुप्त धर्मभावना को जाग्रत करिये।

तदनुसार आपने श्रीमती विवेकश्रीजी महाराज आदि पांच को जालोर चातुमासार्थ और श्रीमती फतेश्रीजी महाराज आदि पांच को देलन्दर चातुर्मासार्थ विहार करा दिया। चतुर्दश साध्वियों सहित आपने सिरोही में ही वर्षावास करने का निर्णय कर लिया। इससे संघ में आनन्द का समुद्र लहरें लेने लगा। एक श्राविका मूलीबाई को वैराग्य का उदय होने से उसने शीघ्र ही दीक्षा देने की प्रार्थना की, उसे जोधपुर भेज दिया। जोधपुर में श्रीमती सौभाग्यश्रीजी महाराज का चातुर्मास था। उन्होंने गुरुवर्या की आज्ञा शिरोधार्य करके सिरोही की इस वैरागन को—'जो सिरोही के नगराजजी सिरोहिया की पुत्री, केशरीमलजी की धर्मपत्नी थी' आषाढ़ शुक्ला सप्तमी को भागवती प्रव्रज्या प्रदान करके 'मोतीश्रीजी' के नाम से प्रसिद्ध किया।

वि० सं० १६६२ के इस सिरोही चातुर्मास में आपने श्री उत्तराध्ययन सूत्र पर व्याख्या आरम्भ की। हजारों की संख्या में श्रोताओंने जिनवाणी श्रवण करके अपने कर्ण युगल की सार्थकता के साथ ही आत्मा को भी पवित्र बनाया।

आपके तप त्यागमय जीवन व अमोघ प्रवचनों ने यहां तप की ज्योति प्रज्वलित कर दी। स्वयं चरितनायिका ने अट्ठाई तप, श्रीमती चम्पाश्रीजी महाराज ने ३१ उपवास, श्रीमती भक्ति-श्रीजी महाराज ने २६ उपवास की तपस्याएं कीं और श्रावक-

अधिकाओं में भी अट्ठाई, पंचरंगी आदि तपस्या हुई। इन तपस्याओं के उपलक्ष में श्री जिनेन्द्र पूजा, प्रभावना, सार्धमिक वात्सल्य, रात्रि जागरण आदि धार्मिक कार्यों मे न्यायोपार्जित द्रव्य का उदार मन से व्यय करके तत्रस्थ श्री संघ ने यश और सुख दोनों ही प्राप्त किये।

यहां पर आश्विन कृष्ण नवमी के दिन साधारण बीमारी से श्रीमती उज्ज्वलश्रीजी ने समाधिपूर्वक इस नश्वर शरीर को त्याग कर दिव्य शरीर धारण करने के लिए दिव्य लोक को प्रयाण कर दिया। काल योद्धा का यह आक्रमण झेलने की सामर्थ्य तो अवतारी महापुरुषों में भी नहीं होती, सामान्य जन की तो बात ही क्या? सिरोही संघ ने धूम से इनका अग्नि संस्कार किया तथा अष्टाह्निकोत्सव किया गया।

चातुर्मास पूर्ण हो जाने पर भी जालोर की एक विरागिनी हासीबाई को दीक्षा देने के लिए आपको कुछ दिन वहीं ठहरना पड़ा। उक्त विरागिनी की दीक्षा मार्ग शीर्ष शुक्ला एकादशी को शुभ क्षण में अत्यन्त महोत्सव पूर्वक हुई और 'हमामश्रीजी' नाम दिया गया।

इनकी दीक्षा से पूर्व जोधपुर में श्रीमती लाभश्रीजी महाराज साहब आदि २० साध्वीजी महाराज नागौर आदि से आकर एकत्रित हो गये थे। जोधपुर के ही श्री सूरजराजजी भंडारी अपनी धर्मपत्नी और पुत्री नववर्षीया केसरकुमारी के सहित

पारमेश्वरी प्रव्रज्या लेने को प्रस्तुत थे। श्री यशमुनिजी महाराज साहब भी वहीं पधारे हुए थे। एक अन्य वैरागी भी तथा श्रीमती लाभश्रीजी महाराज साहब की गृहस्थाश्रम की माता जीवीबाई भी दीक्षा लेने की भावना से फलोधी से जोधपुर आ गई थीं।

इन पांचों की ही दीक्षा धूमधाम से विक्रम संवत १६६२ के मार्गशीर्ष मास की शुक्ला षष्ठी के दिन शुभ विजय मुहूर्त्त में सम्पन्न हुई।

श्री सूरजराजजी साहब तथा अन्य वैरागी श्री यशमुनिजी महाराज के शिष्य बने। इनके नाम क्रमशः : श्री सौभाग्यमुनिजी और मेघमुनिजी रखे गये।

सौ० वैरागन इचरजबाई तथा उनकी कन्या केशरकुमारी के नाम 'अमृतश्रीजी व कल्याणश्रीजी दिये गए और जीवीबाई का नाम जीतश्रीजी रखा गया।

जोधपुर से दूसरे ही दिन श्रीमती लाभश्रीजी महाराज ने नव दीक्षिताओं और अन्य कई साध्वियों को साथ ले कर गुरुवर्या के पास आने के लिये सिरोही की ओर विहार कर दिया। वे अविच्छिन्न प्रयाण करते हुए शीघ्र ही सिरोही आ पहुंचे। इधर समीप ही रहे हुए विवेकश्रीजी महाराजादि भी आ गये। यहां पर ३६ साध्वीजी सम्मिलित हो गये थे। ये सभी वहां से विहार करके २ कोस पाड़ीव नामक गांव में पधारे।

पाठकों को स्मरण होगा ? उदयपुर से श्रीमती सुवर्णश्रीजी

महाराज साहिबा को रतलाम चोमासा करने भेज दिया था, रतलाम से पधारते हुए वे कुछ दिन खाचरोद शहर मे रहे और वहां उनकी वैराग्य गर्भित देशना से श्री हुकमीचन्दजी छाजेड़ को अपने पुत्र सहित दीक्षा लेने की भावना जाग्रत हुई। पूज्य सुवर्णश्रीजी महाराज साहबा ने उन्हें फलोधी तपस्वीराज गणाधीश श्रीमान् छगनसागरजी महाराज साहब की सेवा में रह कर ज्ञानाभ्यास करने की शुभ सम्मति दी, वे फलोधी आ गये थे। इनकी दीक्षा अब वि० सं० १९६२ के वैशाख मास की शुक्ला त्रयोदशी को फलोधी मे हुई, पत्र द्वारा यह वृत्त जान कर चरितनायिका आदि आर्या मण्डल को अत्यन्त आनन्द हुआ। उक्त मुनियों के नाम क्रमशः श्री पूर्णसागरजी महाराज साहब और क्षेमसागरजी महाराज साहब प्रसिद्ध किये गये।

गुरुवर्या ने वहां से श्रीमती विवेकश्रीजी महाराज साहब आदि को जावाल और श्रीमती कनकश्रीजी महाराज साहब आदि को डोडुवा नामक ग्राम भेज दिया था, क्यों कि वहां के लोगों ने प्रार्थना की थी। धर्म जिज्ञासु जनों की प्रार्थना को स्वीकार करना उचित ही था क्यों कि सहृदय सन्त जन परोपकारार्थ ही विहार आदि करते हैं। स्वयं चरितनायिका पूज्येश्वरी भी कालिन्द्री वालों की आग्रहपूर्ण प्रार्थना से वहां पधारीं।

इन तीनों ही स्थानों पर महान् उपकार हुआ। कालिन्द्री मे स्वयं चरितनायिका के तपस्या करने से ४०२१ उपवास की सर्वश्रेष्ठ तपस्या हुई।

यहां पर आपकी आज्ञा से विदुषी रत्न साध्वी शिरोमणि श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज साहब भी व्याख्यान दिया करती थीं।

कालिन्द्री में ३५ वर्ष से श्री संघ में वैमनस्य चला आ रहा था, श्रावक गण दो पार्टियां (दो धड़े) में विभक्त हो गये थे। एक पार्टी वाला दूसरी पार्टी वाले के यहां के समीप के सम्बन्धियों को भी नहीं भेजता था। पुत्री अपने पिता के यहां नहीं जा सकती थी तो दो सहोदर भ्राताओं का परस्पर वार्त्तालाप तक बन्द हो गया था। ऐसी परिस्थिति देख कर गुरुवर्या को बड़ा खेद हुआ। अधिकांश सहृदय व्यक्ति भी इस असह्य और तनावपूर्ण दशा से अत्यन्त परेशान थे। उन्होंने सारी परिस्थिति चरितनायिका को समझाई।

श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज साहिबा भी पास ही विराजमान थीं। उन्होंने कहा—फूट तो बहुत ही बुरी चीज है। इससे तो बड़े-बड़े साम्राज्य नष्ट हो जाते हैं। आप लोगों को इसे मिटाने का प्रयत्न करना चाहिये।

श्रावकगण बोले—महाराज साहिबा! अब तो हम आपसे ही आशा रखते हैं, आप ऐसा उपदेश दीजिये कि हमारे गांव की यह फूट मिट जाय और हम सब सभ्यता से रहे।

श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज साहिबा ने कहा—यथाशक्ति प्रयत्न करूंगी। सफलता गुरुदेव के हाथ है।

दूसरे दिन व्याख्यान मे इसी विषय पर बोलते हुए प्रकाश डाला गया।

एकता का महत्व समझाते हुए आपने कहा—

प्राचीन युग मे पारस्परिक ऐक्यता कितनी अधिक थी। आप लोगों ने मांडवगढ़ के विषय मे सुना होगा? वहां एक लक्ष्य के स्वाधिपति निवास करते थे, अन्य प्रदेशों मे रहने वाला कोई असहाय निर्धन स्वधर्मी बन्धु इस शहर मे आजीविकार्थ आ जाता तो प्रत्येक घर से उसे एक स्वर्ण मुद्रा और एक ईंट प्रदान की जाती थी जिससे वह ईंटों से मकान बनवा लेता और बची हुई मुद्राओं से व्यापार करता। इस प्रकार थोड़े दिनों मे वह वैभव सम्पन्न बन जाता था। यह तो एक छोटा सा दृष्टान्त है। शास्त्रों मे भी ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं। बड़े-बड़े सार्थवाह सेठ-साहूकार जब विदेशों मे व्यापारार्थ जाते थे तो अपने नगर मे घोषणा करवाते थे कि जिन्हें हमारे साथ चलना हो वह तैयार हो जाय, जिनके पास मार्ग व्यय नहीं होगा उन्हे मार्ग व्यय दिया जायगा। जिनके पास व्यापार करने को धन नहीं होगा उन्हे धन दिया जायगा। कितनी उपकार बुद्धि! कितना स्वधर्मीवात्सल्य!! कैसा बन्धुत्व!!! किन्तु आज के युग मे तो जिधर दृष्टिपात करो फूट, ईर्ष्या और विद्वेष ही दृष्टिगोचर होता है। एक ही देश, नगर और गांव में रहने वाले, एक ही धर्म को मानने वाले, अरे एक ही उदर से जन्म लेने वाले भी परस्पर प्रेम से

नहीं रह सकते। इतना अधिक मनोमालिन्य हो जाता है कि कभी कभी युद्ध की सी नौबत आ जाती है। कोर्ट तक पहुँचना तो आजकल साधारण बात हो गई है। इसी फूट के कारण भारतवर्ष सैकड़ों वर्षों से पराधीन बना हुआ है। पृथ्वीराज और जयचन्द की फूट ने ही भारत को परतन्त्र बनाया था। इसका फल आजतक भारतवासियों को भोगना पड़ रहा है। सैकड़ों वर्षों तक मुसलमानों का प्रभुत्व रहा जिससे भारत की आदर्श संस्कृति, धार्मिकता, नैतिकता आदि का ह्रास होता गया। फिर हिन्दुओं की इस फूट ने ही अङ्गरेजों का साहस बढ़ाया और व्यापारार्थ आये हुए विदेशी देश के मालिक बन बैठे। रहा-सहा धन बल, ज्ञान बल और ऐक्य बल भी नष्ट हो गया। आध्यात्मिक भावनाओं को तो स्थान रहे ही कहां? जब कि मानव मन में से नैतिकता के मूल्य पलायन करते जा रहे हैं, मनुष्यता भी नाता तोड़ कर चली जा रही है। मनुष्य अब भी चेत जाय तो कितना अच्छा हो?

एकता में एक दिव्य शक्ति होती है। आप जानते हैं कि छोटे-छोटे रेशों को जोड़ कर मजबूत रस्सी बनाई जाती है। वह रस्सी भारी से भारी बोझ उठाने में, बलवान् गजराज को भी बांधने में समर्थ हो जाती है। अन्य जातियों और समुदायों की ओर दृष्टि डालिये। कैसी पारस्परिक प्रीति है! कैसा आपस में सहयोग है। भाई-भाई का कैसा अटूट प्रेम है! एक-दूसरे के सुख-दुख में कितनी सहानुभूति है। स्वधर्मी बन्धु की उन्नति से कितनी अधिक

प्रसन्नता होती है ? एक पर विपत्ति आ जाने से सारा समुदाय उसे दूर करने को कटिबद्ध हो जाता है। वास्तव में जागतिक जीवन पारस्परिक सहयोग पर ही निर्भर है। विना अन्य जनों के सहयोग के प्राणियों को एक क्षण भी जीवन धारण करना कठिन हो जाय। आप और हम सभी संसार के विभिन्न कार्यकर्त्ताओं के सहयोग और भौतिक तत्व—पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाशादि की सहायता से पृथ्वी पर विद्यमान रह रहे हैं। इनमें से एक भी अपना सहयोग देना बन्द कर दे तो जीवित रहना असम्भव है।

एक ही धर्म के अनुयायियों में मनोमालिन्य होना, धर्म को कलंकित करना है। भगवान तीर्थंकर देवों का धर्म कषाय रहते आराधन नहीं किया जा सकता। धर्म रूपी हर्म्य में प्रवेश करने का प्रथम द्वार सम्यकत्व है। आपने सुना होगा कि जब तक आत्मा में अनन्तानुबन्धी क्रोधमान माया लोभ रूप कषाय का भूत रहता है और गलत मान्यताएं रहती हैं तब तक सम्यक्त्व रत्न की प्राप्ति नहीं हो सकती। श्रावक का पद तो सम्यक्त्वी से ऊंचा होता है। सम्यक्त्वी भी एक वर्ष से अधिक कषाय को रखे तो सम्यक्त्व भ्रष्ट हो जाता है। श्रावक तो कषाय रख ही नहीं सकता। यदि रखता है तो श्रावक धर्म से पतित होता है।

आप लोग जैन धर्म के उपासक होकर इतने वर्षों से पारस्परिक विद्वेष रख रहे हैं, गांव मे दो पार्टियां हो रही हैं। यह

पत्नी सौभाग्यवती युवती सोनीबाई आपके वैराग्यरंजित उपदेश से संसार से विरक्त हो गई थी और संयम धारण करने की उत्कट भावना से पति से आज्ञा प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। बड़ी कठिनता से इन विरागिनी को संयमी जीवन ग्रहण करने की अनुमति प्राप्त हो सकी। (सिरोही के अग्रगण्य नेताओं ने सोनीबाई की सहायता की। यह सब प्रभाव पुण्यशालिनी चरितनायिका के पुण्य का ही था। इन्द्रमलजी अत्यन्त हिंस्र व्यक्ति था। अपनी पत्नी पर उसने घातक हमला कर दिया था, साध्वी वर्ग पर भी आक्रमण की घात में रहता था। कई श्रद्धालु जन इन्द्रमलजी को गुरुवर्या के पास ले आये। पूजनीया चरितनायिका और श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज साहबा के अव्यर्थ उपदेशों ने इस व्यक्ति का हृदय परिवर्तन कर दिया और सोनीबाई को सहर्ष आज्ञा दे दी) पर दीक्षा वहां करने में विघ्न की सम्भावना थी अतः सिरोही की ओर विहार कर दिया और वि० सं० १९९३ के वैशाख मास की शुक्ला सप्तमी के दिन प्रशस्त मुहूर्त में बड़े समारोहपूर्वक विरागिनी सोनीबाई ने चारित्र धारण किया। ये श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज साहिबा की शिष्या बनीं। इनका नाम गुणानुरूप 'सत्यश्रीजी' रखा गया, क्योंकि 'सत्य की सदा जय होती है' यह प्रत्यक्ष प्रमाण इन्होंने प्रस्तुत किया था।

सिरोही की एक विरागिनी कुंकुमबाई की दीक्षा, इन सोनीबाई की दीक्षा से एक दिन पूर्व फलोधी में हो चुकी थी। कुंकुम श्रीजी नाम प्रदान किया गया था।

कुंकुमबाई सिरोही निवासी चैनाजी की पुत्री थी, पाड़ीव में चिमनाजी के साथ विवाह हुआ था, अल्पकाल के बाद ही वैधव्य का वज्रपात हो गया। ये वैसे भी धर्मप्रेमिणी थीं ही। और अब तो विशेष प्रकार से ज्ञान-ध्यान, तप-जप में लीन रहती हुईं योग्य गुरुवर्या की प्रतीक्षा कर रही थीं। इधर हमारी स्वनामधन्या संयम, तप और श्रुत की साकार प्रतिमा का सुयोग मिला तो वे संयम धारण की चिर प्रतीक्षित भावना को सफल करने के लिए कटिबद्ध हो गईं। सिरोही में इस शुभ कार्य मे विघ्न की आशङ्का से गुरुवर्या ने कुंकुमबाई को फलोधी भेज दिया था। वहां इनकी दीक्षा वि० सं० १९६३ के वैशाख मास की शुक्ला षष्ठी को श्रीमती शृङ्गारश्रीजी महाराज साहब आदि के तत्त्वावधान में सानन्द सम्पन्न हो गई। सिरोही में पत्र द्वारा यह शुभ समाचार मिल गये थे।

सिरोही में इस प्रकार दीक्षा हो जाने पर शिवगंज वालों की प्रार्थना से वहां पधारे। शिवगंज में कई वर्षो से साधु-साध्वियों के चातुर्मास नहीं हो रहे थे। अतः वहां की जनता में धार्मिक कार्यो का उत्साह मन्द हो गया था। वहां जाने से अधिक उपकार की सम्भावना थी। इसीलिए लाय वालों का अतीव आग्रह होने पर भी उनकी विनति स्वीकृत न करके आपने शिवगंज में वर्षावास करना उचित समझा।

जालोर वालों का आग्रह होने से श्रीमती सुवर्णश्रीजी महा-

नहीं रहा। उन्होंने पंचरंगी तप द्वारा मन्मथ की वाहिनी पर विजय प्राप्त की।

मोतीलालजी आदि ४ श्रावक श्रेष्ठों ने सपत्नीक आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। इस उपलक्ष में पूजाएं, प्रभावनाएं, नवकारसी के जीमन आदि पुण्य कार्यों में तत्रस्थ श्रावकों ने उदारतापूर्वक पुष्कल द्रव्य का व्यय किया।

यह तपस्विनी आर्याओं का समूह जावाल से विहार करके वरलुट ग्राम प्रस्थान कर गया। वहां भी व्याख्यानों की तथा तपस्यादि धर्म कार्यो की खूब धूम रही। पंचरंगी तप हुआ और इस तप के उपलक्ष में अष्टाह्निकोत्सव भी खूब ठाठ से किया गया। यहां से आप लाय नामक ग्राम को पधारीं। वहां पर भी नवरंगी तप हुआ। करीब एक पक्ष तक वहां धर्मामृत की वर्षा करके आपने विहार कर दिया। दो कोस पहुंचे होंगे कि पीछे से कितने ही लोगों के आने की आहट मिली, वे लोग दूर से ही आपको ठहरने का संकेत करते हुये शीघ्रता से मार्गातिक्रमण कर रहे थे।

इस प्रकार इन लोगों को आते देख कर आप सपरिवार ठहर गईं। आपके मन में कई प्रकार के सङ्कल्प विकल्प उत्पन्न होने लगे। ये लोग इस प्रकार क्यों चले आ रहे हैं? इत्यादि।

इतने में ही श्रावक मण्डली सम्मुख आकर नमस्कारपूर्वक प्रार्थना करने लगी—आप सदृश भव समुद्र तरणी हमारे देश में पधार कर, हमारे ग्राम में चातुर्मास न करके योंही पधार रही

हैं। ऐसा कैसे हो सकता है? आपको पुनः गांव में पधारना पड़ेगा। हम आपको आगे किसी भी प्रकार विहार न करने देंगे।

इस हार्दिक प्रार्थना की आप उपेक्षा न कर सकीं और पुनः लाय ग्राम में पधारीं। वहां पर श्री सिद्धचक्र तप का आराधन करवाया। श्रीपाल महाराजा का बोधदायक आख्यान ऐसी अद्-भुत शैली से फरमाती थीं कि श्रोतृजन मन्त्रमुग्ध से एकाग्र चित्त होकर श्रवण करके अत्यन्त हर्षित होते थे।

आपकी अमोघ देशना ने यहां भी एक भव्य व्यक्ति के जीवन में परिवर्त्तन कर दिया। श्री भमूतमलजी ने भोगों से पराङ् मुख होकर भागवती प्रव्रज्या धारण करने का विचार व्यक्त किया। आपने इन्हें लोहावट में गुरुदेव श्रीमान त्रैलोक्यसागरजी महा-राज साहब के चरणों में जाने की शुभ सम्मति दी। तद्नुसार वे लोहावट चले गये। और संयम योग्य विधि विधान सीख लेने के पश्चात् आषाढ़ में शुक्ला दशमी के दिन इनकी दीक्षा हुई। श्रीमान् त्रैलोक्यसागरजी महाराज साहब का शिष्यत्व अङ्गीकार करके 'रूपसागरजी' नाम से प्रसिद्ध हुए।

चातुर्मास की अत्यन्त आग्रहपूर्ण विनति होने पर भी आपने इतने मास पूर्व स्वीकृत करना उचित न समझा और वैशाख कृष्ण ५ को वहां से विहार करके सोनीबाई की प्रार्थना से पुनः जावाल पधार गये।

जावाल निवासी प्रेमचन्दजी की सुपुत्री इन्दरचन्दजी की धर्म

कितनी लज्जास्पद स्थिति है ? इसे आप स्वयं ही विचारिये। जो जैनधर्म प्राणिमात्र से मैत्री रखने का उपदेश देता है, विरोधी पर भी माध्यस्थ भावना रखने की आज्ञा दे रहा है, उसके अनुयायी इतना पारस्परिक वैरभाव धारण करते रहें कि आपस में बोलचाल भी बन्द हो जाय तो उनका श्रावकत्व तो दूर रहा, सम्यक्त्व भी रहना असम्भव ही है।

संघ के अग्रगण्य व्यक्ति ध्यानपूर्वक इस भाषण को सुन रहे थे। उन्हें आपके व्याख्यान से अपनी स्थिति का भान हुआ, उनका हृदय द्रवित होने लगा। इस करुण और पतित दशा का ध्यान करके वे लोग अत्यन्त लज्जित हो कर अधोमुख बैठे थे। उनके कर्णकुहरों में श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज साहब का अन्तिम वाक्य "श्रावकत्व तो दूर रहा, सम्यक्त्व भी रहना असम्भव ही है।" गूंज रहा था।

वे लोग नम्रतापूर्वक उठकर बोले—आज से हम पारस्परिक क्षमा-याचना कर लेते हैं। भविष्य में भी कभी फूट पड़े, ऐसा वातावरण न बनने देंगे। फूट डालने की कोशिश करने वालों की बातों को भी नहीं मानेंगे। एक दूसरे को सहोदर भाई के समान समझते हुए रहेंगे।

इस प्रकार ३५ वर्ष से चला आने वाला वैमनस्य क्षण में ही हो गया। दोनों पार्टियों वालों ने परस्पर क्षमा याचना करके मालिन्य और फूट को देश निकाला दे दिया।

इस अद्भुत प्रभाव को देखकर जनता ने धन्य-धन्य के उद्घोष से आकाश को भी गुञ्जा दिया। जय-जय निनाद से दसों दिशाएं मुखरित हो उठीं।

यह मेल-मिलाप वाली बात समीपस्थ ग्रामों में भी प्रसृत हो गई। कई ग्रामों के व्यक्ति आपके दर्शनार्थ वहां एकत्रित हो गये थे। वे इस अद्भुत प्रभाव को देखकर विस्मय और हर्ष से अभिभूत हो गए। आपकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगे।

कालिन्द्री और सिरोही के श्री सघ ने श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज साहबा का इस प्रयास के लिए हार्दिक अभिनन्दन करते हुए एक 'मान-पत्र' अर्पण किया जो इसी चरित्र के परिशिष्ट सं०१ रूप में अक्षरशः प्रकाशित है। पाठक वहां देखने का कष्ट करें।

इस प्रकार कालिन्द्री में जैन शासन की विजय दुन्दुभि निनादित करके जावाल वालों की प्रार्थना से आप अपने शिष्यामण्डल सहित जावाल में पधारीं। वहां भी आपने उपदेशामृत की अविरल वर्षा की।

फाल्गुन की वसन्त ऋतु में वहां अभूतपूर्व तपस्याएं हुईं। वर्षा काल में तो तपस्याएं होती ही हैं, वसन्त की मादक ऋतु में यहां के श्रद्धालु व्यक्तियों ने तपस्या करके मोहराजा के सेनापति कामदेव को पराजित कर दिया। यह भी चरितनायिका के वैराग्य रसपूर्ण व्याख्यान की अलौकिक शक्ति का प्रभाव था।

श्राविकाओं में नवरंगी तप हुआ, श्रावक वर्ग भी पश्चात् पद

राज साहब आदि ११ को वहां भेज दिया तथा श्रीमती लाभश्रीजी महाराज साहब आदि ५ को आहोर भेजा। आप १२ साध्वियों सहित शिवगंज में ही विराजीं।

यहां व्याख्यान में आप उत्तम अर्थों से अलंकृत विषयी प्राणियों के विषय विष को दूर करने वाले अनेक आख्यानों से पूर्ण श्री उत्तराध्ययन सूत्र की उत्तम व्याख्या करती थीं, भावनाधिकार में श्री स्थूलिभद्र चरित्र फरमाती थीं। आपकी व्याख्याशैली अत्यधिक कर्णप्रिय थी ही, साथ में बोधदायक उत्तम दृष्टांत भी मनोविनोद के साथ ही श्रोतृजनों को नैतिक शिक्षा प्रदान करने वाले दिया करती थी।

तपस्या की तो ऐसी अविरल वर्षा हुई कि दस हजार प्रकीर्ण उपवास हुये। स्वयं चरितनायिका ने अष्टाह्निक उपवास किये, श्रीमती अमृतश्रीजी महाराज ने मासक्षमण की श्रेष्ठ तपस्या की। श्राविकाओं में नवरंगी तप हुआ तथा श्रावकवर्ग में पंचरंगी तप हुआ।

उक्त तपस्या के उपलक्ष में पूजाएं, प्रभावनाएं, रात्रि जागरण, प्रभु भक्ति, साधर्मिवात्सल्य आदि पुण्य कार्यों में तत्रस्थ समाज ने स्वोपार्जित द्रव्य का सद्व्यय करके पुण्य और यश सम्पादन किया।

भोगभुजङ्गों की भयङ्करता का तथा परिणाम दुष्टता का विचार करके ५ दम्पत्तियों ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अङ्गीकार

किया। अन्य धर्मात्मा जनों ने भी यथाशक्ति व्रत नियम प्रत्याख्यान आदि लेकर मानव जन्म को सार्थक करने के साथ ही अपर जनों के सम्मुख आदर्श प्रस्तुत किया।

वि० संवत् १९६३ का यह चातुर्मास सभी दृष्टियों से प्रशंससनीय रहा। वर्षाकाल निर्विघ्न समाप्त करके तीन सौ पुरुषों और संख्यातीत महिलाओं के साथ विहार करके ३ कोस पर स्थित कोटड़ा ग्राम में पधारीं।

कोटड़ा में भगवान् ऋषभदेव के दर्शन पाकर अत्यन्त आनन्दित होते हुए प्रभु आदीश्वर की मधुर वाणी से भक्तिपूर्वक स्तुति की।

श्री ऋषभदेव स्तुति

(शिखरिणी वृतम्)

पुरा त्वं भोः कस्मादपि धरसि न स्माऽगति वलिनो,
महा शत्रोः स्वामिन्नभि भव मकामिञ्जितरियो ॥
अमुष्मादाशंके ऋहु समुचितं केवलिपते !
तदा ऽऽ जन्मादानात्न्यय भिभवता नाभि भवता ॥१॥
अपूर्वं तेजः क्वाऽमृत जगदधीशस्य भवतो,
वपुष्यान्वा कुत्र प्रभववु नुतत्राऽपि मनुजः।
अहं तत्राप्यस्मि प्रजित मद नारी जड़मतिः,
कथंकारं स्तूयां क्वनु गिरि गुरौ पङ्गु गमनम् ॥२॥

अर्थ—हे कामरहित ! हे जित शस्त्रो ! पहले आप अत्यन्त वलवान् शत्रुओं के द्वारा भी तिरस्कार को प्राप्त नहीं हुये, इसी लिये हे तीर्थंकर देव मैं आशङ्का करती हूं आपने जन्म से ही नाभिभवत्व स्वीकार किया है। नाभि नृपति के पुत्र होने से नाभिभव तो हैं ही।

कवि उत्प्रेक्षा करता है कि आपने कभी किसी से तिरस्कार पाया ही नहीं। अतएव आपका नाभिभव विशेषण उचित ही है ॥१॥

हे मद को जीतने वाले प्रभो ! मोक्षरूप लोक के अधिपते ! आपका तेज कहां ? और अन्य शरीरधारी कहां ? उनमें मनुष्य की क्या शक्ति ! फिर मैं तो जड़ बुद्धि वाली सामान्य स्त्री हूं कैसे आपकी स्तुति करूं ? महा गिरिराज पर पङ्गु कैसे जा सकता है ? सारांश कि आप तो अनन्त शक्ति वाले और अनन्त गुण वाले हैं। मैं जड़मति नारी उन गुणों की स्तुति करने में कैसे समर्थ हो सकती हूं ? अर्थात् सर्वथा नहीं हो सकती ॥२॥

आपके द्वारा की हुई उपर्युक्त स्तुति को तथा अन्य भी कई स्तवनादि को सब लोगों ने सुना और भक्ति पूर्वक चैत्यवन्दन आदि विधि सम्पन्न की।

तदनन्तर उपाश्रय में आपका सरस सुवाध प्रवचन हुआ। मध्याह्न में, जिनमन्दिर में निनाणु प्रकार की पूजा हुई। प्रभावना वितरित की गई तथा स्वधर्मिवात्सल्य हुआ।

वहां से प्रस्थान करके आप भारूंदा नामक ग्राम में पधारीं। साध्वी मण्डल तथा भक्त श्रावक-श्राविकाओं का समूह तो साथ था ही। उनमें से श्रावक-श्राविका वर्ग तो यहां तक पहुँचा कर अपने अपने ग्राम को चला गया। भारूंदा वालों के अत्यन्त आग्रह से आपने दस दिन पर्यन्त वहीं स्थिरता की। साधुजन जहां अधिक उपकार की सम्भावना देखते हैं वहां ठहर भी जाते हैं। वहां पर कई भव्य जनों ने व्रत, नियम आदि धारण किये।

वहां से आप पावटा पधारीं। पावटा में भी श्री ऋषभदेव भगवान् का विशाल और ऊंचे शिखर वाला प्रासाद है। भगवान् ऋषभदेव की मनोहर प्रतिमा के दर्शन करके अत्यन्त हर्षित हुए और भक्ति-भाव पूर्वक कई प्रकार स्तुति की। यहां अधिक न ठहर कर आपने तखतगढ़ वालों का आग्रह होने से विहार कर दिया और तखतगढ़ मे धामधूम से प्रवेश करके वहां के चैत्य में विराजित प्रभु प्रतिमा के आगे चैत्यवन्दन किया।

यहां आपको खेदजनक समाचार मिले कि गुरुवर्या श्रीमती मगनश्रीजी महाराज साहब का फलोधी में मार्ग शुक्ला १ को समाधिपूर्वक स्वर्गवास हो गया। आपको इस समाचार से भारी खेद हुआ। अधिक दु.ख तो यह रह गया कि आप अन्तिम समय में अपनी परमोपकारिणी गुरुवर्या के दर्शन और सेवा से वंचित रह गईं। विशेप रोगादि के समाचार थे नहीं। इधर सिरोही आदि ग्रामों में श्री संघ के आग्रह से ठहरना पड़ा। आपका

विचार फलोधी जाने का होते हुए भी जा नहीं सकीं। वैसे गुरुवर्या महोदया की सेवा में आपकी शिष्याएं श्रीमती शृङ्गारश्रीजी महाराज आदि फलोधी में थीं ही। आप समीप नहीं थीं, इसका आपको हार्दिक दुःख हुआ। दूसरे पूज्यपाद तपस्वीवर का आदेश विदेशों में विचर कर धर्म प्रचार करने का था। अतः आपको विहार करना पड़ा और आप दूर रह गईं।

देववन्दन आदि क्रियाएं की गईं। अष्टाह्निकोत्सव कराया गया।

श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज साहबादि भी यहीं पधार गये। शिवगंज के श्री संघ ने आपको पुनः शिवगंज पधारने की प्रार्थना की। वहां पर नन्दबाई नामक एक विरागिनी दीक्षा लेने को प्रस्तुत थी और उनके सम्बन्धियों की भावना अपने ग्राम में ही दीक्षा-महोत्सव कराने की थी, अतः आप २८ साध्वियों के परिवार सहित शिवगंज पधारीं। श्रीमती नन्दबाई प्रेमचन्दजी पोरवाड़ की धर्मपत्नी और पालड़ी वाले मालाजी की सुपुत्री थीं। इनकी दीक्षा बड़े समारोह पूर्वक वि० सं० १९६२ की पौष कृष्णा अष्टमी को हुई। इन्हें मणिश्रीजी के नाम से विभूषित किया गया।

इस अवसर पर स्वनामधन्य तपस्वीवर मोहनलालजी महाराज के सुशिष्य श्री यशमुनिजी महाराज भी शिवगंज में पधारे हुए थे। इन्हीं के तत्वावधान में पारमेश्वरी प्रव्रज्या का समारोह

सम्पन्न हुआ। उक्त मुनिवर्य आपसे मिलकर अत्यन्त आनन्दित हुए। और आपकी योग्यता, विनयशीलता, विद्वत्ता एवं प्रभावशालिता की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

यहां से आपने श्रीमती लाभश्रीजी महाराज साहबा को पो०कृ० १ को नवदीक्षिताओं की बड़ी दीक्षा कराने के लिए सात साध्वियों सहित फलोधी जाने के लिए विहार करा दिया और आपने भी माघ कृष्ण पंचमी को विहार कर दिया। पांच कोस पर बीसलपुर नामक ग्राम में पधारीं। वहां के संघ का आग्रह स्वीकृत कर पांच दिन रहकर धर्म-देशना से उन्हें भी सन्तुष्ट किया।

वहां से विहार करके बीजापुर में राता महावीर स्वामी के दर्शन करके नाणा गांव में विराजित जीवत् महावीर प्रभु की यात्रा की। पश्चात् सेवाड़ी होते हुए बाली नामक ग्राम में पधारीं। बाली में दो दिन धर्मोपदेश देकर श्री पार्श्वनाथ भगवान् के दर्शनार्थ सेवाड़ी की यात्रा की। वहां से विहार करके प्रतिष्ठोत्सव में सम्मिलित होने घाणेराव पधारीं। वहां पर वि० सं० १९९३ फाल्गुन शुक्ला ३ को भगवान् श्री शान्तिनाथ प्रभु की प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। बाहर से भी सहस्रों धर्मात्मा जन इस उत्सव पर घाणेराव आये हुए थे। आपके दर्शनों और व्याख्यानों से अत्यन्त प्रभावित हुए और अपने-अपने ग्रामों में पधारने की प्रार्थना की। आपने सर्व को यथायोग्य 'वर्त्तमान योग', 'क्षेत्र-स्पर्शना बलवती' आदि वाक्यों से आश्वस्त किया। १० दिन ठहर

कर वहां से विहार करके कोशीलाव नामक ग्राम को अपने पवित्र चरणों से पावन किया। तत्रस्थ श्रावकों के अत्यन्त आग्रह से चैत्र में श्री नवपद ओली का आराधन करवाया और मधुर भाषा में नवीन ढग से श्रीपाल चरित्र सुनाया कि तत्रस्थ जनता को खूब ही आनन्द हुआ। उन्होंने आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। आपसे चातुर्मास करने का भी आग्रह किया। परन्तु आपने इतना शीघ्र निर्णय करना अस्वीकृत कर दिया।

आप वहां से विहार करने वाले थे कि शिवगंज के कुछ श्रावक आ पहुँचे और निवेदन किया कि श्रीमती कुंकुमश्रीजी अत्यन्त रुग्ण हैं, और आप श्रीमतीजी के दर्शनों की अत्यन्त अभिलाषा व्यक्त कर रही हैं।

यह सुनते ही आपने शिष्या परिवार सहित शिवगंज की ओर विहार कर दिया, किन्तु भावी भाव प्रबल होता है। आप थोड़े ही कोस (ऊंदरी गांव तक) पहुंची होंगी कि कुंकुमश्रीजी के स्वर्गवास के समाचार आ गये कि चैत्र वदी एकम को ही उनका शरीरान्त हो गया। फिर भी आप शिवगंज पधारीं और कुछ दिन वहां निवास करके ज्येष्ठ कृष्ण एकादशी को विहार करके वांकली पहुँचीं। वहां पर गंगाबाई नामक एक श्राविका कितने ही समय से विरक्त जीवन व्यतीत करती हुई भागवती प्रव्रज्या लेने को उत्सुक थीं। उन्होंने आपसे प्रार्थना की कि हे भगवति! मुझे चरणों में आश्रय प्रदान करके कृतार्थ कीजिये। आपकी वाणी मैंने सिरोही

में श्रवण की थी तभी से मेरा मन संयम धारण करने को आतुर हो रहा था किन्तु स्वजनों की अनुमति नहीं मिली थी। अब मैंने अनुमति प्राप्त कर ली है, कृपा करके अब चरण में शरण दीजिये।

इधर आपके साथ पोहकरन के शार्दूलसिंहजी कानूंगा की पुत्री और फलोधी निवासी हेमराजजी लोंकड़ की विधवा पत्नी माझूबाई भी दीक्षा की आज्ञा लेकर आपके पास रह रही थी।

इन दोनों की दीक्षा बड़े समारोहपूर्वक वि० सं० १६६४ ज्येष्ठ शुक्ला ५ को हुई और क्रमशः श्रीमती गंगाश्रीजी एवं यमुनाश्रीजी नाम प्रसिद्ध किया। दीक्षा के उपलक्ष में अट्ठाई महोत्सव, स्वधर्मी-वात्सल्य, प्रभावना आदि धर्मकार्यों में तत्रस्थ जनता ने अपनी उदारता का परिचय देते हुए पुण्यानुबन्धी पुण्य का सञ्चय किया।

मरुधर की राजधानी जोधपुर वालों का अत्यन्त आग्रह और तिंवरी वाले चन्दनमलजी बुरड़ की हार्दिक प्रार्थना एवं लाधूबाई, जतनबाई की दीक्षा देने की विनति से आपने शीघ्र ही अर्थात् ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी को जोधपुर की ओर विहार कर दिया। अविच्छिन्न प्रयाण करते हुए आषाढ़ वदी ५ को आप जोधपुर पहुंच गईं। वर्षाकाल निकट होने से मार्ग में ठहरने का अवसर ही नहीं था।



जोधपुर में पदार्पण

जोधपुर में बड़ी धूमधाम से आपका प्रवेश हुआ। श्रीमान् त्रैलोक्य सागर जी महाराज साहब आदि मुनिपुङ्गव जोधपुर में ही विराजमान थे। उनके दर्शन करके अत्यन्त आनन्दित हुईं।

जोधपुर चातुर्मास की विनति स्वीकृत की हुई थी। अत. ग्यारह साध्वियों सहित आप वहीं विराजीं। श्रीमती सौभाग्यश्रीजी महाराज आदि ६ साध्वीजी को इससे पूर्व ही जयपुर वालों की विनति से वहां भेज दिया था। तिंवरी वालों के अत्यन्त आग्रह से इस कराल ग्रीष्म ऋतु में श्रीमती रत्नश्रीजी महाराज आदि ४ को वहां चातुर्मास करने भेज दिया तथा श्रीमती गोतमश्रीजी महाराज आदि ५ को नागोर प्रस्थान करा दिया।

इस चातुर्मास में आपने स्वयं ही व्याख्यान दिया, क्योंकि श्रीमान् त्रैलोक्य सागरजी महाराज साहब का शरीर अस्वस्थ था।

यहां पर आपने श्रीज्ञाता सूत्र और भावनाधिकार में श्री स्थूलिभद्र चरित्र का प्रवचन किया।

श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज साहब ने अष्टाह्निका तप तथा श्रीमती मोतीश्रीजी महाराज ने १७ उपवास की तपस्या करके आत्मा को उज्ज्वल बनाया।

स्वर्ण-मुद्राएं न्योछावर करके अनन्य श्रद्धा और भक्ति का परिचय दिया। अन्य लोगों ने भी यथाशक्ति न्योछावर की।

रतलाम में आपका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। आपके साथ इस समय पर्याप्त शिष्याओं एवं प्रशिष्यादि का साध्वी समुदाय था, जिनमें श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज साहब, श्रीमती विद्या-श्रीजी महाराज साहब आदि मुख्य थीं। श्रीमती ज्ञानश्रीजी महाराज साहब, विनयश्रीजी महाराज साहब आदि बाल-शिष्यायें भी थीं। सब मिल कर ३५ साध्वीजी महोदयाएं थीं।

विद्यार्थिनी आर्याओं के अध्ययन का प्रबन्ध सेठ साहब की ओर से हो गया। पण्डित पन्नालालजी शास्त्री अध्यापक नियुक्त कर दिये गए।

रतलाम में आपका पदार्पण प्रथम बार ही हुआ था। इससे पूर्व श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज साहब आदि का चातुर्मास हो चुका था। तभी से वहां की जनता आपके दर्शनों की अभिलाषा रखती थी। अब प्रत्यक्ष दर्शन पाकर भक्ति रस में निमग्न हो गई।

उपाश्रय में (विद्यालय) दिन भर मेला सा लगा रहता था। दर्शनार्थियों और जिज्ञासुओं में कई अन्य दर्शनी भी आते थे। सभी आपके यथायोग्य मधुर सम्भाषण, तत्व चर्चा और अगाध शास्त्र ज्ञान से सन्तुष्ट होकर प्रशंसा करते न थकते थे।

शिक्षार्थी बालक-बालिकाएं भी अभिभावक जनों की प्रेरणा से झुण्ड के झुण्ड आ जाते थे जिन्हें लघुवयस्का आर्याएं नवकार, चतुर्विंशति तीर्थंकरों के नाम, चैत्यवन्दन, सामायिक विधि, देव गुरु धर्म का स्वरूप जीवाजीवादि तत्वों का सामान्य ज्ञान सिखाया करती थीं। बालक-बालिकाएं इन छोटी साध्वियों से बड़े प्रसन्न रहते थे। उन्हें इन अल्प वयस्का साध्वियों को देखने का, इनसे बातचीत करने का कुतूहल होता था। छोटी-छोटी साध्वियों को देख कर अन्यदर्शनी ही नहीं श्रावक-श्राविकाएं भी विस्मयाभिभूत हो जाते थे और चारित्र धर्म की अनुमोदना करते हुए धन्य-धन्य कह उठते थे।

उधर सेठ साहब के यहां उद्यापन की सामग्री जोर-शोर से तैयार हो रही थी। इस उत्सव के लिए जयपुर से यन्त्रकला से चलने वाला, जैन श्वेताम्बर संघ द्वारा निर्मित अद्भुत रथ मंगाया गया था।

इस अवसर पर बम्बई में विराजमान स्वनामधन्य परम तपस्वी स्वर्गीय श्रीमान् मोहनलालजी महाराज के शिष्य रत्न पंन्यास श्री यशमुनिजी महाराज साहब, श्री केशरमुनिजी महाराज साहब आदि को भी पधारने की आग्रहपूर्ण विनति की गई थी। वे भी अपने विद्वान् शिष्य-मण्डल सहित रतलाम पधारे। उक्त सेठ साहब ने महोत्सवपूर्वक नगर प्रवेश करवाया।

हमारी पूज्यवर्या चरितनायिका महोदयादि स्वागतार्थ सम्मुख पधारीं और दर्शन करके कृतकृत्य हुईं ।

जयपुर से एक विरागिनी भी दीक्षा लेने की भावना से आपकी सेवा में उपस्थित हुईं । इनका नाम ज्ञानबाई था ।

ये जयपुर निवासी स्वर्गीय सेठ भूरामलजी टुंकलिया की धर्म-पत्नी और किशनगढ़ के श्री लक्ष्मीचन्दजी दूगड़ की पुत्री थीं । श्रीमतीजी की शिष्याओं के उपदेश से विरक्त हो गई थीं और अब परिवार वालों की आज्ञा लेकर पारमेश्वरी प्रव्रज्या लेने गुरु-वर्या की सेवा में आई थीं ।

उद्यापन का मुहूर्त्त आषाढ़ कृष्ण द्वादशी का था और कुम्भ-स्थापना का आषाढ़ कृष्ण तृतीया । आषाढ़ कृष्ण तृतीया का मुहूर्त्त ही दीक्षा का निश्चित किया गया । बीस दिन पूर्व ही दीक्षार्थिनी के बन्दोले बड़ी धूमधाम से निकलने लगे । धार्मिक जनता के हर्ष का समुद्र उमड़ रहा था । विरागिनी की भक्ति और स्वागत सत्कार में वे लोग बड़े उत्साहपूर्वक भाग लेकर संयम की अनुमोदना करते हुए पुण्य भागी बन रहे थे ।

आषाढ़ कृष्ण तृतीया को शुभ मुहूर्त्त में विरागिनी ज्ञानबाई की दीक्षा सम्पन्न हुई और 'गम्भीरश्रीजी' नाम से सुशोभित हो कर महावीर के शासन की सेविका बनीं ।

उद्यापन महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए अखिल भारतवर्षीय जैन जनता और इष्ट-मित्रों एवं कई राज्याधिकारियों को भी

सादर आमन्त्रण पत्रिकाएं प्रेषित की गई थीं। इस अभूतपूर्व अनुपम उद्यापन महोत्सव में हजारों की संख्या में अन्य नगरों व ग्रामों में रहने वाले जैन नरनारी उपस्थित हुए थे। उनमें से कतिपय के नाम उल्लेखनीय हैं—

मुर्शिदाबाद के यतिवर्य श्री रायचन्दजी महाराज, जोधपुर के प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् यतिवर्य पण्डित जवाहरमलजी गुरांसा तथा अन्य यतिगण, कलकत्ता के स्वनामधन्य राय बद्रीदासजी मुकीम के सुपुत्र सेठ केशरीसिंहजी साहब के बहनोई श्री रायकुमारसिंह जी एवं श्री राजकुमारसिंहजी तथा श्री मोतीचन्दजी नरवत. जोधपुर के प्रसिद्ध पूजासङ्गीतकला विख्यात श्री कानमलजी पटवा, जयपुर के श्री सागरमलजी कांकरिया व अन्य श्रावक गण, इत्यादि।

उद्यापन की सामग्री की सजावट भी दर्शनीय थी, ज्ञानदर्शन और चारित्र के विविध उपकरण यथायोग्य थे। सुवर्ण सिंहासन, छत्र, चामरादि,रत्नजटित मुकुट कुण्डल हारादि थे। पूजा के उपकरण सब रजत निर्मित एवं कुछ स्वर्णमय भी थे। पूठिये, चन्द्रवे, जरदोजी एवं सलमा सितारे के थे।

ज्ञानोपकरण—शास्त्र, पुस्तकें, पाटियांठ, वणियां स्थापनाचार्य इत्यादि। चारित्रोपकरण—रजोहरण, पात्र, वस्त्र इत्यादि।

सभी सामग्री बहुमूल्य थी और गिनती में बीस-बीस तथा नव-नव थी। क्योंकि दोनों ही सेठानीजी साहबा ने विंशति स्थानक

तप व नवपद आवलिकातप का उद्यापन किया था। इनके अतिरिक्त स्वधर्मी बन्धु भगिनियों के योग्य धर्मोपकरण तथा परिधानीय वस्त्रादि भी थे।

आषाढ़ कृष्ण तृतीया के दिन से अष्टाह्निकोत्सव प्रारम्भ हुआ। सभी विधिविधान शास्त्रोक्त रीति से सम्पन्न होते थे। प्रति दिन नव-नव राग रागिणियों में पूजाएं गाई जाती थीं। भगवान् की प्रतिमाओं की आकर्षक अङ्ग रचना होती थी। रात्रि में नित्य ही सङ्गीत विशारद जनों के भक्ति रसपूर्ण प्रभु गुण गुम्फित शास्त्रीय रागों और नवीन राग-रागिणियों में गाये जाने वाले गायन-स्तवन श्रवण करने हजारों नर-नारियों का समुद्र सा उमड़ा चला आता था, और वे भक्ति रस से आप्लावित होकर प्रभु-मय बनते हुए अपूर्व आनन्द मग्न होकर अलौकिक सुख प्राप्त करते हुए आत्म तल्लीन हो जाते थे। सचमुच! सङ्गीत में कुछ ऐसा अद्‌भुत प्रभाव होता है कि मनुष्य तो क्या, पशु-पक्षी भी सुधबुध बिसरा कर तन्मय हो जाते हैं।

आतिथ्य सत्कार में भी कोई त्रुटि नहीं थी, आगन्तुक अतिथिगण अनायास अभीष्ट व्यवस्था प्राप्त करके सन्तुष्ट थे। सभी व्यवस्था इतनी सुचारु सुन्दर और सुरुचिपूर्ण थी कि किसी को कोई त्रुटि निकालने या टीका-टिप्पणी करने का कोई प्रसङ्ग ही नहीं मिल रहा था।

जल यात्रा, रथ यात्रा देखने और उसमें सम्मिलित होने जैन, जैनेतर जनता भारी संख्या में उपस्थित थी। रतलाम के विशाल राजमार्ग में तिल धरने को भी स्थान न था। भगवान् की सवारी के साथ स्वयं राजमान्य सेठ साहब नंगे पांवों अत्यन्त विनयपूर्वक चल रहे थे। सेठ साहब जैसे विनयमूर्ति और देव गुरु भक्त सज्जन संसार में विरले ही होते हैं। उनका विनय और श्रद्धा-भक्ति अनुमोदनीय ही नहीं अनुकरणीय भी है।

आषाढ़ कृष्ण दशमी को इस महोत्सव की पूर्णाहुति में धाम-धूम से शान्ति स्नात्र हुआ। स्वधर्मी वात्सल्य वैसे तो प्रति दिन होते ही थे, आज विशेष रूप से सारे शहर निवासी भोजनार्थ निमन्त्रित किये गए थे।

इस उत्सव पर रतलाम नरेश स्वयं निमन्त्रित होकर पधारे थे और इस अभूतपूर्व उत्सव को देख कर उन्होंने राज्यरत्न सेठ साहब को प्रशंसापूर्वक धन्यवाद दिया था।

श्रेष्ठिवर्य केशरीसिंहजी महोदय ने आपसे मन्दिर में विराजमान वीतराग महाप्रभु की प्रतिमा के दर्शन का अनुरोध किया। नरेश ने दर्शन करके स्वर्ण मुद्राएं प्रभु के सन्मुख भेंट की। धर्मस्थान में विराजित पंन्यास प्रवर यशः मुनिजी आदि के भी दर्शन किये।

हमारी चरितनायिका की ख्याति भी नरेश के कर्णपुटों में पहुँच चुकी थी। नरेश ने स्वयं सेठ साहब से पूछा—आपके वे

गुरुआनीजी कहां हैं ? उनके दर्शन करेंगे, चलिए ? सेठ साहब बड़ी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए नरेश महोदय को हमारी चरित-नायिका के चरणों में ले आये ; उस समय गुरुवर्या सहस्रों श्रोताओं के मध्य पट्ट पर विराजमान, व्याख्यान कर रही थीं । शिष्या परिवार भी व्याख्यान श्रवण में तल्लीन था । प्रसङ्गवश अहिंसा के महत्व पर प्रकाश डालने वाला 'हरिवल मच्छी' का आख्यान चल रहा था ।

यद्यपि प्रतिदिन श्रीमरकेशर मुनिजी महाराज साहब व्याख्यान फरमाते थे, तथापि आज का व्याख्यान देने की प्रेरणा उन्हीं ने की थी, और कर्त्तव्य समझ कर चरित्रनायिका ने इसे विनम्र भाव से स्वीकार कर लिया था । गुरुवर्या महोदया के दर्शन करके नृपति महोदय श्री सज्जनसिंहजी बहादुर के. सी. एस. आई. को परम आह्लाद हुआ । उन्होंने देखते ही सिर झुकाकर नमस्कार किया ।

श्रेष्ठिवर्य ने नरेश के अनुरूप रत्नजटित स्वर्णासन का पूर्व ही प्रबन्ध करवा दिया था । उस पर न विराजते हुए वे यह कह कर गलीचे पर ही आसीन हो गए कि—राजाओं से त्यागियों का दर्जा ऊंचा होता है । गुरुवर्या ने एक श्लोक बोल कर नरेश को धर्मलाभ रूप आशीर्वाद दिया । सनातन धर्म की रीत्यनुसार नरेश ने गुरुवर्या के चरणों में स्वर्णमुद्राएं भेंट स्वरूप प्रस्तुत कीं । सभी प्रकार के परिग्रह का परित्याग कर देने वाली गुरुवर्या

ने भेंट ग्रहण करना—जैन साधु-साध्वियों के आचार के विरुद्ध है ऐसा मृदुता से कहा।

समयज्ञ गुरुवर्या ने आपको जैन दर्शन के मुख्य सिद्धान्त—अहिंसा, अनेकान्त, आत्मस्वातन्त्र्य, कर्मवाद आदि सरल और सुबोध भाषा में समझाये। जैन साधु-साध्वियों के आचार-व्यवहार चर्या आदि भी संक्षिप्त में कह कर अहिंसा का महत्व विशेष प्रकार से समझाते हुए मानव-जीवन में अहिंसा की आवश्यकता पर यथेष्ट प्रकाश डाला।

आपकी मधुर आकर्षक और तेजस्वी मुखमुद्रा तथा हृदयग्राही भाषणशैली से नरेश महोदय अत्यधिक प्रभावित हुए और अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की। पर्व दिनों में अमारि घोषणा तथा स्वयं भी आमिष भक्षण न करेंगे, ऐसा नियम किया। साथ ही अपने राज्य भर में मत्स्य मारण का सर्वथा निषेध करने का वचन दिया। राजमुद्रा युक्त लिखित आदेश पत्र भी दिया जो रतलाम में सेठ साहब की कोठी में है (प्राप्त हो गया तो मुद्रित करा देंगे)। यह तदनुसार आपने अपने राज्य में कानून बनाया कि मत्स्य पकड़ने वाले को छः मास का सपरिश्रम कारावास और पचास रुपया जुर्माने का दण्ड दिया जायगा।

तत्पश्चात नरेश कुछ देर और वार्तालाप करके प्रसन्न होते हुए नमस्कार करके अपने स्थान पर पधार गये। इस प्रकार दो लाख रुपयों के व्यय से उद्यापन महोत्सव सानन्द सम्पूर्ण

हुआ। चातुर्मास का अत्याग्रह होने से आपने वहीं वर्षावास रहने की स्वीकृति प्रदान की। इससे संघ में आनन्द छा गया। आसपास के शहरों की अत्यन्त विनति होने से आपने अपनी शिष्याओं मे से श्रीमती रतनश्रीजी महाराज साहवादि ५ को जावरे भेजा। श्रीमती रतनश्रीजो महाराज साहवा के उपदेश से वहां कई वर्षों से चला आने वाला जातीय झगड़ा मिट गया। जैन शासन की ज्योति जहां जागृत हो वहां क्लेशरूप अन्धकार कैसे ठहर सकता था। संघ में सम्प हो गया और सबने सन्तोष लाभ किया। धार्मिक कार्यों में अच्छा उत्साह रहा। पूजाएं, प्रभावनाएं, तपस्या, स्वधर्मिवात्सल्य आदि धार्मिक कार्य खूब धूमधाम से हुए।

सैलाना वाले भी इस महोत्सव पर आये थे और अपने यहां चातुर्मासार्थ साध्वीजी को भेजने की विनति की थी, परन्तु श्रीमती विद्याश्रीजी महाराज साहवा व ज्ञानश्रीजी महाराज साहिवा आदि को मन्दसोर भेजने की प्रार्थना स्वीकृत हो चुकी थी। वे लोग निराश हो गये थे पर भावी बलवान् है। अत्यधिक वृष्टि के कारण मन्दसोर जाना रुक गया और सैलाना वाले "जो अभी तक आशान्वित हो कर रतलाम में ही थे" उनकी आशा पूर्ण हुई। श्रीमती विद्याश्रीजी महाराज साहिवा व ज्ञानश्रीजी महाराज साहिवा आदि ४ को सैलाना भेज दिया।

आषाढ़ शुक्ला १२ को विहार करके उसी दिन सैलाना

पहुंच गये, क्योंकि सैलाना रतलाम से केवल पांच कोस ही है। सैलाना में १०० वर्ष से कोई साधु-साध्वी नहीं पधारे थे। यह पहला ही अवसर था चातुर्मास का। साधुचर्या से अनभिज्ञ इस क्षेत्र में साध्वीवर्ग को असुविधाएं होना भी स्वाभाविक था। पर चरितनायिका की सुयोग्य शिष्याओं ने वहां ऐसी अपूर्व ज्ञान की प्रभा प्रसृत की कि कई नवयुवक धार्मिक ज्ञान के जिज्ञासु बने, जिनमें मुख्य थे—धूड़चन्दजी, शेरसिंहजी कोठारी, यादवसिंहजी कोठारी और मोतीलालजी कोठारी, ये महानुभाव बड़े तत्त्वजिज्ञासु थे। इनमें से एक तो दीक्षित बने और अभी समुदाय के आचार्य पद पर अधिष्ठित हैं। इन लोगों ने 'ज्ञान वर्द्धक जैन मित्र मण्डल' नामक संस्था की स्थापना की। 'जीवाजीव राशिप्रकाश' चरितनायिका द्वारा शास्त्रों से संगृहीत किया गया था, और प्रथम वार प्रकाशित करने का सौभाग्य उक्त संस्था को सम्प्राप्त हुआ।

आप अठारह साध्वियों सहित रतलाम में ही विराजीं।

यहां भी जोधपुर से एक और विरागिनी दीक्षा लेने उपस्थित हो गई। ये जोधपुर के श्री कुशलराजजी भणशाली के पुत्र छगनराजजी की पुत्री, जसवन्तराजजी भण्डारी के स्वर्गीय पुत्र फतेराजजी की बालविधवा धर्मपत्नी श्रीमती लाडवाई थीं और श्री सम्मेतशिखरजी आदि पूर्वीय तीर्थों की यात्रा करके दीक्षार्थ यहां आई थीं, क्योंकि पारिवारिक जन प्रायः सभी जोधपुर में

राज्याधिकारी थे। वे अपने परिवार की एक सदस्या के लिए लोगों से यह सुनना पसन्द नहीं करते थे कि देखो इनकी बेटी या बहू भिखारिनी बन रही है।

यद्यपि वे सब जैन थे, फिर भी अन्य लोगों के अपवाद से भयभीत होकर ही उन्होंने जोधपुर में दीक्षा होना स्वीकृत नहीं किया। हां, अनुमति तो तीव्र भावना के कारण उन्हें देनी ही पड़ी। और वे लोग विरागिनी को दीक्षित कराने रतलाम में गुरुवर्या की सेवा में आ पहुँचे।

आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी को प्रव्रज्या क्षण निश्चित हुआ। कई दिन पूर्व से महोत्सव होने लगा। विरागिनी बन्दोले जीमने लगीं। धामधूम से वरघोड़े निकलने लगे। उक्त दोनों सेठानीजी ने भी इस अवसर पर उदारतापूर्वक भक्तिभाव से काफी द्रव्य व्यय किया। विरागिनी के सम्बन्धियों ने भी प्रभावना साधर्मी-वात्सल्य आदि करके पुण्य लाभ किया। दीक्षा का जलूस देखने और दीक्षाविधि देखने जनता समुद्रवत् उमड़ रही थी। अभूत-पूर्व उत्सवपूर्वक दीक्षा-कार्य श्री यशःमुनिजी महाराज साहब की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। उन्होंने नवदीक्षिता का नाम 'श्रीमती लालश्रीजी' रखकर हमारी पूज्येश्वरी चरितनायिका की शिष्या घोषित की।

पूज्य पंन्यास श्री यशःमुनिजी महाराज साहब आदि मुनिवर भी उक्त श्रेष्ठिवर्य की विनति से रतलाम में ही चातुर्मासार्थ विराजे।

प्रातःकालीन व्याख्यान श्रीमान् केशरमुनिजी महाराज साहब फरमाते थे। मध्याह्न में श्रीमती चरितनायिका महोदया 'रत्नपाल रास' की मधुर कथा फरमाती थीं, जिसे श्रवण करने नर-नारियों और बालकों का समूह नियत समय पर उपस्थित हो जाता था। ढालों, राग-रागनियों में गाई गई और सरल भाषा में समझाई जाने वाली इस सरस कथा को श्रोतृवर्ग इतनी तल्लीनता से सुनता था कि कोई बीच में बोलना तो दूर रहा, उठना या जाना भी पसन्द नहीं करता था।

कई अजैन पण्डित भी आपसे तात्त्विक वार्त्तालाप करने आया करते थे और आपका विशिष्ट शास्त्रीय ज्ञान उन्हें प्रभावित करता था। आपकी मधुर वाणी, शिष्ट वार्त्तालाप और प्रसन्न मुखमुद्रा आकर्षण के अमोघ मन्त्र थे।

पंन्यास यशःमुनिजी महाराज आदि आपकी प्रशंसा करते न थकते थे। वे कहा करते थे—ये साध्वीजी अपनी रसना में अमृत भरे फिरती हैं, जिसे पीना हो इनके पास जाय। अरे! ये तो साक्षात् सरस्वती हैं! पुण्य की जागृत ज्योति हैं! ज्ञान की प्रतिमूर्त्ति हैं। सब लोग इस अमूल्य अवसर से लाभ लो।

श्रावण की सरस ऋतु मुमुक्षुओं के लिए आत्मशुद्धि का सन्देश लेकर आ गई। धर्मात्माजन तपस्या की आराधना में कटिबद्ध हो गए।

हमारी चरितनायिका ने १६ उपवास का अष्ठ तप किया। श्रीमती मणिश्रीजी महाराज और ज्योतिश्रीजी महाराज ने मास-क्षमण की उत्कृष्ट तपस्या से आत्मा में लगे हुये कर्ममल का विशोधन किया। श्रीमती झवेरश्रीजी ने १७ उपवास किये। श्रीमती भक्तिश्रीजी ने २२ उपवास का महान् तप करके आत्म-शुद्धि की।

श्राविकाओं में कोट्याधीश स्व. श्रीमान् सौभाग्यमलजी बाफना की धर्मपत्नी श्रीमती रूपकुंवरबाई ने १६ उपवास का तप किया। श्रावक-श्राविकाओं में नवरंगी, पंचरंगी, अट्ठाइयां आदि तपस्याएं हुईं। सब मिला कर ७००० उपवास का अभूत-पूर्व तप हुआ।

इन तपस्याओं के उपलक्ष में अष्टाह्निकोत्सव, प्रभावनाएं, रात्रि जागरण, सार्धमिवात्सल्य आदि धर्मकार्यों मे सेठानी द्वय एवं तत्रस्थ संघ ने उन्मुक्त मन और उदारता से द्रव्य व्यय करके पुण्यार्जन के साथ यशः प्राप्ति भी की।

पर्वाधिराज पर्यूषण में भी अश्रुतपूर्व उत्सव हुआ। आठ दिन तक मन्दिरों मे पूजाएं, व्याख्यान, प्रभावनाएं, रात्रि मे अङ्ग रचनाएं, प्रभु गुण-गान, संवत्सरी के पारणे के दिन स्वध-र्मीवात्सल्य आदि धार्मिक कार्यों की धूम रही। कुछ दिन बाद रतलाम शहर में महामारी का प्रकोप हो गया। प्लेगरूप यमराज आ पहुँचा और सहस्रों व्यक्ति इसके अतिथि बन गये।

नगर में हाहाकार हो गया। और भगदड़ मच गई। यहां तक कि शहर शून्य हो गया। ऐसे समय में मनुष्य धैर्य से विचलित हो जायं यह स्वाभाविक था। रहे-सहे भी नगर त्याग कर जाने लगे। कितने भी भक्त जन इन त्यागी महानुभावों से प्रार्थना करने लगे—आप भी शहर से बाहर पधार जायें, ऐसे समय में यहां रहना उचित नहीं। त्यागी वर्ग के सम्मुख बड़ी कठिन परिस्थिति उत्पन्न हुई। जाते हैं तो साधु मर्यादा का भंग होता है और रहते हैं तो आहार पानी का मिलना असम्भव है, क्यों कि नगर-निवासी उपवनों में चले गये थे। अन्त में जाना निश्चय करके सेठ साहब के उद्यान में सभी त्यागी वर्ग पधार गया। शास्त्रीय मर्यादा में उत्सर्ग अपवाद तो होता ही है। ऐसे अवसरों के लिए ही अपवाद रक्खा गया है। चातुर्मासकाल में विशिष्ट परिस्थिति-वश विहार या स्थानान्तरण के कई प्राचीन उदाहरण भी मिलते हैं। देखें—"युग प्रधान जिनचन्द्र सूरि" नाहटा बन्धुओं द्वारा लिखित एवं प्रकाशित है।

आश्विन् शुक्ला सप्तमी से पूर्णिमा पर्यन्त श्री सिद्धचक्र तप का आराधन भी बड़े उत्साहपूर्वक हुआ।

इस प्रकार रतलाम का यह चातुर्मास सानन्द व्यतीत हुआ। श्री यशःमुनिजी महाराज के उपदेश से 'श्री जिनदत्त सूरि आनन्द चन्द्र पाठशाला' की स्थापना हुई एवं गुरुवर्या महोदया के उप-देश से 'श्री ज्ञान भण्डार' स्थापित हुआ।

मक्षी तीर्थ की यात्रा



आपने जावरा व सैलाना से श्रीमती रत्नश्रीजी महाराज साहब व ज्ञानश्रीजी महाराज साहब आदि के आ जाने के पश्चात् मार्गशीर्ष कृष्ण में विहार कर दिया। मार्ग स्थित बड़नगर आदि ग्रामों में धर्म की ज्योति प्रसृत करती हुईं आप ऐतिहासिक नगरी उज्जयिनी में पधारीं।

कुछ दिन वहां ठहर कर अपने प्रभावशाली प्रवचनों से तत्रस्थ जनता को आकर्षित कर लिया। प्रसिद्ध श्रेष्ठिवर्य श्री पूनमचन्दजी सामसुखा (घमडसी जुहारमल फर्म के भागीदार) आपके परम भक्त बन गये और संघ की ओर से चातुर्मास विराजने की आग्रहपूर्ण विनति की। आपने फरमाया—अभी तो यात्रा करने की भावना है, समय पर स्पर्शना होगी सो काम आयेगी।

आपके साथ रतलाम से कई श्रावक-श्राविका साथ थे। यहां से भी कई साथ चलने को प्रस्तुत हो गये और एक छोटा संघ ही हो गया।

इस संघ के साथ आपने मक्षी तीर्थ की ओर विहार कर दिया। मक्षीजी उज्जैन से केवल बारह कोस ही है। अतः चौथे दिन ही वहां पहुंच कर भगवान् श्री पार्श्वनाथ प्रभु के दर्शन करके अत्यन्त आनन्दित हुईं।

उस समय पौष दशमी का मेला होने वाला था अतः सात दिन वहीं ठहर कर मेला देखने के साथ ही प्रभुभक्ति का भी खूब लाभ लिया। इस मेले के अवसर पर हजारों यात्री दूर-दूर से मक्षी तीर्थ में विराजमान भगवान् पार्श्वनाथ के दर्शनार्थ आते हैं। ग्वालियर के सेठ नथमलजी साहब भी आये थे, गुरुवर्या के दर्शन करके आनन्दित हुए और ग्वालियर पधारने की आग्रहपूर्ण विनति की। आपने 'क्षेत्रस्पर्शना पर निर्भर है" कह कर आश्वस्त किया।

भोपाल के श्री रतनलालजी गोड़ीदासजी कांस्टिया आदि तत्वचर्चा रसिक श्रावकों ने पूज्येश्वरी से तत्वचर्चा की—श्री रतनलालजी ने आपसे निगोद का स्वरूप पूछा—गुरुणी साहब, निगोद का स्वरूप कृपा करके समझाइये। शास्त्रज्ञ गुरुवर्या ने फरमाया—श्रावकजी निगोद के दो भेद हैं—एक तो अव्यवहार राशि और दूसरा व्यवहार राशि। सारे लोक में निगोद के असंख्यात गोले हैं। एक-एक गोले में अनन्त जीव हैं। जितने जीव एक समय में मुक्त होते हैं, उतने ही जीव एक समय में अव्यवहार राशि से व्यवहार राशि में आते हैं। निगोद के जीवों का आयुष्य अन्तमुहूर्त्त का होता है। एक श्वासोच्छ्वास में साधिक साढ़े सतरह भव करते हैं। जीवों का मूल स्थान निगोद है। अनन्तकाल तक अपने जीव वहां रह चुके हैं।

सेठ पूनमचन्द जी सामसुखा आपके साथ ही थे। इन्होंने इन्दौर पधारने की प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना स्वीकृत की गई और आप मार्ग स्थित ग्रामों में उपदेश-सरिता बहाती हुईं जनता के मानस को वचन-वारि से पवित्र करतीं माघ कृष्ण २ को इन्दौर की सीमा में पहुँच गईं। इन्दौर का श्री संघ स्वागतार्थ शहर के बाहर उपस्थित था। बड़ी धूमधाम से नगर प्रवेश हुआ। जिन प्रासादों में विराजमान प्रभु प्रतिमाओं के दर्शन वन्दन करते धीर गम्भीर गति से प्रयाण करते उपाश्रय में पधार कर उपदेश दिया।

इन्दौर में प्रतिदिन आपके प्रभावशाली प्रवचन होने लगे। जैन-अजैन सभी समान रूप से आपके वैराग्य गर्भित प्रवचनों को श्रवण करने आते थे और एक स्वर से आपके त्याग, वैराग्य. विद्वत्ता, मृदु स्वभाव, मिलनसारिता और सरलता की प्रशंसा करते थे। तत्व चर्चा के लिए मध्याह्न का समय नियत था। जिज्ञासु जन झुण्ड के झुण्ड आ जाया करते थे और चरितनायिका महोदया से यथासाध्य अपनी शङ्काओं का समाधान पाकर सन्तुष्ट होते हुए परम शान्ति-लाभ करते थे। इस प्रकार मासत्रय जैन शासन की सेवा और जनोपकार में सानन्द व्यतीत हुए।

श्री पूनमचन्दजी सामसुखा ने वन्दन करके विनयपूर्वक प्रार्थना की—पूज्य गुरुणी साहिबा! इस दास की भावना श्री मांडवगढ़ तीर्थ की यात्रा करने की है। 'गुरु साथे पद चरिये'

का पद्यांश मेरे हृदय में अङ्कित है। अतः मेरा विनम्र निवेदन है कि आप श्रीमतीजी भी पधार कर मुझे कृतार्थ करें। गुरुवर्या ने सानन्द साथ चलने की स्वीकृति प्रदान की। उक्त सेठ साहब की ओर से इन्दौर नगर निवासियों को भी यात्रार्थ निमन्त्रण दिया गया। संघ-यात्रा की तैयारियां जोर-शोर से होने लगीं।

वैशाख कृष्ण त्रयोदशी को धामधूम से श्री मांडवगढ़ तीर्थ की ओर १०० व्यक्तियों के संघ ने उत्साहपूर्वक प्रयाण किया।

सेठ पूनमचन्दजी सामसुखा ने संघपति का पद ग्रहण कर लिया। भोजनादि का सर्व प्रबन्ध संघपति की ओर से था।

गुरुवर्या महोदया के साथ १५ शिष्याओं का समुदाय था। क्रमशः प्रयाण करता हुआ संघ मांडवगढ़ पहुँचा। भगवान् श्री सुपार्श्वनाथ की यात्रा करके कृतार्थ हुआ। संघपति की ओर से प्रभु भक्ति हुई। भण्डार वृद्धि, स्वधर्मिवात्सल्य आदि कार्य अत्यन्त उत्साहपूर्वक हुए। ५ दिन मांडवगढ़ में प्रभु दर्शन, पूजन व भक्ति का लाभ लेकर वहां से पुनः इन्दौर की ओर प्रयाण कर दिया और ज्येष्ठ कृष्ण सप्तमी को इन्दौर पहुंच गया। यहां से श्रीमतीजी ने समीप के ग्राम नगरों वाले श्री संघ की प्रार्थना से श्रीमती लाभश्रीजी महाराज आदि ४ साध्वियों को सादड़ी, श्रीमती रतनश्रीजी महाराज को ४ आर्याओं सहित बदनावर, श्रीमती ज्ञानश्रीजी महाराज को तीन साध्वियों सहित उज्जैन,

श्रीमती फतेश्रीजी महाराज को ३ साध्वियों के साथ महीदपुर, विदुषी बाल साध्वी श्रीमती विनयश्रीजी महाराज को ३ आर्याओं के साथ मन्दसोर चातुर्मासार्थ भेज दिया। आपने इन्दौर श्रीसंघ का आग्रह स्वीकृत कर वहीं वर्षावास में रहना स्वीकृत किया। आपकी चातुर्मास करने की स्वीकृति से संघ में आनन्द छा गया।

इन्दौर के चातुर्मास में आपने प्रतिदिन व्याख्यान आरम्भ किया। अनुयोगद्वार सूत्र, भावनाधिकार में रत्नपाल चरित, यशोधर चरित व पर्व के दिन पर्वव्याख्यान होता था।

श्रावण मास में मेघ वर्षा के साथ ही तपस्या की भी धूम मच गई। स्वयं चरितनेत्री ने १६ उपवास का तप किया। श्रीमती महतावश्रीजी महाराज ने नव उपवास, श्रीमती चम्पाश्री जी महाराज ने ६ उपवास की तपस्या की।

श्रेष्ठिवर्य श्री पूनमचन्दजी सामसुखा की धर्मपत्नी सौ० सोहनबाई आदि ४ ने गुरुवर्या के साथ ही १६ उपवास किए। तपस्या के समय में व्याख्यान-कार्य श्रीमती सौभाग्यश्रीजी महाराज ने किया।

अन्य भी अट्ठाइयां पंचरंगी आदि तपस्याएं हुईं। इस वर्ष अभिवर्द्धित संवत्सर होने से पर्यूषण पर्व का आराधन द्वितीय श्रावण में किया गया। यद्यपि महामारी का आक्रमण प्रथम

श्रावण में ही आरम्भ हो गया था और कई व्यक्ति प्लेग रूप कराल काल यम के अतिथि हो चुके थे। श्रावकों ने आपसे नगर के बाहर पधार जाने का आग्रह किया पर आपने फरमाया—पर्यूषण पश्चात् स्पर्शना होगी सो हो जायगा। इसी बीच लोहावट में परम तपस्वी पूज्यपाद गणाधीश्वर श्रीमान् छगनसागर जी महाराज साहब का ५२ दिन की तपस्यापूर्वक द्वितीय श्रावण शुक्ला ६ को स्वर्गवास हो गया। ये समाचार तार द्वारा प्राप्त हुए। इस आकस्मिक दुःखद सन्देश से गुरुवर्या चरितनायिका आदि को हार्दिक वेदना हुई। आज हमारे सिर से छत्र हट गया, ऐसा उन्हीं को नहीं, समस्त खरतर गच्छ संघ को अनुभव होने लगा। सबने देववन्दन आदि आवश्यक क्रिया की और समवेदना व्यक्त करते हुए विस्तृत जानकारी की जिज्ञासा से तार भेजा। वहां से जो उत्तर आया उसका सारांश निम्नांकित है—

पूज्येश्वर गणाधीश्वर महोदय ने आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी से उपवास आरम्भ किये। कई व्यक्तियों ने पारणे का आग्रह किया पर आप यही फरमाते रहे, अभी तो पारणे की भावना नहीं है। तपस्या शान्तिपूर्वक चलती रही और नित्य-कार्य—व्याख्यानादि भी निर्विघ्न चल रहे थे। किसी को जरा भी आशंका न थी कि इस प्रकार बोलते-बोलते ही यह दिव्य महापुरुष शरीर त्याग कर दिव्यलोक को प्रयाण कर जायगा। संवत्सरी के पारणे भी लोगों ने सानन्द कर लिये थे। इस महान् तपस्वी के अभूतपूर्व तप के

समाचार सुन-सुन कर देश-देश की अनुमानतः तीस हजार जनता लोहावट में दर्शनार्थ उपस्थित हो गई थी और अन्तिम समय तक वहीं उपस्थित रही। यद्यपि आपने अनशन का जिक्र नहीं किया था, तथापि शरीर की क्षीणता देखते हुए बुद्धिमानों को अनुमान तो हो ही गया था। आत्मबल इतना अद्भुत था कि प्रातःकाल शौच-क्रियार्थ प्रतिदिन डेढ़ मील तक पधारते थे और समय पर व्याख्यान भी देते थे तथा अधिकतर विराजमान रह कर जाप, ध्यान और दर्शनार्थियों से वार्त्तालाप करते रहते थे। महाप्रस्थान भी पाट पर बैठे-बैठे ध्यानस्थ अवस्था में ही हो गया। इससे पूर्व समुदाय का भार, आवश्यक सूचनाएं, क्षमापना, आराधनादि कार्य, सब शान्तिपूर्वक और स्वस्थता में कर लिए थे। अन्तिम संस्कार का जुलूस भारी धूमधाम से निकाला गया। बैकुण्ठी में आसीन यह महापुरुष ऐसे लगते थे जैसे कोई राजा-महाराजा पाणिग्रहणार्थ जा रहा हो। इनके जीवन में सभी अश्रुत-पूर्व था—उत्कृष्ट संयम, तीव्र तप, गम्भीर और विशाल ज्ञान, शासन-सेवा का लक्ष्य, समुदाय का उत्कर्ष करने का अदम्य उत्साह और उसके लिए स्वयं को सतत कार्यरत रखना, अप्रमत्त भाव से ये सब उनके संयमी-जीवन के विशिष्ट अङ्ग थे। ऐसे महान् त्यागी-तपस्वी को कोटि-कोटि वन्दन हो।

थोड़े दिनों में तो इस प्लेग राक्षस ने बड़ा विकराल रूप धारण कर लिया। लोग नगर छोड़ कर बाह्य प्रदेश में जाने

लगे। हमारी गुरुवर्या भी अपने शिष्या समुदाय सहित नगर के बाहर अवस्थित श्री नथमलजी साहब के बगीचे में पधार गईं।

भाद्रपद मास किसी प्रकार निकला। महामारी दिन-दिन बढ़ रही थी। उपवनों में भी प्लेग का पदार्पण होने लग गया और कई प्राणी काल के ग्रास बनने लगे। संघ के अग्रगण्य राय-साहब श्री हीराचन्दजी कोठारी, श्री पूनमचन्दजी दीपचन्दजी सामसुखा, श्री दीपचन्दजी भण्डारी, श्री नथमलजी बोथरा आदि ने गुरुवर्या से प्रार्थना की—पूज्येश्वरी महोदया, अब तो नगर के बाह्य प्रदेश में भी प्लेगरूप यमराज आ गया है, हम लोग तो दूसरे गांवों में जाने का निश्चय कर चुके हैं अतः यहां रहने से आहार पानी उपलब्ध होना असम्भव है, आप भी उज्जैन पधार जायें तो ठीक है।

उधर उज्जैन में विराजित श्रीमती ज्ञानश्रीजी महाराज साहिबादि को तथा उज्जैन श्री संघ को चरितनायिका आदि के विषय में भारी चिन्ता हो गई। उन्होंने तो प्रथम श्रावण में ही इन्दौर छोड़ कर उज्जैन पधार जाने का आग्रह किया था और अब तो कुछ मुख्य श्रावक इन्दौर आ गये थे व प्रार्थना कर रहे थे कि उज्जैन पधारिये। हम तो लिए बिना जाने वाले नहीं हैं।

चरितनायिका ने परिस्थिति की विषमता को लक्ष्य में रखते हुए विहार करने का निर्णय किया और इन्दौर के २५ श्रावकों

सहित भाद्रपद शुक्ला में विहार करके आप उज्जैन पधार गईं और अवन्ती पार्श्वनाथ नामक तीर्थ की यात्रा की।

उज्जैन में उस समय इन्दौर वाले भी अधिक संख्या में आ गये थे। क्योंकि यहां प्लेग नहीं था। यहां पर भी श्रीमती विद्याश्रीजी महाराज व मेघश्रीजी महाराज ने अष्टाह्निक (अट्ठाई) तप किया जिसके उपलक्ष में अष्टाह्निकोत्सव हुआ।

यहां पर आप श्रीमतीजी के दर्शनार्थ सैलाना से भी कई भक्त आये थे। उनमें एक थे विशिष्ट विरागी श्री यादवसिंहजी कोठारी। ये २० वर्ष के सुशिक्षित सुसंस्कारी युवक थे और स्वभावतः ही संसार की ओर से उदासीन से थे। संयमी जीवन में प्रवेश करके आत्मा का उत्कर्ष करने की हार्दिक अभिलाषा थी। ज्ञान प्राप्ति की ओर विशेष लक्ष्य रहने से त्यागियों के सत्सङ्ग की भावना रहती थी। पूज्य गुरुवर्या से तथा श्रीमती ज्ञानश्रीजी महाराज साहबा आदि से अधिकतर तत्व चर्चा करने को आते रहते थे। इन महानुभाव की विराग भावना देख कर गुरुवर्या महोदया अत्यन्त प्रसन्न हुईं और उन्हें विशेष प्रेरणा प्रदान की। ये कई बार दर्शनार्थ आते रहते थे।

विक्रमाब्द १९६६ की आश्विन् कृष्ण १४ बुधवार को गुरुवर्या की आज्ञा लेकर इन्होंने प्रातःकाल के व्याख्यान के मध्य एक घण्टे तक संसार की असारता पर ऐसा मार्मिक और हृदयग्राही भाषण दिया कि जनता मन्त्रमुग्ध सी एकाग्र चित्त से सुनती रही और

भाषण समाप्त हो जाने पर अनायास ही धन्य-धन्य के शब्दों की वर्षा करने लगी। सहस्रों व्यक्ति उस व्याख्यान में विद्यमान थे। सभी ने इनके व्याख्यान की और वैराग्य भावना की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। इन विरागी महोदय ने चरितनायिका से व्याख्यान समाप्ति के पश्चात् सहस्रों व्यक्तियों की सभा के मध्य विनयपूर्वक खड़े होकर इस प्रकार की प्रतिज्ञा धारण की कि—पिताजी के देहावसान के पश्चात् अवश्य पारमेश्वरी प्रव्रज्या ग्रहण करूंगा और तत्पश्चात् एक वर्ष तक किसी कारणवश न कर सकूं तो १ वर्ष बाद घृत भक्षण का त्याग कर दूंगा।

इस सर्वोत्तम प्रतिज्ञा को सुन कर तो उपस्थित जनता ने जय जय और धन्य धन्य के शब्दों से गगन गुञ्जा दिया, उन्मुक्त भाव से धन्यवाद देने लगी। चरितनायिका आदि साध्वी वर्ग ने भी इनकी दृढ भावना की हार्दिक प्रशंसा करते हुए धन्यवाद दिया।

इस प्रतिज्ञा के समाचार इन्होंने अपने अग्रज श्री शेरसिंहजी को भी "जो इस समय नीमच के पास 'मणासा' नामक ग्राम में किसी कार्यवश गये हुए थे" दिए। एक बार तो शेरसिंहजी इस प्रतिज्ञा को जान कर स्नेह विह्वल हो गये किन्तु अपने अनुज की गतिविधियों से पूर्णतः परिचित होने और स्वयं भी तत्त्वज्ञ होने के कारण अपने आपको सम्भाल लिया, पत्रोत्तर में सहर्ष धन्यवाद और अनुमोदनपूर्वक भाई की प्रशंसा लिखी। संसार में ऐसे

भाई भी दुर्लभ होते हैं व किसी भाग्यशाली को ही प्राप्त होते हैं।

आश्विन शुक्ला में श्री सिद्धचक्र तप का आराधन खूब धूम-धाम से हुआ। गुरुवर्या ने व्याख्यान में श्रीपाल महाराजा का चरित्र सुनाया। श्रीपाल चरित्र का प्रमुख उल्लेख्य भाग उज्जैन से ही सम्बन्धित है। पिता पुत्री का कर्मविषयक विवाद, श्रीपाल का कुष्टी रूप में आगमन, मदन सुन्दरी के साथ परिणय, उसकी प्रेरणा से नवपदाराधन, कुष्ठ निवृत्ति, जैन सिद्धान्त की अकाट्यता, धर्म का अद्भुत प्रभाव, प्रजापाल की पराजय, पुत्री के प्रभाव से पिता को सम्यक्त्व प्राप्ति, भौतिकता पर आध्यात्मिकता की विजय, श्रीपाल चरित्र का नवनीत है। इतिहास काल के जैन सम्राट् सम्प्रति की राजधानी भी उज्जैन ही थी, इस सम्राट् ने अपने प्रतापी पितामह प्रियदर्शी सम्राट् अशोक के पद चिन्हों का अनुसरण करते हुए भौतिक दिग्विजय का लक्ष्य त्याग कर आध्यात्मिकता के प्रसार का प्रशस्त कार्य आरम्भ किया। समस्त भूतल को जिन मन्दिरों से मण्डित करके जनता को प्रभु भक्ति के लिए उत्साहित किया। विदेशों में प्रचारक भेज कर जैन मुनियों के विहार का और धर्म प्रचार का पथ प्रशस्त किया। इन अनन्य जैन धर्म के भक्त सम्राट् द्वारा निर्मापित कई जिन प्रतिमाएँ और मन्दिर आज भी विद्यमान हैं। कितने ही पुरातत्व विभाग द्वारा प्रकाश में लाये जा रहे हैं।

उज्जैन ने भारत को विक्रमादित्य जैसा प्रजावत्सल और परोपकारी सम्राट्, कालिदास जैसा विश्वविख्यात कवि, भर्तृहरि जैसा राजर्षि, सिद्धसेन दिवाकर जैसे प्रकाण्ड पण्डित, दिये हैं। उज्जैन का इतिहास स्वर्णाक्षरों में अङ्कित है। भारत के इतिहास का स्वर्ण युग यहीं के गुप्त सम्राटों का राज्य काल माना जाता है। इन्हीं विशिष्ट कारणों से उज्जैन का स्थान भारत में गौरवपूर्ण रहा है। अतीत को आदर्श मानते हुए अपने वर्त्तमान और भविष्य को उज्ज्वल बनाना चाहिये। अस्तु।

श्रोताजन आपके मधुर व्याख्यानों को सुन कर अत्यन्त प्रभावित होते थे। शेप चातुर्मास सानन्द यापन करके कार्तिक पूर्णिमा के पश्चात् विहार कर दिया और महीदपुर वालों के आग्रह से वहां पधारीं। मार्गशीर्ष कृष्ण ६ को महीदपुर में प्रवेश किया और दो महीने वहीं विराजीं। शिशिरर्तु मे भी आपने यहां तपस्या आरम्भ कर दी। 'महाजनो येन गत स्सपन्था' की उक्ति के अनुसार श्रीमती मोती श्रीजी म. व विद्या श्रीजी म. आदि ४ आर्याओं ने भी अट्ठाइयां कीं, श्रावक श्राविकाओं में भी नवरंगी और पंचरंगी तप हुआ। धर्म की भारी जागृति हुई। यहां से विहार करके आप ग्रामों में धर्म प्रचार करतीं हुईं जैन शासन की ध्वजा फहरातीं माघ में रतलाम पहुंच गईं।

सैलाना वाले अपने नगर को पवित्र करने की कई वार प्रार्थना कर चुके थे। उनकी विनति को सफल करने की इच्छा से

आपने उधर ही विहार कर दिया और सैलाना पधारीं। सैलाना ालों के हर्ष का पार नहीं था। बड़ी धूमधाम से नगर प्रवेश ुआ। नित्यप्रति व्याख्यान होने लगे, श्री दशवैकालिक सूत्र फरमाती थीं। आग्रह होने से १८ दिन ठहर कर मुनिपति चरित्र र भी व्याख्या की। जैन अजैन जनता पर आपके उपदेशों का भारी प्रभाव पड़ा, चोमासे की आग्रह पूर्ण विनति होने लगी, पर 'क्षेत्र स्पर्शना बलवती' कह कर आपने सब को शान्त कर दिया क्योंकि अभी वर्षाकाल के आरम्भ में ४ मास शेष े और इतने महीने पूर्व स्वीकृति देना आप उचित नहीं समझतीं थीं।

यहां पर फलोधी से श्रीमती शृंगार श्रीजी म.सा. ने शुभ संदेश भेजा कि श्री सुल्तानचंदजी डाकलिया की पुत्री, जेठमलजी संकलेचा की विधवा पत्नी पानबाई तथा श्री हीरालालजी नरड़िया की पुत्री, अमरचन्द जी कानूंगा की विधवा पत्नी चिड़ीबाई ने भागवती प्रव्रज्या धारण की। विक्रम संवत् १९६६ के माघ मास की शुक्ला ६ को इनकी दीक्षा धूमधाम से हुई और क्रमशः 'प्रधान श्रीजी' चन्द्र श्रीजी' नाम प्रसिद्ध किया गया। आपके शिष्या परिवार में आशातीत वृद्धि हो रही थी। और उसी दिन एक और वैरागिनी की फलोधी में ही दीक्षा हुई। इनका नाम 'तारा श्रीजी' स्थापित किया गया। ये श्रीमती शृंगार श्रीजी महाराज सा. की शिष्या बनीं। पूर्वोक्त दोनों ने चरितनायिका का शिष्यत्व अङ्गीकार किया।

फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशी को आपके उपदेश से १२ श्रावकों और १६ श्राविकाओं ने श्रावकोचित द्वादशव्रत रूप श्राद्ध धर्म धारण किया। पूजाएं प्रभावनाएं आदि धर्म कार्य खूब ठाठ से हुए।

चैत्र कृष्ण ६ को विहार करके आप पुनरपि रतलाम पधारीं। मालव के नगरों के श्रावकगण स्व स्व नगरों में पधारने और चातुर्मास करने की प्रार्थना करने रतलाम में आये हुए थे। मन्दसौर वालों की प्रार्थना स्वीकृत करके आपने श्रीमती सौभाग्य श्रीजी महाराज साहिबा को अन्य पाँच आर्याओं सहित चैत्र शुक्ला पंचमी को विहार करा दिया। मन्दसौर वालों ने अपना अहोभाग्य समझ कर सन्तुष्ट हो प्रसन्नता व्यक्त की और उक्त साध्वीवर्याओं के साथ रवाना हो गये।

मन्दसोर में दो प्रव्रज्याएँ

श्रीमती सौभाग्य श्रीजी महाराज साहबादि ग्रामों में धर्म प्रचार करती हुईं शीघ्र ही मन्दसौर पधार गईं। वहां पर प्रतिदिन आपके वैराग्यगर्भित उपदेश होने लगे। जनता में अपूर्व उत्साह की ऊर्मियाँ उच्छलित होने लगीं।

मन्दसौर में ही एक अद्भुत विरागिनी थीं। इसका मन शैशवावस्था से ही त्याग वैराग्य की भावना से ओतप्रोत था, इसे पूर्वसंस्कार ही कह सकते हैं। वास्तव में तो सभी परिणतियाँ और प्रवृत्तियां पूर्व संस्कारानुसार ही होती हैं। जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों की परम्परा अनवरत चलती रहती हैं। अज्ञान,

मिथ्यात्व कषायादि वैभाविक परिणाम और प्रवृत्ति तो अनादि-कालीन होते ही हैं। किन्हीं २ भव्यात्माओं को उपर्युक्त वैभाविक परिणामों को भोगते २ क्षयोपशम होने पर और किन्हीं को ज्ञानिजनों के संसर्ग, संलाप, सम्भाषण, वाणी श्रवण आदि का सुयोग सम्प्राप्त होने पर आत्मभान होता है। इसी का दूसरा नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। तत्वार्थसूत्र में भी यही कहा है:— 'तन्निसर्गादधिगमाद्वा १।३।

ये विरागिनी थी कच्छी ओसवाल लक्ष्मणसीजी की कन्या राजकुमारी (बच्चू बाई)।

लक्ष्मणसीजी व्यापारार्थ मन्दसौर में निवास करते थे। अपनी पुत्री की उठती हुई वैराग्य भावना को कुचल कर उन्होंने इनका विवाह अपने ही देश के निवासी पचायसीजी नामक युवक के साथ बलात् कर दिया। पर ये सच्ची विरागिनी थीं, इनका वैराग्य—'स्मशान वैराग्य' न था जो क्षणिक होता है। ये अपनी भावना पर दृढ़ रहीं और जैसे तैसे अपने पति से संयम धारण की अनुमति ले ही ली। पति की अनुमति लेने में काफी कष्ट का सामना करना पड़ा—अनशन भी किया, जातीय नेताओं के द्वारा भी प्रयत्न करवाया, अन्त में कोर्ट ने निर्णय दिया कि इस युवती को रोकना व्यर्थ है, इसे अपनी उदात्त भावना सफल करने का पूर्ण अधिकार है।

ये अधिकतर अपने पितृगृह में ही रहती थीं और योग्य गुरु की प्रतीक्षा कर रही थीं। इधर पूज्य सौभाग्य श्रीजी महाराज

साहिबादि पधारीं तो ये इनके तप त्याग ज्ञान-व्याख्यान आदि से इनकी ओर आकर्षित हो गई और दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया, रतलाम में विराजमान पूज्येश्वरी के दर्शनार्थ भी गईं और अपनी भावना व्यक्त की। गुरुवर्या ने प्रसन्नता पूर्वक दीक्षा देने की स्वीकृति प्रदान की।

एक दूसरी विरागिनी और थी, यह थी राजकोट निवासी शिवलालजी डोसी की पुत्री प्राणकुंवर। यह केवल दो मास सौभाग्यवती रहीं। और अब संयम पथ का अनुसरण करने को तत्पर थीं। ये भी कुछ समय से गुरुवर्या के समीप रह कर विद्याध्ययन और संयम साधना कर रही थीं।

इन दोनों की दीक्षा विक्रम सं० १९६७ की वैशाख शुक्ला एकादशी को शुभ मुहूर्त्त में सम्पन्न हुई। चरितनायिका की शिष्या बनीं। दीक्षा के शुभ अवसर पर श्रीमती सुवर्ण श्रीजी महाराज साहिबादि भी मारवाड़ से विहार करतीं हुई मन्दसौर पधार गईं थीं। आपकी अध्यक्षता में बड़े धूमधाम से दीक्षा महोत्सव हुआ। मन्दसौर संघ ने भी इस शासन प्रभावना के पवित्र कार्य में उदारतापूर्वक तनमन धन से बड़े उत्साह से सारे कार्य सम्पन्न किये।

दोनों के नाम क्रमशः विजय श्रीजी एवं प्रसन्न श्रीजी रखे गये। दोनों ही सुयोग्या आर्याएं तप संयम में और शासन सेवा में जीवन पर्यन्त संलग्न रहीं।

यह सर्व वृत्त रतलाम में विराजमान गुरुवर्या महोदया को मन्दसौर के पत्र से ज्ञात हुआ।

वैशाख शुक्ला चतुर्दशी को नाडलाई में पूज्य मुनिवर्य श्रीमान् पूर्णसागरजी महाराज साहब का वैशाख कृष्णा ८ के दिन स्वर्गवास हो जाने के समाचार मिले, जिससे आपको अत्यन्त खेद हुआ। शरीर की नश्वरता आदि के विचार से चित्त को शान्त करके देववन्दन आदि आवश्यक कार्य सम्पन्न किया।

श्रीमती सुवर्ण श्रीजी महाराज साहबादि सर्व साध्वी मंडल मन्दसौर से दीक्षा के बाद विहार करके रतलाम पधार गया था। अब ३५ साध्वीजी एकत्र हो गई थीं। मालव के विभिन्न नगर ग्रामों से चातुर्मास कराने की आग्रहपूर्ण विनतियां आ रही थीं। शासनोन्नति तत्पर समयज्ञ चरितनायिका ने जनोद्धार और धर्म प्रचार के लिए निम्न स्थानों की प्रार्थनाएं स्वीकृत करके अपने शिष्या समुदाय को भेजा.—

जावद—श्रीमती सौभाग्य श्रीजी महाराज साहबा आदि ४
मन्दसौर—श्रीमती रत्न श्रीजी महाराज साहबा आदि ४
मणासा—श्रीमती विद्या श्रीजी महाराज साहबा आदि ३
जावरा—श्रीमती सौभाग्य श्रीजी महाराज साहबा आदि ३
मैलाना—श्रीमती ज्ञान श्रीजी महाराज साहबा आदि ३
बदनावर—श्रीमती कमल श्रीजी महाराज साहबा आदि ३

शेष शिष्याओं के परिवार सहित रतलाम श्रीसंघ के आग्रह से आपने रतलाम में ही वर्षावास रहना स्वीकृत किया।

इस चातुर्मास में भी अच्छी धर्मवृद्धि हुई। तपस्याएं पूजाएं प्रभावनाएं आदि धर्मकार्यों की अच्छी धूमधाम रही।

आपके शिष्या समुदाय में तपस्या अच्छी हुई। किसी ने मासक्षमण तो किन्हीं ने पक्ष क्षमण अट्ठाई आदि तप किया।

विद्यार्थिनी शिष्याओं का अध्ययन भी सुचारु रूप से चलने लगा।

चातुर्मास में ही पर्यूषण बाद रतलाम में पुनः प्लेग यमराज का आक्रमण हुआ और आप जनता के आग्रह से समीप के तीर्थ सागोदिया में पधार गई। रतलाम श्री संघ के कितने ही परिवार भी वहां रहने को आ गये और गुरुवर्याओं के सुयोग से कितने ही धर्मानुरागियों ने तत्वज्ञान का अध्ययन किया।

वर्षावास पश्चात् विहार का विचार हो ही रहा था कि सैलाना से विरागी यादवसिंहजी कोठारी अपने बड़े भाई शेरसिंहजी के साथ उपस्थित हुए और स्वदीक्षा होने तक वहीं विराजने की प्रार्थना की क्योंकि उनके वृद्ध पिताजी का स्वर्गवास हो गया था और वे अपनी पूर्व प्रतिज्ञानुसार वैराग्य भावना को मूर्त्त रूप देने की अभिलाषा से अब शीघ्रातिशीघ्र संयम पथ का अनुसरण करने को कटिबद्ध थे व चरितनायिका की सम्मति से मारवाड़ में विराजमान गणाधीश्वर श्रीमान् त्रैलोक्यसागरजी

महाराज साहब आदि को रतलाम पधार कर दीक्षा प्रदान करने की प्रार्थना करने लोहावट गये। उनसे स्वीकृति लेकर पुनः रतलाम में आये और गुरुवर्याओं को यह शुभ संवाद सुनाया कि गुरुदेव को विहार करा आया हूं। पौष कृष्ण ६ को वहां से विहार करके इधर ही पधार रहे हैं। इस शुभ संवाद से चरितनायिका अत्यन्त प्रसन्न हुईं। गुरुवर्या ने विरागी महानुभाव को दीक्षा धारण करने से पूर्व यात्रा कर लेने की प्रेरणा दी। तदनुसार श्र यादवसिंहजी पूर्व देश के तीर्थों—श्री सम्मेतशिखर, पावापुरी, चम्पापुरी, वैशाली, अयोध्या, वाराणसी आदि की यात्रा करने चले गये।

श्री गणाधीश्वर महोदय मारवाड़ से विहार करते हुए ग्रामानुग्राम धर्मोपदेश द्वारा जनता में धर्म-भावना जागृत करते हुए मार्गस्थ तीर्थों की यात्रा करते रतलाम के समीप पधार गये।

रतलाम श्री संघ ने फाल्गुन कृष्ण ११ को महोत्सवपूर्वक नगर प्रवेश करवाया। हमारी चरितनायिका भी शिष्यामण्डल सहित स्वागतार्थ पधारीं और चिरकाल से गुरुवर के दर्शन करके आनन्दित हुईं।

श्री संघ में भी अत्यन्त आनन्द छा गया। सेठानी फूलकुंवर बाई के तो हर्ष का पारावार ही न था। वे तन, मन और धन से पूज्य त्यागी वर्ग की सेवा का लाभ लेने लगीं।

रतलाम में प्रतिदिन व्याख्यान होते थे, सहस्रों जनता तत्व ज्ञान और मानव-जीवन के कर्त्तव्य सुनने को उपस्थित होती थी। चरितनायिका का शिष्यामण्डल भी वर्षाकाल निवास के नगरों में धर्मध्वजा फहरा कर रतलाम में गुरुवर्या की सेवा में आ गया था।

कोटे से एक सांकला परिवार की नवयुवती विधवा भी गुरुवर्या की सेवा में आईं और संयम के पवित्र पथ पर चलने की भावना व्यक्त की। इनका नाम गुलाबबाई था और ये गृहस्थाश्रम में भी श्राविकोचित नियमों का तत्परता से पालन करती थीं। इन्होंने कोटे में चरितनायिका की प्रशंसा सुनी और दर्शन करने आ पहुँची। गुरुवर्या के दर्शन करके एवं अभीष्ट गुरुवर्या प्राप्त हो जाने से दीक्षा धारण करने का निश्चय भी कर लिया।



वर्तमान आचार्य श्री का महाभिनिष्क्रमण महोत्सव

महानता सभी को प्रिय है, परन्तु महानता के मूल में कुछ विशिष्टताएं होती हैं। इन विशिष्टताओं के बिना मानव महान् नहीं बन सकता। महानता के योग्य विशिष्ट कोटि की क्षमा, नम्रता, उदारता, विद्वत्ता, वात्सल्य, त्याग, तप, निस्पृहता आदि मौलिक गुणों का विकास विरल आत्माओं में ही दृष्टिगोचर हो सकता है, और जिन महात्माओं के जीवन में ये मौलिक गुण होते हैं वे एक दिन अवश्य महान् पद अलंकृत करते हैं, स्वपर श्रेयार्थ ही उनकी सारी प्रवृत्तियां होती हैं।

यह महत्व भौतिकता की सिद्धियां प्राप्त करने वाले को प्राप्त नहीं होता। यह आध्यात्मिक शक्तियों पर ही निर्भर है। जैन-शासन के दृष्टिकोण से वाह्याडम्बर या भौतिक कुशलता महान् बनने को पर्याप्त नहीं।

महानता का आधार जीवन-शुद्धि और आत्म-शुद्धि है। संसार के अनन्त प्राणियों का जीवन प्रवाह सतत प्रवाहित होता रहता है। विषय कषायासक्त प्राणी अनन्तकाल से जन्मजरा और मृत्यु के भयङ्कर दुःखों का अनुभव करता हुआ इसी संसार में

लीन रहता है। अज्ञान तिमिर में अन्धवत् टक्करें खाता हुआ इधर से उधर दौड़ता रहता है। जागतिक यश, वैभव, प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य आदि भी कभी-कभी पुण्य-कर्म करने के कारण प्राप्त करता रहता है, किन्तु इन सुख वैभवों से जीवन साफल्य कहां ? जहां आत्मशुद्धि का लक्ष्य नहीं वहां महानता नहीं मिल सकती। उसे जीवन की सार्थकता नहीं कह सकते।

जीवन की सार्थकता है त्याग, तपोमय जीवन में। भोगोपभोग में नहीं। महानता का एक ही राजमार्ग है ! संयमी जीवन ! नवयुवक यादवसिंहजी ने इस गूढ रहस्य को समझ लिया। किशोरावस्था में ही वे धर्माभिमुख बने और अपने पूज्य पिता श्री से मनोभाव व्यक्त करके संयमी-जीवन मे रहने की अनुमति मांगी। पिता का वात्सल्यपूर्ण हृदय पुत्र की इस कठोर संयम यात्रा के विचारों से प्रकम्पित हो गया। उन्होंने स्नेहवश पुत्र को इस पथ के अवलम्बन से रोका। बोले—बेटा ! मेरे जीते-जी नहीं, पश्चात् तुम अपनी अभिलाषा पूर्ण कर सकते हो। विनयवान् सुपुत्र ने पिता की आज्ञा शिरोधार्य की और अवसर की प्रतीक्षा करने लगा।

सैलाना निवासी श्री तेजकरणजी कोठारी के पुत्रों में से सब से छोटे पुत्र श्री यादवसिंहजी हैं। कुछ वर्ष पहले इनकी माता श्रीमती केशरदेवी का स्वर्गवास हो गया था। बालक को माता के विरह ने संसार विरक्त बना दिया। वह त्यागमय-जीवन व्यतीत

करते हुए व्यावहारिक शिक्षा ग्रहण कर रहा था। साथ ही कुछ सुयोग्य मित्रों के सहवास से धार्मिक शिक्षण भी चल रहा था।

पूज्यवर्या श्रीमती ज्ञानश्रीजी महाराज साहब आदि को सैलाना में दो चातुर्मास करा कर तत्वज्ञान का प्रचार कराने और स्वयं भी तात्विक शिक्षा लेने में श्री यादवसिंहजी अग्रगण्य थे। बड़े भ्राता शेरसिंहजी भी भाई के पक्ष में रह कर उनकी भावना को दृढ़ बनाने में पूर्ण सहयोग दे रहे थे।

वृद्ध पिता अपनी ऐहिलौकिक लीला संवरण करके परलोक में प्रस्थान कर गये थे। अब कुछ विशेष विघ्न नहीं था। अतः दीक्षा का मुहूर्त्त वैशाख शुक्ला १२ सं० १९६८ के दिन निश्चित हो गया।

कई दिन पूर्व दीक्षा महोत्सव प्रारम्भ हो गया। मन्दिरों में अष्टाह्निकोत्सव होने लगा। वैरागी प्रतिदिन वन्दोले जीमने को स्वधर्मी बन्धुओं के यहां जाते, वहां स्वागत, सत्कार, भोजनादि होता। बड़े समारोह पूर्वक वन्दोला उपाश्रय पहुंचता, वहां प्रभावना दी जाती। रात्रि में वैराग्य गायन होते। दीक्षा से पूर्व दिन वैरागी महोदय का अभिनन्दन करने को एक आम सभा हुई, जिसमे वैरागी महानुभाव के दोनों बड़े भ्राता श्रीयुत मेघसिंहजी व मानसिंहजी ने अपने भाई यादवसिंहजी को पुनः समझाया कि—भाई, तुम अभी दीक्षा न लो, कई प्रलोभन भी दिये किन्तु ये तो सच्चे विरागी थे। इन बातों से कब रुकने वाले थे।

श्री शेरसिंहजी ने वैरागी महाशय का उपस्थित सज्जनों को परिचय दिया। तदनन्तर सेठ केशरीसिंहजी साहब ने रतलाम संघ की ओर से दीक्षार्थी का हार्दिक अभिनन्दन करते हुए शुभ कामनाएं प्रकट कीं, और बधाई देते हुए सभा विसर्जित की गई।

आज महाभिनिष्क्रमण का पुण्य प्रभात है। सेठ केशरीसिंहजी महोदय ने सैलाना वालों से विनम्र प्रार्थना करके वरघोड़ा अपनी ओर से निकालने की स्वीकृति ले ली थी। राजकीय हाथी, घोड़े, रथ, बैण्ड, पदाति आदि इस शुभ प्रसङ्ग के लिए सेठ साहब के द्वारा मांगे जाने पर नरेश महोदय ने भिजवा दिये थे। एवं स्वयं नरेश ने आने की स्वीकृत प्रदान की थी। समीपस्थ नगरों के सहस्रशः नर-नारी इस उत्सव को देखने रतलाम आये थे। सबके आवास व भोजन का प्रबन्ध धर्मप्राण सेठ साहब की ओर से था।

सब लोग शीघ्रता से निवृत्त हो कर बाजार में एवं श्री आनन्द चन्द्र पाठशाला में उपस्थित थे। वैरागी महानुभाव वस्त्राभूषण से सुसज्जित हो संयम लक्ष्मी का वरण करने को बड़ी सजधज से राजकीय गजराज पर विराजमान हो गये।

जुलूस के आगे कई बैण्ड मधुर धुनें बजाते हुए चल रहे थे। हजारों नर-नारी विविध वस्त्राभूषण धारण करके गजराज के आगे-पीछे चलते हुए 'जैन शासन की जय', 'भगवान् महावीर

की जय', गुरुदेव व गुरुवर्या की जय', 'वैरागी श्री यादवसिंहजी की जय' के घोष से वार-वार गगन को गुञ्जायमान कर रहे थे। वैरागी वर्षी दान देते हुए सबको प्रति नमस्कार करते हुए प्रसन्न मन से गजराज पर वैठे हुए इन्द्र के समान शोभायमान लग रहे थे। जुलूस श्री आनन्दचन्द्र पाठशाला से प्रयाण करके नगर के मुख्य राजमार्गों का अतिक्रमण करता हुआ दीक्षा संस्कार के निमित्त नियत स्थान (सेठ साहब के उद्यान में) पहुंचा।

गुरुदेव श्रीमान् त्रैलोक्यसागरजी महाराज साहब आदि मुनि-मण्डल एवं चरितनायिका आदि साध्वीवर्ग दीक्षा-स्थान पर पूर्व ही पधार गया था।

वरघोड़ा पूर्व निर्धारित समय पर नियत स्थान पर पहुँचते ही फिर एक वार जोरों से जनता ने जय ध्वनि की। वैरागी महोदय गजराज से अवतरण करके हंस गति से चलते हुए गुरुदेव के चरणों में पहुँचे। सर्व त्यागी वर्ग को नमस्कार एवं गृहस्थ समुदाय को प्रणाम करके नांदि रचना के सम्मुख उपस्थित होकर उचित विधि-विधान (देववन्दनादि) करने लगे। तत्पश्चात् मुण्डन क्रिया हुई और साधुवेश धारण करके पुनः उपस्थित हो गये। स्वयं रतलाम नरेश अपने राज्याधिकारियों समेत इस अद्भुत और अदृष्टपूर्व दीक्षा संस्कार को देखने वहां पधारे हुए थे। नगर के गण्यमान व्यक्ति भी उपस्थित थे। इस नवयुवक वैरागी के संयम पथ का अनुसरण उन्हें चकित कर रहा था। कितने ही

इस पुण्य कार्य की अनुमोदना करके अपने भी आत्मविकास का पथ प्रशस्त कर रहे थे।

शुभ लग्न में दीक्षा संस्कार सम्पन्न हुआ। नवदीक्षित मुनि 'श्री आनन्दसागरजी महाराज' के नाम से समलंकृत किये गए और गणाधीश्वर गुरुदेव श्रीमान् त्रैलोक्यसागरजी महाराज साहब के शिष्यत्व को प्राप्त करके धन्य व कृत पुण्य बने।

श्री गुरुदेव ने संयम की विशिष्टता पर विवेचनपूर्ण प्रवचन किया। नवदीक्षित मुनि महोदय ने भी संयम मार्ग पर आरूढ करने के उपलक्ष में गुरुदेव का आभार मानते हुए जैन दीक्षा की एवं मुनिधर्म की कठिनाइयों पर प्रकाश डाला एवं शासनदेव से अपना अनुष्ठान संयम यात्रा निर्विघ्न रखने की प्रार्थना की।

इस प्रकार से यह दीक्षा समारोह सम्पन्न हो जाने पर उपस्थित विशिष्ट व्यक्तियों—श्री नरेश महोदय, श्रेष्ठिवर्य, श्री शेरसिंहजी आदि ने नवदीक्षित मुनिवर का हार्दिक अभिनन्दन किया।

धूमधाम से दीक्षा समारोह पूर्ण हो जाने पर प्रभावना वितरित की गई और सब अपने-अपने घरों को प्रस्थान कर गये।

यही मुनि पुङ्गव आज खरतर गच्छ के एकमात्र आचार्य हैं। आप तन, मन व बुद्धि तीनों से जैन-शासन की निरन्तर सेवा कर रहे हैं और श्री मरसुखसागरजी महाराज साहब के समुदाय स्थित साधु-साध्वियों का कुशल सञ्चालन कर रहे हैं। आपने



प्रखरवक्ता पूज्यपाद स्व० आचार्यश्रीमान्
जिनानन्दसागर सूरीश्वरजी म० सा०

ायमी-जीवन में प्रवेश करते ही अपने विशिष्ट गुणों का परिचय
ाना प्रारम्भ किया। गुरुदेव की एवं अन्य पूज्य मुनिराजों की
ोवा शुश्रूषा विनय तो आपके स्वाभाविक गुण हैं। ज्ञानचर्चा,
्याख्यान, नवीन साहित्य की रचना तथा आवश्यक दैनिक क्रिया
ः अतिरिक्त समय में भी आप कभी विकथा नहीं करते, नियमित
ूप से अभिनव धार्मिक साहित्य सर्जन करते हैं। अब तक
ाापने छोटे-मोटे २० ग्रन्थों की रचना की है तथा ११ ग्रन्थों का
ानुवाद एवं २८ ग्रन्थों का संशोधन किया है। समुदाय में
ारणा वारणा, प्रेरणा आदि बड़े प्रेम पूर्वक करते रहते हैं।
ाप स्वभावतः ही मितभाषी हैं। अत्यन्त आवश्यक कार्य हो तभी
ापे-तुले शब्दोच्चारण करते हैं। सीमित विहार, मर्यादित उपधि,
ाल्प भाषण, चरित्र पालन की अनन्य निष्ठा, जैन शासनोन्नति
ी हार्दिक अभिलाषा, आश्रितों के प्रति उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार,
ौन धर्म की उन्नति के लिए सक्रियता, अन्य सम्प्रदायों के साथ
ेम पूर्ण वर्त्ताव, संघैक्य की भावना, समुदायोत्कर्ष की उत्कट
इच्छा, उदारता, गुणग्राहकता, सरलता, विद्वत्ता, निरभिमानता
ाादि कुछ ऐसे विशिष्ट गुण हैं जो आपको सामान्य मुनियों से
ृथक् करते हैं और आपश्री के व्यक्तित्व के द्योतक हैं। अधिक
ापंच आपको कतई रुचिकर नहीं। शासनदेव से प्रार्थना है कि
े इन पूज्येश्वर को दीर्घायु करें एवं ये चिरकाल समुदाय के
अधिष्ठाता पद को अलंकृत करते रहें।

इस दीक्षा समारोह के पश्चात् पुनः ज्येष्ठ मास की शुक्ला ५ को कोटा निवासी सांकला परिवार की एक विधवा महिला श्रीमती हुल्लासबाई की दीक्षा हुई। इनका नाम 'प्रमोदश्रीजी' रखा गया।

प्रतापगढ़ की ओर—

श्री गणाधीश महोदय आदि मुनिराजों का चातुर्मास श्रेष्ठि-वर्य केशरीसिंहजी साहब एवं रतलाम श्री संघ के आग्रह से वहीं हुआ।

चरितनायिका आदि का गत चातुर्मास रतलाम हो चुका था। उन्होंने गुरुदेव की आज्ञानुसार विहार कर दिया और मालव देश के ग्रामों में धर्म-प्रचार करतीं आप प्रतापगढ़ से ३ कोस इधर ही ग्राम में ठहर गईं और वहां से दूसरे दिन श्रीमती सौभाग्यश्रीजी महाराज साहबा आदि ५ साध्वीजी को प्रतापगढ़ भेज दिया। यह साध्वी-समूह मार्ग पूछता प्रतापगढ़ पहुंचा और श्री जिनमन्दिर में दर्शन कर रहा था। वहीं के एक श्रावक श्री चोखचन्दजी गिरासिया भगवान् की पूजा कर रहे थे, वे साध्वीजी को देखकर हर्ष विभोर हो गये और वन्दना करके सुखप्रश्न किया। समीप के उपाश्रय में ठहरा कर नगर निवासियों को सूचना दी। वे सब एकत्र हो कर आये। साध्वीवर्ग का यह प्रथम अवसर था इस नवीन शहर में आने का। दर्शन पाकर सभी आह्लादित हुए। वार्त्तालाप करने से ज्ञात हुआ कि स्वनामधन्या प्रसिद्ध धर्मोपदे-

शिका श्रीमती पुण्य श्रीजी महाराज साहबा यहां से ३ कोस पर विराजमान हैं। करीब ५०० स्त्री-पुरुष उक्त ग्राम में जा पहुंचे और गुरुवर्या के दर्शन पाकर धन्य हुए। पूर्व सूचना न देने का मधुर उपालम्भ भी दिया। गुरुवर्या ने मुस्करा कर फरमाया—महानुभावो ! किसी से पूर्व परिचय तो था नहीं, फिर कैसे किसको सूचना देते, अस्तु इसमें आप लोगों को कुछ विचार या असमंजस करने की आवश्यकता नहीं है। वास्तव में साधुओं के आचार भी यही हैं। कष्ट तो साधु-जीवन की कसौटी है।

कुछ लोग उस दिन वहीं ठहरे, अधिकांश जनता दूसरे दिन स्वागत-सत्कार के प्रबन्ध के लिए वापिस प्रतापगढ़ चली गई। दूसरे दिन बड़े समारोह पूर्वक नगर प्रवेश हुआ। प्रतापगढ़ की जनता के लिए यह प्रथम सुअवसर था।

इन पुण्य पुंज धर्ममूर्त्ति साध्वीश्रेष्ठा का पदार्पण इस नगर में प्रथम वार हो रहा था। संघ में अभूतपूर्व उत्साह था, श्रद्धा, भक्ति और स्नेह की त्रिवेणी का प्रवाह जोरों से प्रवहमान हो रहा था। तत्रस्थ श्रावकवर श्री लक्ष्मीचन्दजी साहब घीया (जैन श्वेताम्बर कांफ्रेन्स के सदस्य), श्री मन्नालालजी साहब हाकिम आदि प्रमुख सम्मान्य व्यक्ति बड़ी नम्रता से वन्दना करके अपने आपको भाग्यशाली समझ रहे थे।

(श्री घीयाजी साहब जैसे धर्मनिष्ठ श्रावक भी विरले ही होते हैं। उन्हें तत्कालीन गुजरात नरेश कुमारपाल भी कह दिया जाय

तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। परमार्हत महाराजा कुमारपाल के राज्य में हाथी, घोड़े और वृषभ आदि पालतू पशुओं को भी पानी छान कर पिलाने का नियम था और वृक्ष भी छने हुए पानी से ही सिंचन किये जाते थे। वैसे ही चीयाजी साहब के यहां भी पशुओं और वृक्षों को पानी छान कर पिलाया जाता था। इनके हृदय में धर्म के प्रति कितनी निष्ठा थी और आचरण में धर्म का कितना मुख्य स्थान था यह इससे भली प्रकार प्रकट हो रहा है। जैन शासन में कैसे-कैसे धर्मप्राण नर-रत्न इस पञ्चमकाल (कलिकाल) में भी विद्यमान हैं। इसका जीता-जागता प्रत्यक्ष उदाहरण श्री चीयाजी साहब हैं।)

धामधूम से नगर प्रवेश और जिनदर्शन के पश्चात् उपाश्रय में पदार्पण हुआ। माङ्गलिक देशना के अनन्तर प्रभावना वितरित हुई। सब लोग प्रसन्न मन से अपने घरों को चले गये।

गुरुवर्या के वहां विराजने से धर्मभावना जागृत होने लगी। प्रतापगढ़ के लिए चातुर्मास की विनति रतलाम में ही वि० सं० १६६५ से हो रही थी। अब मुख सम्मुख स्थित उत्तम भोजन का त्याग करने को कौन उद्यत होता? गुरुवर्या ने ८ दिन ठहर कर विहार का विचार व्यक्त किया तो संघ में तहलका मच गया। संघ के अग्रगण्य व्यक्ति विनयपूर्वक प्रार्थना करने लगे—पूज्येश्वरि! यह चौमासा तो यहीं होगा! हम किसी भी हालत में आपको नहीं जाने देंगे। गुरुवर्या ने हार्दिक आग्रह देखा तो

वर्षावास की स्वीकृति प्रदान कर दी। सब लोग हर्षविभोर हो गये और जय-जय की गगनभेदी ध्वनि से उपाश्रय गूंजने लग गया।

प्रति दिन व्याख्यान होने लगे। नगर की जैन तथा अजैन सभी जनता प्रवचन सुनने को ठीक समय पर उपस्थित हो जाती थी। आपने वहां गृहस्थ-धर्म पर विवेचन करके गृहस्थों के कर्त्तव्यों पर विशेष प्रकाश डाला तथा आत्म शुद्धि के लिए तप करने वा ओजस्वी भाषा में उपदेश दिया जिसके फलस्वरूप वहां तपस्या की धूम मच गई।

साध्वी वर्ग ने इस तपोयज्ञ का आरम्भ किया। श्रीमती मोतीश्रीजी महाराज ने मास क्षमण की सर्वश्रेष्ठ तपस्या, श्रीमती विद्याश्रीजी महाराज ने सत्तरह उपवास तथा अन्य साध्वियों में से किसी ने ११, किसी ने १० तो किसी ने ६ और किसी ने ८ उपवास किये।

श्रावक-श्राविकाओं में अट्ठाइयां पंचरंगी आदि तपस्याएं हुईं। इन तपस्याओं के उपलक्ष में अष्टाह्निक महोत्सव पूजाएं, प्रभावनाएं, रात्रि जागरण, प्रभु भक्ति, स्वधर्मिवात्सल्य आदि धर्म कार्यों में तत्रस्थ जनता ने अपने द्रव्य का सदुपयोग किया।

धार्मिक अभ्यास तो इस उत्साह से चल रहा था कि उपाश्रय ने एक विद्यालय का रूप ही ले लिया था। धार्मिक विधि-विधान, तथा द्रव्याणुयोग की शिक्षा पद्धति इतनी सरल थी कि विद्यार्थी बिना विशेष आयास सीख लेते थे।

प्रतापगढ़ वाले आज भी आपका स्मरण आदरपूर्वक करते हैं और उपकार के प्रति अत्यन्त कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

यह चातुर्मास अत्यन्त शानदार रहा। अनुपम शासन प्रभावना हुई। कार्त्तिक पूर्णिमा के पश्चात् विहार का विचार हो ही रहा था कि रतलाम से श्रीमान् गणाधीश्वर महोदय का पत्र आया—"हम विहार करके उधर ही आ रहे हैं। अतः तुम वहीं ठहरो।" इन समाचारों से आपने विहार का विचार स्थगित कर दिया। थोड़े ही दिनों में श्री गणाधीश महोदय अपने मुनि-मण्डल सहित वहां पधार गये। प्रतापगढ़ श्री संघ ने धामधूम से नगर प्रवेश करवाया। व्याख्यानों की खूब धूम मच गई, सार्वजनिक भाषण हुए।

श्रीमान् घीयाजी साहब ने गुरुदेव से प्रार्थना की—भगवन्! इस दास का बगीचा भी श्री चरणन्यास से पवित्र होना चाहिए। इतना लाभ इस सेवक को भी प्रदान करिये। श्री दरबार महोदय ने भी दर्शनों की अभिलाषा व्यक्त की है। वे भी वहीं दर्शनार्थ पधारेंगे तो उत्तम रहेगा।

गुरुदेव महोदय ने सानन्द स्वीकृति प्रदान कर दी तथा हमारी चरितनायिका महोदया ने भी जो वहों विराजमान थीं, (घीयाजी साहब द्वारा विनति करने पर) बगीचे में आने की अनुमति दे दी।

उपयुक्त समय पर मुनिमण्डल व साध्वी समुदाय ने बगीचे में पधार कर श्री घीयाजी की भावना सफल की।

वहीं पर एक दिन प्रतापगढ़ नरेश श्री रघुनाथसिंहजी महोदय अपने दीवान आदि कई राज्याधिकारियों एवं सेवकों सहित उद्यान में पधारे। गुरुदेवों एवं गुरुवर्या आदि के दर्शन किये। धार्मिक चर्चा काफी देर तक चली। नरेश महोदय ने जैन मान्यताओं की व्याख्या सुन कर अत्यन्त प्रसन्नता व्यक्त की।

अहिंसा का सूक्ष्म विवेचन जैन शास्त्रों जैसा अन्य शास्त्रों में नहीं है, न ऐसा व्यावहारिक आचरण ही अन्य दर्शन में मान्य है और जैन साधु-साध्वी तो अहिंसा की जंगम प्रतिमा है। ऐसा प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है तथा जैन गृहस्थ भी अपने जीवन व्यवहार में यथासाध्य हिंसा से वचने का प्रयत्न करते हैं।

इसकी थोड़ी जानकारी नरेश महोदय को थी ही। अब प्रत्यक्ष दर्शन करने पर उन्हें अत्यन्त आनन्द हुआ। उन्होंने भी यथाशक्ति हिंसा कम करने की अपनी भावना व्यक्त की।

गणाधीश महोदय की आज्ञा से थोड़े दिन प्रतापगढ़ में विराज कर चरितनायिका आदि साध्वी मण्डल मन्दसौर पधार गया। यहां से आपने श्रीमती ज्ञानश्रीजी महाराज साहब, विद्याश्रीजी महाराज साहब आदि आठ को श्री शत्रुञ्जय की यात्रार्थ प्रस्थान करा दिया एवं श्रीमती रतनश्रीजी महाराज साहब आदि ८ को ग्वालियर भेज दिया था। अन्य साध्वीजी आपके साथ ही थीं। श्रीमती रतनश्रीजी महाराज साहब ने ग्वालियर में अच्छा धर्म प्रचार किया था। मन्दसौर श्री संघ ने चातुर्मास विराजने

की आग्रहपूर्ण विनति की, परन्तु अभी वर्षाकाल आने में काफी देर थी, आपने विनति स्वीकार नहीं की।

पूज्येश्वर गणाधीश्वर महोदय आदि भी प्रतापगढ़ से मन्दसौर पधार गये। जोरों से धर्मप्रचार होने लगा। व्याख्यानों की तो धूम मच गई। हजारों व्यक्ति व्याख्यानों का लाभ लेने लगे। वहीं विराजने का आग्रह होने लगा।

पर आपको अभी मालव में भ्रमण करने का था। अतः आपने वहां रहना स्वीकार नहीं किया।

कोटे वाले सेठ साहब कई वर्षों से कोटे पधारने की विनति कर रहे थे। अबके अवसर देख कर मन्दसौर आये और पूज्येश्वर गणाधीश्वर एवं गुरुवर्या महोदया से कोटे पधारने का अत्यन्त भक्तिपूर्वक आग्रह किया। दोनों पूज्यवरों ने अन्ततोगत्वा कोटे चातुर्मास करने की स्वीकृति प्रदान की। तब सेठ साहब का मन सन्तुष्ट हुआ। सच है! भगवान् भी भक्ति के वश हो जाते हैं।

आपने मन्दसौर से विहार कर दिया और मणासा कुकड़ेश्वर रामपुरा आदि स्थानों में विचरती हुई धर्म प्रचार करने लगीं। भानपुरा वालों को ज्ञात हुआ कि रामपुरा में श्रीमतीजी विराज रही हैं। तो वे लोग रामपुरा आये और अपने यहां पधारने की हार्दिक विनति की। उसे स्वीकृत कर आप भानपुरा पधारीं।

वहां आपके व्याख्यानों की भारी प्रशंसा होने लगी। जैन-अजैन सभी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगे। आपके उपदेशों का भारी प्रभाव पड़ा। संघ में धर्म का अपूर्व उत्साह छा गया। पूजाएं, प्रभावनाएं, रात्रि जागरण आदि कई धर्म कृत्यों की धूम सी मच गई।

फलोधी से श्री गम्भीरमलजी कानूंगा की सुपुत्री सुश्री केशर कुमारी जिसकी अवस्था अभी केवल १२ वर्ष की थी और रतलाम से ही आपके साथ थी एवं संयम मार्ग का अनुसरण करने की अभिलाषा से साधुचर्या का एवं ज्ञान का अभ्यास कर रही थी। भानपुरा वालों ने प्रार्थना की कि इन पुण्यशालिनी विरागिनी की दीक्षा हमारे यहां होनी चाहिए।

तदनुसार फलोधी केशरकुमारी के परिवार को सूचित किया गया। वहां से उनकी माताजी आदि आ गईं और अपनी ओर से द्रव्य व्यय करने की इच्छा व्यक्त की किन्तु भानपुरा के अग्रगण्य श्रावकगण श्री हीराचन्दजी साहब कोठारी, रतनचन्दजी चोरड़िया, प्रेमराजजी चोरड़िया आदि महानुभावों ने आग्रह किया कि दीक्षा महोत्सव भी यहां का श्री संघ ही करायेगा। कृपा करके आप हमें ही इस पुण्य कार्य को करने की आज्ञा प्रदान करके कृतार्थ कीजिये। विरागिनी के स्वजनों ने इस धर्म-स्नेहपूर्ण आग्रह को स्वीकार कर लिया।

गणाधीश्वर गुरुदेव आस-पास ही विचर रहे थे, अतः दीक्षा-

महोत्सव पर पधारने की विनति लेकर कितनेक श्रावक उनकी सेवा में गये।

गुरुदेव ने आग्रहपूर्ण विनति स्वीकृत कर ली और उग्र विहार करते हुए अपने शिष्य वर्ग सहित शीघ्र ही भानपुरा पधार गये।

दीक्षा महोत्सव आरम्भ हो गया। इस महोत्सव का वर्णन करने में लेखनी भी अपने आपको असमर्थ अनुभव कर रही है।

विरागिनी के वन्दोले प्रतिदिन वडी धूमधाम से निकलने लगे। आगे-आगे वैण्ड वाजा, उसके वाद पुरुषों का समूह, पीछे गजराज पर अम्वालिका में वैठी हुई वालकुमारी वस्त्राभूषण धारण किये साक्षात् देवकमारी सी शोभायमान लगती थी। विरागिनी वाला के मुख पर अपूर्व वैराग्य तेज झलकता था। जो भी देखता विस्मयाभिभूत होकर दांतों तले अंगुली दवाता हुआ देखता ही रह जाता था। एक दिन यह जुलूस भानपुरा के हाकिम साहव की हवेली के नीचे होकर चला जा रहा था। हाकिम साहव वातायन में वैठे हुए थे। उन्होंने अपने सेवकों से पूछा कि यह कैसा जुलूस है? तव सेवकों ने कहा—सरकार! यह लड़की संन्यासिनी वनेगी। हाकिम साहव तो यह सुनकर दंग रह गये। उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था कि इतनी छोटी वालिका संन्यास धारण करेगी। उन्होंने जुलूस रोकने का आदेश दिया और स्वयं नीचे उतर आये। समाज के कई अग्रगण्य व्यक्ति

हाकिम साहब के पास आ गये थे। हाकिम साहब ने उनसे कहा-इस लड़की को हाथी से उतार कर हमारे पास लाओ। हम इसकी परीक्षा करेंगे। आप लोग बच्चों को फुसला कर उन्हें जबरन साधु बनाते हो। भला यह छोटी सी बच्ची साधुपने के महत्व को क्या समझ सकती है?

विरागिनी बालिका को हाथी से उतार कर हाकिम साहब के पास लाया गया।

बालिका ने आते ही प्रसन्नतापूर्वक हाकिम साहब को विनम्र भाव से प्रणाम किया। बालिका की सभ्यता देख कर हाकिम साहब कुछ शान्त हो गये। उन्होंने विरागिनी से कई प्रश्न किये जिनका उत्तर विरागिनी ने ऐसी कुशलता से दिये कि वे निरुत्तर हो गये और बोले—अच्छा भाई, इसे साध्वी बनने दो।

दीक्षा का शुभ मुहूर्त वि० सं० १६६६ ज्येष्ठ शुक्ला ६ का निश्चित किया था। उस दिन प्रात:काल ही से धूमधाम लग गई। वरघोड़े की तैयारी होने लगी। ठीक समय पर धर्मशाला से प्रस्थान करके वरघोड़ा स्थानीय दादावाडी में पहुँचा। वहां पर दीक्षा संस्कार सम्पन्न हुआ। नवदीक्षिता का नाम 'सिद्धिश्रीजी' रख कर उन्हें श्रीमती शृङ्गारश्रीजी महाराज की शिष्या बनाई गईं। हजारों नर-नारियों ने इस महान् त्याग धर्म की प्रशंसा करके पुण्य लाभ लिया। इस पुण्य प्रसङ्ग के पश्चात् हमारे पूज्य मुनि-मण्डल व आर्या समुदाय ने भानपुरा से विहार कर दिया।

मार्ग स्थित ग्रामों में—सुनारा, रामगंज मण्डी, मोडक आदि मे धर्मप्रचार करते हुए कोटा की दादाबाड़ी में पधार गये। कोटा वाले सेठ साहब केशरीसिंहजी व उनका समस्त परिवार तथा श्री संघ के भी अनेक कुटुम्ब वहां पहले से ही स्वागतार्थ उपस्थित थे। एक दिन दादावाड़ी में विराजे, वहां पूजा व स्वधर्मीवात्सल्य हुआ।





चरितनायिका के परमभक्त दीवान
बहादुर श्रेष्ठिवर्य श्री केशरीसिहजी
सा० (कोटा, रतलाम)

कोटा में चातुर्मास

आषाढ़ कृष्णा एकम का पुनीत दिवस है। पूज्य गणाधीश्वर महोदय अपने ६ शिष्यों युक्त एवं हमारी पूज्येश्वरी चरितनायिका भी १६ आर्याओं के मण्डल सहित दादावाड़ी से रवाना हो चुके हैं। गुरुवर्या के परम भक्त श्रेष्ठिवर्य महोदय राजकीय लवाजमें बैण्ड, हाथी, घोड़े आदि एवं हजारों नर-नारियों के साथ सम्मुख चले आ रहे हैं। पाटणपोल नामक नगर-द्वार के बाहर यह त्यागी-समूह दृष्टिगोचर होते ही बैण्ड आदि वाद्ययन्त्रों ने स्वागत गान ध्वनि से आपका स्वागत किया। सेठ साहब आदि कोटा-निवासियों के हर्ष का पारावार न था। सबके रोम-रोम हर्षित हो रहे थे।

धीर गम्भीर गति से अग्रसर होती हुई इन त्याग संयम की जंगम प्रतिमाओं के दर्शन करके सभी उपस्थित जनता आनन्द-विभोर हो गई।

सारा जुलूम क्रमश प्रयाण करता रामपुरा बाजार स्थित सेठ साहब की हवेली के बराबर बने हुये आसापाला के उपाश्रय के समीप पहुँचा। श्री जिनमन्दिर के दर्शन करके श्री गणाधीश महोदय ने मधुर वाणी से धर्मोपदेश सुनाया।

जय-जय और धन्य-धन्य की ध्वनि से उपाश्रय गूंज उठा।

गणाधीश्वर महानुभाव अपने शिष्य मण्डल सहित उपाश्रय में ही विराजे। श्रीमती चरितनायिका ने शिष्याओं सहित तत्रस्थ पंचायती धर्मशाला में निवास किया।

विद्यार्थी साधु-साध्वियों को अध्ययन की दृष्टि से पूर्व ही कोटे भेज दिया था। उनका अध्ययन सुचारु रूप से चल रहा था।

पूज्येश्वर गणाधीश महोदया आदि एवं चरितनायिकादि का कोटे में प्रथम वार ही पदार्पण हुआ था। परम श्रद्धालु, देवगुरु धर्म के अनन्य भक्त, श्रावकवर्य श्रीमान् केशरीसिंहजी साहब एवं उनका परिवार तन, मन व धन से गुरुभक्ति में अग्रसर रह कर दुर्लभ मानव तन एवं चञ्चला लक्ष्मी को सफल बना रहे थे।

कोटे में यह अभूतपूर्व प्रसङ्ग था, तत्रस्थ जैन संघ भी गुरु-भक्ति का अपूर्व लाभ ले रहा था। साथ ही व्याख्यान चौपाई एवं गृहस्थवर्ग को धार्मिक शिक्षण देकर त्यागीवर्ग भी शासनसेवा के कार्य में संलग्न रहते हुए संयम तप की साधना करने लगा।

सेठ साहब ने गुरुवर्य एवं गुरुवर्या से विधिविधान पूर्वक संम्यग्दर्शन, अणु व्रत एवं कई नियम धारण किये।

प्रसङ्गवश मैं यहां उक्त सेठ साहब का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर रही हूं। क्योंकि वह आदरणीय ही नहीं अनुकरणीय भी हैं।

पूज्येश्वर बड़े दादा गुरुदेव ने प्रसिद्ध राजा भोज के वंशजों पंवार क्षत्रियों को जैनधर्म में दीक्षित कर उन्हें सम्यक्त्वधारी बनाया एवं ओसवाल जाति में गौरवशाली बापना वंश की स्थापना की।

इस वंश का इतिहास बड़ा समुज्ज्वल है। सबसे प्राचीन इतिहास जैसलमेर के अमर सागर नामक सरोवर एवं उद्यान में लगे हुए एक शिलालेख से मिलता है जो सेठ हिम्मतरामजी बापना ने लगाया था।

उनके वंश में देवराजजी बापना उनके पुत्र गुमान चन्दजी बापना थे। इनके पांच पुत्र थे— बहादुरमलजी, सवाईरामजी, मगनीरामजी, जोरावरमलजी और प्रतापचन्दजी। सर्वप्रथम सेठ बहादुरमलजी जैसलमेर से कोटा आये और चम्बल तट पर कुनाड़ी ग्राम में दूकान करके व्यापार करना आरम्भ किया। थोड़े ही दिनों में व्यापार उन्नति के शिखर पर चढ़ गया। आपने करोड़ों की सम्पत्ति उपार्जित की। जैसलमेर से अपने लघु भ्राताओं को भी बुला लिया। सब भाइयों ने मिलकर ३५० दूकानें भारतवर्ष के विभिन्न नगरों में स्थापित कीं और विदेशों—चीन, जापान आदि में भी दुकानें खोलकर वहां भी व्यापार करने लगे।

पाचों भाई अलग-अलग होकर व्यापार करने लगे। सुविधा के लिए सेठ बहादुरमलजी ने कोटे में स्थायी निवास करके वहां अपना हैड क्वाटर्स बनाया।

सेठ बहादुरमलजी तत्कालीन गवर्नमेंट की देवली एजेंसी के व कई रियासतों के खजांची (ट्रेजरर) थे। आपको कोटा राज्य की ओर से चांदी की छड़ी, अड़ानी, छत्र, म्याना, पालकी, ताम-झाम, हाथी-घोड़ा मय सोने के साज के, और कई पट्टे-परवाने मिले थे। बूंदी से रायथल और टोंक राज्य से खुर्री गांव जागीर में प्राप्त हुए थे।

आपकी धार्मिक प्रवृत्ति का और देवगुरु के प्रति महान् श्रद्धा का तो इसी से अनुमान लगाया जा सकता है, कि जहां-जहां दूकानें थीं वहां-वहां मन्दिर देरासर बनाये थे और सारा प्रबन्ध दूकान की ओर से होता था, जो आज भी कई स्थानों पर दृष्टि-गोचर हो रहा है। सेठ बहादुरमलजी साहब की भावना श्री शत्रुञ्जय का संघ निकालने की थी जो पूर्ण न हो सकी और उनके स्वर्गवास के बाद सुयोग्य दत्तक पुत्र श्री दानमलजी साहब ने संघ निकाल कर अपने स्वर्गीय पिता की अभिलाषा पूर्ण की। श्री बहादुरमलजी का स्वर्गवास वि० सं० १८९० में हो गया।

श्री दानमलजी साहब ने वि० सं० १८९१ में श्री शत्रुञ्जय का विशाल संघ निकाला। इस संघ में वृहत्खरतरगच्छीय श्रीमज्जिन महेन्द्र सूरिजी महाराज आदि १००० साधु-साध्वी एवं यति आदि पूज्य वर्ग था। संघ में सारे ३० हजार व्यक्ति थे। इस संघ की रक्षा के लिये अंग्रेज सरकार, उदयपुर, कोटा, बूंदी, टोंक, जैसलमेर व इन्दौर राज्यों ने स्वयं के व्यय से

अपनी-अपनी सेनाये भेजी थीं, जिनमें १५०० अश्वारोही, ४००० पैदल, ४ तोपें, हाथी, नगारे, निशान, छड़ीदार, चोपदार आदि थे।

यह संघ मार्ग में आने वाले जैनमन्दिरों, दादावाड़ियों एवं धर्मशालाओं का जीर्णोद्धार कराता हुआ स्वधर्मिवात्सल्य प्रभावना आदि करता हुआ क्रमशः तीन मास में श्री सिद्धाचलजी पहुंचा था। इसके उपलक्ष में ओसवाल समाज ने आपको संघवीपद पर अधिष्ठित किया। जैसलमेर महारावल ने लोद्रवा ग्राम जागीर में प्रदान किया। इस संघ में २० लाख रुपयों का सद्-व्यय करके महान पुण्य और अमर कीर्ति प्राप्त की। आपने कितने ही मन्दिरों और दादावाड़ियों का निर्माण भी कराया जो आज भी आपकी पुण्य गाथा का मूक गौरवगान कर रहे हैं।

इन्हीं के प्रपौत्र स्वनाम धन्य श्री केशरीसिंहजी साहब थे। रतलाम एवं कोटा दोनों ही स्थानों पर आपका अधिकार था। सेठ चांदमलजी साहब वापना ने निःसन्तान होने के कारण आपको ही अपना उत्तराधिकारी बना दिया था। रतलाम के उद्यापन महोत्सव का वर्णन हमने गत परिच्छेद में कर दिया है। सेठ केशरीसिंहजी साहब को रतलाम नरेश की ओर से राज्य-भूषण, इण्डिया गवर्नमेंट की ओर से सन् १९१२ में रायसाहब, सन् १९१६ में रायबहादुर तथा सन् १९२५ में दीवानबहादुर की सम्माननीय उपाधियां प्राप्त हुई थीं।

ये बड़े ही धर्मनिष्ठ, भद्र प्रकृति, निरभिमानी, दानवीर और उदार महानुभाव थे। इतनी सम्पत्ति के स्वामी और कई उपाधियों से विभूषित होने पर भी आपमें अभिमान का अंश भी न था, आप बड़े ही विनम्र स्वभाव वाले दयालु व्यक्ति थे। गणाधीश श्री म० त्रैलोक्यसागरजी महाराज साहब से सेठ साहब ने वासक्षेप लेकर उन्हें अपना गुरु बनाया। श्रीमती सेठानीजी महोदया ने भी हमारी चरितनायिका पूज्येश्वरी से वासक्षेप लिया था।

नवदीक्षित मुनिराज श्रीमान् आनन्दसागरजी महाराज साहब ने सेठ साहब की प्रेरणा से 'सप्तव्यसन निषेध' नामक पुस्तक लिखी जिसकी कई आवृत्तियां प्रकाशित हो चुकी हैं। पुस्तक अपने विषय का प्रतिपादन करने में समर्थ और रोचक शैली में लिखी गई है। प्रत्येक के लिए पठनीय एवं मननीय है।

सेठ सा० प्रतिदिन जिनपूजन, नमस्कार मन्त्र का जाप आदि नित्य नियम से निवृत्त होकर गुरु महाराज व गुरवर्या महोदया के दर्शनार्थ पधारते थे। व्याख्यान में भी प्रायः आना न भूलते थे।

चातुर्मास में साध्वीवर्ग में काफी तपस्या हुई। श्रीमती मेघश्रीजी महाराज ने मासक्षमण, श्रीमती ताराश्रीजी महाराज ने एवं अमृतश्रीजी महाराज ने ११ उपवास एवं अन्य कई साध्वीजी ने यथाशक्ति तपस्याएं कीं। चरितनायिका ने भी ११ उपवास की तपस्या की थी।

श्राविका समाज में भी अट्ठाइयां, पंचरंगी, एकान्तर तप, विंशति, स्थानक तप आदि कई प्रकार की तपस्याएं हुईं।

इन तपस्याओं के उपलक्ष में अष्टाह्निकोत्सव, प्रभावनायें, रात्रि जागरण, स्वधर्मिवात्सल्य, वरघोड़ा आदि धर्मकार्य हुए।

पर्यूषण का समारोह खूब ठाठदार रहा। उक्त सेठ साहब की ओर से सदा से ही तीनों वक्त—प्रातः व्याख्यान में, मध्याह्न व्याख्यान में, सान्ध्य प्रतिक्रमण में नित्य कई प्रभावनायें होती थीं। रात्रि में मन्दिरों में भक्तिभावनायें होती थीं। पारणे के दिन स्वधर्मिवात्सल्य होते आ रहे थे। अबके विशेष प्रकार से हुए। जैन संघ में अपूर्व उत्साह दृष्टिगोचर होता था। इस वर्ष सेठ साहब ने पुण्य कार्यों में हजारों रुपया व्यय करके पुण्य संचय किया। सेठ साहब की विशेषतायें वे ही अनुभव कर सकते हैं जिनको कभी उनसे मिलने का सुअवसर मिला हो। ऐसे निर-भिमानी और धर्मभीरु तथा विनम्र स्वभाव वाले व्यक्ति विरले ही होते हैं। धनी, मानी, ऐश्वर्यशाली एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति होते हुए भी वे धर्मप्राण व्यक्ति थे। शासनसेवा के लिए सदैव तत्पर रहते थे। स्वधर्मिजनों के प्रति उनका विशिष्ट धर्मानुराग तो था ही। मानव मात्र के प्रति भी वे बड़े ही उदार, मिलनसार और दयार्द्र हृदय थे। किसी भी प्रकार का चन्दा हो उसे उदार हृदय से भरते थे। उनके पास जाकर कोई कभी खाली हाथ न लौटता था। विरोधी और अपने व्यापार में लाखों की हानि कर देने

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

खाया था। अतः पन्द्रह दिन श्योपुर में ही ठहरना पड़ा और यहीं श्री कस्तूरचन्दजी आपके भक्त बन गये थे।

मार्ग में रघुनाथपुर के जागीरदार श्रीमान् कुलभानुचन्द्रसिंह जी महोदय ने आपकी बड़ी भक्ति की।

ग्रामों में ठहरने के स्थानों की खोज करने पर प्रायः कई ग्रामों में गढ़ (जागीरदार के रहने का स्थान) ही निवास योग्य मिलते हैं। यहां भी ऐसा ही हुआ। ठाकुर साहब के कामदार दिगम्बर जैन श्री कस्तूरचन्दजी थे। वे हमारे पूज्य साध्वीमण्डल के आने की सूचना मिलते ही सम्मुख स्वागतार्थ आ गये और सबको गढ़ में ले गये। ठाकुरसाहब ने आपसे धार्मिक चर्चा करके अत्यन्त प्रसन्नता व्यक्त की। अन्तःपुर में पधारने का आग्रह किया और आप शिष्यामण्डली सहित पधारीं। ठकुरानियां बड़ी भव्य और विनयशील थीं। उन्होंने बड़े आदर सहित आपका उपदेश सुना। बड़ी ठकुरानी साहिबा श्रीमती केशरकुंवर पर आपके उपदेश का ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि आजीवन मद्यमांस का त्याग, पानी छानकर पीने का नियम, एकादशी आदि कई व्रत धारण किये। छोटी ठकुरानी श्रीमती छत्रकुंवर ने भी कई व्रत नियम लिए। फलस्वरूप जो ठाकुर साहब निःसन्तान थे उन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। वे तथा उनका परिवार आजीवन चरितनायिका के परमभक्त रहे और कई बार ग्वालियर, आगरा आदि में दर्शनार्थ पधारे थे।

ठाकुर साहब ने चातुर्मास करने का अत्यन्त आग्रह किया। ग्वालियर की स्वीकृति प्रदान की जा चुकी थी, ग्वालियर से कई व्यक्ति कोटे ही लेने आ गये थे और वे साथ ही थे। स्वयं सेठ नथमलजी साहब यहां पधार गये और २ दिन ठहरा कर विहार करा दिया। ग्रामानुग्राम विचरती धर्मोपदेश द्वारा जनजागृति करतीं आप ग्वालियर के निकट पहुँच कर दादाबाड़ी में ठहर गईं। श्रीमती रतनश्रीजी महाराज साहबा आदि भी जो पूर्व ही वहां प्रेषित कर दिये गये थे, दादाबाड़ी में पधार गये थे। आप सब मिलकर ३० साध्वीजी हो गये थे।

ग्वालियर श्री संघ वहां उपस्थित था। उस दिन आपने वहीं निवास किया।





चरितनायिका के अनन्य भक्त श्रावक सेठ
नथमलजी सा० गोलेछा (ग्वालियर)

ग्वालियर में अभूतपूर्व प्रवेश
महोत्सव एवं चातुर्मास

संसार में कई प्रकार के जुलूस निकलते हैं—विवाहोपलक्ष में. नरेशों के या राज्याधिकारियों के स्वागत में, नेताओं के आगमन पर, धार्मिक समारोहों पर। लश्कर शहर ने कई प्रकार के जुलूस देखे थे, किन्तु साध्वियों के नगर-प्रवेश का यह प्रथम अवसर था। और इतनी धामधूम वाले जुलूस सहित आज तक किसी साधु-साध्वी या सन्त-महन्त का नगर-प्रवेश भी कभी नहीं हुआ था। यद्यपि हमारी चरितनायिका ने सेठ साहब को ऐसा करने के लिए रोका भी था परन्तु उन्होंने शासन प्रभावना का नाम लेकर हमारी गुरुवर्या की आज्ञा प्राप्त कर ही ली। वह दिवस ग्वालियर के लिए स्मरणीय बन गया।

सेठ साहब ने राजकीय लवाजमा मांग लिया था। स्वयं नरेश महोदय भी जुलूस देखने उपयुक्त स्थान पर सपरिवार पधार कर विराजमान हो गये थे।

सबसे आगे राजकीय हाथी ध्वजा फहराता चल रहा था। उसके पीछे सोने-चांदी के साज वाले १०० घोड़ों की कतार चल रही थी। उनके बाद फिर फिटन, बग्घियां, घोड़ों के रथ आदि

थे जिसमे वस्त्राभूषण धारण किये हुए श्रीमन्तों के बालक-बालिकाये बैठे थे। बीच में बैण्ड था। पश्चात् राजकीय शीविकाओं व म्यानों का समूह था, फिर एक राजकीय बैण्ड था। बैण्ड के पीछे खाशबरदार बल्लम वाले और चपरासी चल रहे थे। इनके पीछे एक खास बैण्ड और था, इस प्रकार ३ बैण्ड बाजे थे।

लश्कर के कई गण्यमान्य अजैन व्यक्ति, राज्याधिकारी आदि एवं श्री संघ के सभी व्यक्ति चल रहे थे। बीच-बीच में जैनधर्म की जय, अहिंसा की जय, श्रीमती पुण्यश्रीजी महाराज साहिबा की जय आदि नारों से आकाश गूंज उठता था। इनके पीछे हमारी चरितनायिका उन्तीस साध्वियों सहित चल रही थीं। उस समय का दृश्य देखने योग्य था। पूज्येश्वरी चरितनेत्री महोदया एक सेनानी के समान साध्वियों की सेना के अग्रभाग में शोभित हो रही थीं।

सबसे अद्भुत दृश्य था पीछे एक यवनिकाओं युक्त शामियाने का! इसमें स्त्रियां चल रही थीं। तत्कालीन समाज में विशेषतः देशी राजधानियों में रहने वाले लोगों में अपनी स्त्रियों को पर्दे में ही रखने का प्रचलन था अतः सभी महिलायें इस जुलूस में पर्दे में चल रही थीं और मङ्गल गानों की मधुर ध्वनि इन कोकिल-कण्ठियों के कण्ठ से निकल कर वातावरण को मोहक और आकर्षक बना रही थीं। इस जुलूस को देखने बाजारों में, हवेलियों के झरोखों में तथा छतों पर नरनारी अनिमेष दृष्टि से

कोई खड़े थे, कोई बैठे थे। शहर के मुख्य २ बाजारों में घूमता हुआ यह जुलूस श्रीचिन्तामणि पार्श्वनाथ भगवान् के मन्दिर में पहुंचा। भगवान् के दर्शन करके पंचायती धर्मशाला में पधार कर गुरुवर्या ने देशना दी। हजारों नर-नारियों ने आपकी देशना सुनकर धन्य २ के शब्दों से हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की और धर्मलाभ तथा प्रभावना लेकर प्रसन्नता से अपने अपने घर चले गये।

आज सेठ साहब व उनके परिवार वर्ग के हर्ष का पार न था। कई वर्षों से प्रतीक्षा करते २ विनतियां करते २ गुरुवर्या का पदार्पण हुआ है। सब चले गये हैं पर गुलेच्छा परिवार सेठ नथमलजी साहब, उनकी धर्मपत्नियां श्रीमती फूलकुंवर एवं जतनकुंवर सेठ साहब की बहिन जवाहर बाई, पुत्र बागमलजी साहब एव पुत्रवधू श्रीमती लाडकुंवर, श्रीमतीजी की सेवा में उपस्थित हैं और अपनी कोठी में पधार कर वहीं विराजने का आग्रह कर रहे हैं। गुरुवर्या को इनका आग्रह मानना ही पड़ा। आप शिष्या परिवार सहित पधारीं।

सेठ साहब व उनका परिवार तन-मन-धन से गुरुवर्या की सेवा में तत्पर रहने लगा। भक्ति की पराकाष्ठा थी, इन लोगों की हार्दिक भक्ति देख कर जीर्ण सेठ का स्मरण होता था।

प्रतिदिन व्याख्यान होने लगे जिन में हजारों नर-नारी उपस्थित होते थे। कभी आप स्वयं व्याख्यान फरमाती थीं तो

कभी आपकी शिष्याएं –श्रीमती रत्नश्रीजी म. सा. श्रीमती विनयश्रीजी म. सा. आदि को व्याख्यान देने की आज्ञा प्रदान कर देती थीं। इनकी व्याख्यान शैली को भी ग्वालियर के श्रोतृवर्ग ने खूब पसन्द किया।

मध्याह्न में रास आदि वचते थे, जिन्हें सुनने श्रावक वर्ग भी आता था। अतिरिक्त समय में साध्वियों का अध्ययन एवं श्रावक श्राविका वर्ग का पठन पाठन चलता था।

सेठ साहव को भी प्रति दिन व्याख्यान में आने का नियम था। सेठ साहव ने दादा वाड़ी में श्रीजिन कुशल सूरिजी की प्रतिमा स्थापन की। प्रतिष्ठाकार्य वि. सं. १६६९ की फाल्गुन शुक्ला ३ को भारी समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ।

तीन विरागिनियां आपके साथ थीं, उनकी दीक्षा ग्वालियर में ही कराने का उक्त सेठ साहव आदि ने भारी आग्रह किया। अतः इनमें से दो की दीक्षा विक्रम संवत् १६७० की वैशाख शुक्ला ३ (अक्षय तृतीया) को शुभ मुहूर्त्त में दादावाड़ी में सम्पन्न हुई। ये तीनों विरागिनियां फलोधी की ही थीं—

१. गोमीवाई, सोमराजजी वैद की विधवा पत्नी, धनराजजी गुलेछा की पुत्री, १८ वर्ष की ही थी।
२. जड़ाववाई, इनकी सुसराल दमोह में मरोटियों के यहां थी। (प्रयत्न करने पर भी नाम ज्ञात नहीं हो सका)

इनके नाम क्रमशः गुमानश्रीजी, सुमतिश्रीजी स्थापन किये गये और हमारी चरितनायिका की शिष्याएं बनीं।

विद्यार्थिनी साध्वियों के अध्ययन का प्रबन्ध भी सुव्यवस्थित रूप से हो गया था। वे व्याकरण कोश, काव्य आदि पढ़ती थीं। पण्डित भगवानानन्द शास्त्री महोदय अध्यापक नियुक्त किये गए। श्रीमती विनयश्रीजी महाराज, कल्याणश्रीजी महाराज, सत्यश्रीजी महाराज, वल्लभश्रीजी महाराज एवं विजयश्रीजी महाराज ने विद्याध्ययन आरम्भ कर दिया। ये सभी बुद्धिशालिनी आर्याएं अध्ययन में तन-मन से लग गईं।



राजपरिवार को प्रतिबोध

ग्वालियर नरेश श्रीमन्त माधवराव शिन्दे महोदय की भावना गुरुवर्या के दर्शन करने की हुई और उन्होंने अपने विचार सेठ नथमलजी साहब के सम्मुख व्यक्त किये कि तुम्हारे गुरु के दर्शन हमें भी कराओ ? सेठजी तो अवसर की प्रतीक्षा में थे ही। उन्होंने हां कर ली। तदनुसार चरितनायिका कतिपय सुयोग्य शिष्याओं सहित नरेश के निवासस्थान 'फूलबाग' में पधारीं। स्वयं नरेश, राजमाता सखिया राजे, बड़ी महारानी चिनकू राजे, छोटी महारानी गजरा राजे आदि राज परिवार के सदस्यों ने आपका अभ्युत्थान नमस्कार आदि से भक्तिपूर्ण स्वागत सत्कार किया। राजमाता ने आपको योग्य आसनकाष्ठ पट्ट पर विराजमान किया।

पांच सहस्र मुद्राएं आपके सम्मुख भेंट स्वरूप रखी गईं जिसे आपने मधुर शब्दों में जैन साध्वाचार के प्रतिकूल कह कर अस्वीकृत कर दिया। उन रुपयों को उन्होंने अन्य पुण्य कार्यों में व्यय करने का आदेश दिया।

राजमाता की निरामिप भोजनशाला में से अत्यन्त आग्रह होने पर भी आपने आहार नहीं लिया। सेठजी के परि-वार की एवं अन्य भक्त श्राविकाएं जो भोजन-सामग्री अपने



चरितनायिका के व्याख्यान मे ग्वालियर नरेश श्रीमन्त माधवराव शिन्दे

साथ लाई थीं उसीमें से लेकर आहार किया क्योंकि राजपिण्ड लेना साध्वाचार के विपरीत है।

आप अपनी शिष्याओं सहित दिन भर वहीं विराजीं और अपनी मधुर वाणी से धर्मोपदेश दिया। आपकी अव्यर्थ देशना ने राजपरिवार पर यथेष्ट प्रभाव डाला, जिससे स्वयं नरेश ने भी एकादशी आदि पर्वो के दिन आमिष भोजन न करने की प्रतिज्ञा की। राजमाता एवं महारानियों आदि ने भी उक्त प्रतिज्ञाएं कीं। वे आपसे तथा आपकी लघुवयस्का शिष्याओं विनयश्रीजी, सिद्धिश्रीजी आदि से अत्यन्त प्रभावित हुईं। इन सुयोग्य शिष्याओं के विद्वत्तापूर्ण आलाप संलाप एवं संस्कृतज्ञता ने राजकुटुम्ब को मोहित कर लिया। वे इनसे दिन भर आलाप संलाप में संलग्न रहीं।

सन्ध्या को चरितनायिका आदि अपने निवास स्थान पर पधार गईं। नरेश को उपदेश देने का एक चित्र यहां प्रस्तुत है।

वर्षाकाल में तपस्या की धूम मच गई। श्रीमती धनश्रीजी महाराज तथा मुक्तिश्रीजी महाराज एवं चिमनश्रीजी महाराज ने श्रेष्ठ मासक्षमण तप किया।

श्राविका वर्ग मे श्रीयुत कुशलचन्दजी नाहटा की धर्मपत्नी श्रीमती चन्द्रजीबाई तथा इन्दौर वाली श्रीमती मानकुंवरबाई ने भी मासक्षमण तप करके आत्म शुद्धि की। श्रीमती विनयश्रीजी महाराज ने अट्ठाई तप किया।

इनके अतिरिक्त श्रीमान् हजारीमलजी नाहटा की धर्मपत्नी श्रीमती धन्नीबाई तथा श्रीमान् छोटमलजी नाहटा की धर्मपत्नी श्रीमती रूपकुंवरबाई आदि कई श्राविकाओं ने १६, १५, ११ आदि उपवास का तप किया। अट्ठाइयों और प्रकीर्ण तप की तो गिनती ही नहीं की जा सकती। पंचरंगी तप भी अभूतपूर्व हुआ। इन सब तपस्याओं के उपलक्ष्य में पूजाएं, प्रभावनाएं, अष्टाह्निकोत्सव, वरघोड़ा, रात्रिजागरण, स्वधर्मिवात्सल्य आदि धर्मकार्यों की एक मास तक धूम रही।

पर्यूषण का ठाठ भी अपूर्व रहा। सारांश कि सारे चातुर्मास में धर्मकार्य खूब उत्साहपूर्वक हुए।

चातुर्मास उतरने पर आपने विहार करने की भावना व्यक्त की। किन्तु सेठ नथमलजी साहब आदि प्रमुख श्रावक वर्ग ने किसी भी प्रकार आपको विहार न करने दिया। आप वहीं विराजीं।

दूसरा चातुर्मास भी सानन्द व्यतीत किया। और तृतीय विरागिनी की दीक्षा भी मार्गशीर्ष में शुक्ला तृतीया को वहीं हुई।

ये विरागिनी फलोधी की सोनोबाई थीं। ये भी फलोधी के श्री दानमलजी सिन्घी के स्वर्गीय पुत्र मन्नालालजी की धर्मपत्नी थी। इनका नाम 'सज्जनश्रीजी' स्थापन किया गया।

श्री सिद्धाचलादि तीर्थों की यात्रार्थ पधारी हुई श्रीमती

विद्याश्रीजी महाराज एवं ज्ञानश्रीजी महाराज आदि भी ग्वालियर पधार गई थीं।

सब का साथ ही जयपुर की ओर विहार होने को था परन्तु श्रीमती वल्लभश्रीजी महाराज का शरीर अस्वस्थ हो गया अतः आपने चिकित्सा कराने को वहीं ठहरना उचित समझा। और श्रीमती रत्नश्रीजी महाराज साहिवा एवं ज्ञानश्रीजी महाराज साहवा आदि ८ को जयपुर की ओर विहार करा दिया।

श्री नथमलजी साहव की द्वितीय पत्नी सेठानी श्रीमती जतन वाई भी रोगाक्रान्त थीं और उपचारों के वावजूद भी उनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। उन्होंने भी आपको प्रार्थना की कि आप मुझे अन्तिम समय में धर्मश्रवण की सहायता देकर मेरी सद्गति में सहायिका वनें। इस प्रार्थना को करुणार्द्र हृदया गुरुवर्या ने स्वीकृत कर लिया और कुछ दिन और ठहरने का आश्वासन देकर आप वहीं विराजीं। थोड़े दिन पश्चात् सेठानी जी का स्वर्गवास हो गया। ये हमारी चरितनायिका की अनन्य भक्त थीं।

अव आपने जयपुर की ओर विहार कर दिया। क्योंकि जयपुर श्री संघ कई वर्षों से आपको जयपुर पधारने का आग्रह कर रहा था। श्रीमती इन्द्रवाई आदि कई श्राविकाएं यहां आपको लेने आ गई थीं। श्री संघ की ओर से भी जोरदार विनति पत्र आया था। यहां से आपका विहार पौष शुक्ला में

हुआ। मार्ग में मुरेना में आपके घुटने में वायु से दर्द हो गया। अतः तीन दिन वहां ठहर गये और उपचार किया जिससे दर्द कम हुआ और आपने वहां से भी विहार कर दिया। मार्ग स्थित धौलपुर आदि मे धर्म का प्रचार करतीं जैन शासन की ध्वजा फहरातीं, ग्राम मे एक दिन ठहरतीं आगरे की ओर धीरे धीरे बढ़ती जा रही थीं क्योंकि घुटने में अभी थोड़ी-थोड़ी पीड़ा होती थी। आगरा के समीप पहुँचने पर वहां का श्री संघ आपका स्वागत करने आया और ठाठदार प्रवेश हुआ। श्री संघ के प्रमुख व्यक्ति श्री तेजकरणजी सेठिया, श्री लक्ष्मीचन्दजी वैद आदि ने आपके दर्शन करके भारी कृतज्ञता व्यक्त की। आपके साथ शिवगंज की एक दीक्षार्थिनी श्राविका थीं। आगरा श्री संघ ने दीक्षा वहीं कराने का विनीत आग्रह किया। इस आग्रह को मान कर आपने उक्त विरागिनी की वहीं वि० सं० १९७१ के माघ मास की शुक्ला ५ (वसन्त पंचमी) को दीक्षा कराई और चारित्रश्रीजी नाम स्थापन किया गया।

दीक्षा देकर विहार करने की भावना थी परन्तु आपको आगरे में कुछ दिन ठहरना पड़ा।

दुर्बल विग्रहा वल्लभश्रीजी महाराज मार्गश्रम से पुनः अस्वस्थ हो गईं और आगरे में ही वि० सं० १९७१ फाल्गुन शुक्ला २ को उनका आकस्मिक स्वर्गवास हो गया। ये बड़ी सुयोग्या, सुशीला और विनयी विदुषी रत्न थीं। समुदाय को इनसे बहुत सी

आशाएं थीं, पर काल ने कब किसकी आशाओं को नष्ट नहीं किया ! इसकी क्रूर लीला अनवरत चलती ही रहती है।

श्री तेजकरणजी सेठिया आदि ने आपको चातुर्मास विराजने का आग्रह किया किन्तु सुयोग्या वल्लभश्रीजी म० का स्वर्गवास हो जाने एवं जयपुर वालों की विनति स्वीकृत कर लेने के कारण आपने वहां से विहार कर दिया और भरतपुर मे भी कुछ दिन ठहर कर वहां के श्री संघ की अभिलाषा पूर्ण की। चातुर्मास तो जयपुर का स्वीकृत कर लिया था अतः आग्रह होने पर भी आपने अपनी विवशता व्यक्त की और विहार कर दिया।



जयपुर में पदार्पण

आप जयपुर के समीप कानोता ग्राम के पहुंचीं। जयपुर से दो सौ श्रावक श्राविका वहां सम्मुख दर्शनार्थ आये थे। स्वधर्मी वात्सल्य हुआ। दूसरे दिन पुराना घाट नामक स्थान में विराजी, वहां श्री पद्मप्रभु भगवान का मन्दिर है। उद्यान स्थित भवन में आपने निवास किया। जयपुर श्रीसंघ की ओर से पूजा व स्वधर्मिवात्सल्य हुआ। दूसरे दिन प्रातःकाल वहां से विहार करके नगर के बाहर दीवान सेठ नथमलजी गुलेछा के कटले में पधारीं। सैकड़ों नरनारी उपस्थित थे, वहां पर दो घण्टे तक आपने मधुर भाषा में उपदेशामृत की वर्षा की। नगर के गण्य-मान्य अनेक व्यक्ति— श्री दुलीचन्दजी हमीरमलजी गुलेछा श्री राजमलजी साहब गोलेछा, श्री गुलाब चन्द जी साहब ढड्ढा, श्री इन्द्रचन्दजी साहब जरगड़, श्री रतनलाल जी साहब फोफलिया, श्री फूलचन्द जी साहब धांधिया, श्री सागरमलजी, सरदारमलजी सचेती, श्री गोकुलचन्दजी सा० पूंगलिया, श्री सागरमलजी साहब कांकरिया आदि ने आपका भावपूर्ण स्वागत किया। हजारों नरनारी साथ थे। जयपुर में बैंड, हाथी-घोड़े आदि का उस समय रिवाज न होने से नहीं लाये गये थे।

धूमधाम से नगर प्रवेश हुआ। जयपुर वालों के हर्ष का पारावार न था। बहुत वर्षों से यहां का श्रीसंघ आपके दर्शनों की अभिलाषा कर रहा था। नगर के मुख्य बाजार (जौहरी बाजार) मे से होकर श्री सुपार्श्वनाथ भगवान् के दर्शन करती हुई आप उपाश्रय में पधारीं। वहां त्यागी तपस्वी योगिराज श्री शिवजीरामजी महाराज विराजते थे, उनके दर्शन किये। उक्त योगिराज ने आपको आशीर्वाद दिया। आपके गुणों–विनय, विद्वत्ता आदि से अत्यन्त प्रभावित हुए। गुरुवर्या की शिष्याओं, श्रीमती रतन श्रीजी म० सा०, श्रीमती ज्ञान श्रीजी म० सा० आदि कई आर्याओं को आपने भगवती आदि शास्त्रों की वांचना दी थी। ये बडे ही शास्त्रज्ञ और हठयोग के साधक थे।

श्रीमती चरितनायिका ने भी आपसे कई शास्त्रीय शंकाओं का समाधान किया था।

जयपुर के श्रावक श्राविकाओं की उपाश्रय में धूम मची रहती थी। अन्य सम्प्रदाय वाले भी कई व्यक्ति हमारी पुण्यमूर्त्ति चरितनायिका से धर्मचर्चा करने आया करते थे और युक्तिसंगत एवं शास्त्र विहित उत्तर पाकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट करते थे।

५ विरागिनियां भी आपकी सेवा में दीक्षा लेने की इच्छा से उपस्थित हो गई थीं। जयपुर मे अभी तक आपने किसी को दीक्षित नहीं किया था क्योंकि आप केवल एक वार दीक्षा

लेकर ही पधारी थीं। यद्यपि आपकी शिष्याओं के कई चातुर्मास यहां हो चुके थे, किन्तु किसी के दीक्षा समारोह का प्रसङ्ग ही उपस्थित नहीं हुआ।

जयपुर श्रीसंघ ने दीक्षा महोत्सव अपनी ओर से कराने की भावना व्यक्त की। श्री गोकुलचन्दजी सा० पूंगलिया भी उस समय सेवा में उपस्थित थे। ये जयपुर के ही प्रसिद्ध जौहरी थे और इनकी दुकान रंगून में भी थी। इन्होंने गुरुवर्या और श्रीसंघ से विनम्र प्रार्थना की कि "दीक्षा समारोह इस सेवक को कराने की आज्ञा प्रदान कीजिये" समयज्ञ गुरुवर्या और श्रीसंघ ने आपका आग्रह स्वीकार कर लिया।

दीक्षा मुहूर्त्त वि० सं० १६७२ द्वि० वैशाख शुक्ला १० को निश्चित हुआ था।

सतरह दिन पहले से ही महोत्सव आरम्भ हो गया। उपाश्रय के सामने ही ठाकुर रूपसिंहजी का नोहरा उक्त ठाकुर साहब से मांग लिया गया था। उसमें अत्यन्त सुन्दर महोत्सव मण्डप की रचना की गई थी।

मण्डप में समवसरण, शत्रुञ्जय, सम्मेत शिखर, अष्टापद, गिरनार, और नन्दीश्वर द्वीप के भव्य दृश्यों की मनोमोहक रचना थीं। इस रचना की अनोखी सूझबूझ का श्रेय तत्रस्थ धर्मानुरागी सुश्रावक श्रीयुत सागरमलजी साहब कांकरिया को था। वे तन मन से रात दिन इसी कार्य में संलग्न रहते थे।

प्रतिदिन पूजाएं, प्रभावनाएं और रात्रि में जिनगुणगायन होता था। संयमाभिलाषिणी बहिनों को प्रतिदिन वन्दोले जिमा कर हाथी, घोड़े, बैंड आदि के साथ जुलूस निकाला जाता था। इस महोत्सव पर अनेक नगर ग्रामों से काफी संख्या में जैन जनता उपस्थित हुई थी, कोटे वाले सेठ साहब भी सपरिवार पधारे थे।

इस दीक्षा महोत्सव में सम्मिलित होना तो ध्येय था ही, राजस्थान के पेरिस, गुलाबी नगर, जयपुर को देखने का भी लोभ गौण रूप से अवश्य था।

दीक्षार्थिनियों का परिवार वर्ग भी जयपुर आ गया था। श्री फूलचन्द जी साहब धांधिया की ओर से सभी आगन्तुक जनों के भोजन का अत्यन्त सुन्दर प्रबन्ध था, जो सारे चातुर्मास तक रहा।

पूज्य शिवजीरामजी महाराज की आज्ञा से हमारी पूज्येश्वरी चरितनायिका महोदया प्रतिदिन व्याख्यान फरमाती थीं। आपकी रोचक व्याख्यान शैली से श्रोताओं का समूह भारी प्रभावित होता था। उपाश्रय छोटा होने से बैठने वालों को असुविधा होती थी परन्तु कष्ट उठाकर जनता शांति से बैठी रहती थी।

दर्शनार्थ आने जाने वालों के कारण पूज्य गुरुवर्या को जरा भी समय न मिलता था।

दीक्षा का शुभ दिन आ गया। पूज्यवर्ग स्थानीय मोहनवाड़ी नानक स्थान पर पूर्व ही पधार गया था।

शिविकाओं में बैठी दीक्षार्थिनियों का विशाल जुलूस ठीक समय मोहनवाड़ी पहुंच गया।

समस्त आवश्यक विधि विधान के पश्चात् श्री शिवजीराम जी म. की अध्यक्षता में निम्नांकित पांचों विरागिनियों का महा कल्याणकारी दीक्षा संस्कार हुआ:-

१. श्रीमती चन्द्रबाई, किशनगढ़ निवासी श्री अभयमलजी सिंघवी की पुत्री, स्वर्गीय श्री सुगनमलजी लोढ़ा की धर्मपत्नी, अवस्था ३५ वर्ष।

२. श्रीमती इन्द्रबाई, किशनगढ़ निवासी श्री अभयमल सिंघवी की पुत्री, स्वर्गीय मिलापचन्दजी मोदी (छाजेड़) की २० वर्षीया धर्मपत्नी।

३. श्रीमती नेजीबाई, फलोधी निवासी श्री गंभीरमलजी कानूंगा की विधवा पुत्री, २० वर्ष की। पति का नाम ज्ञात नहीं हो सका।

४. कुमारी मनोहर, श्री गम्भीरमलजी कानूंगा की कन्या १२ वर्ष की।

५. श्रीमती माडीबाई, स्व० गम्भीरमलजी कानूंगा की धर्मपत्नी ४० वर्ष की।

इन पांचों के नाम क्रमशः इस प्रकार रक्खे गये—

१. श्रीमती चरणश्रीजी महाराज, श्रीमती सौभाग्य श्रीजी म० सा० की शिष्या बनाई गईं।

२. श्रीमती इन्द्रश्रीजी महाराज, श्रीमती पद्मश्री म० सा० की शिष्या बनीं।

३. श्रीमती नीतिश्रीजी महाराज, श्रीमती सौभाग्यश्रीजी म० सा० की शिष्या।

४. श्रीमती मनोहर श्रीजी महाराज. श्रीमती सौभाग्य श्रीजी म० सा० की शिष्या।

५. श्रीमती मयणा श्रीजी महाराज, श्रीमती सौभाग्य श्रीजी म० सा० की शिष्या।

इस समारोह में दस हजार नरनारी थे। सबको नारियल की प्रभावना दी गई थी। ग्रीष्मकाल होने से सबके लिए शीतल मधुर पेय का भी आयोजन था। दीक्षा से पूर्व श्रीमती चन्द्रजी बाई (विरागिनी) की ओर से स्वधर्मिवात्सल्य किया गया था।

उस दिन सबने मोहनबाड़ी में ही निवास किया। दूसरे दिन बाद आप सब शिष्याओं सहित शहर में पधार गईं। कुछ दिन बाद पालीताना से श्रीमती सुवर्ण श्रीजी महाराज सा० आदि का पत्र आया। उससे भी एक दीक्षा का शुभ संवाद प्राप्त हुआ।

वहां ज्येष्ठ वदी ५ को जोधपुर निवासिनी एक विरागनी की दीक्षा हुई। इनका नाम था अनोप कुंवर बाई। ये जोधपुर के

प्रसिद्ध भक्त श्रावक श्री कानमलजी साहब पटवा के भ्राता श्री चांदमलजी पटवा की सुपुत्री और जोधपुर के ही स्व० विजयमलजी सिंघवी की धर्मपत्नी थीं। उस समय इनकी अवस्था ३५ वर्ष की थी, इनका नाम 'श्रीमती वसन्तश्रीजी महाराज' रखा गया और श्रीमती सुवर्णश्रीजी म० सा० की शिष्या बनीं।

वर्षाकाल में सानन्द तपस्याएं हुईं। मास क्षमण, पक्ष क्षमण, अट्ठाइयां, पंचरंगी आदि खूब धूमधाम से हुए। पूज्येश्वरी चरित-नायिका महानुभावा ने सतरह उपवास का श्रेष्ठ तप किया, श्रीमती चारित्र श्रीजी महाराज ने मास क्षमण की महान् तपस्या करके आत्मशुद्धि की। कमल श्रीजी महाराज ने ११ उपवास किये।

श्रीमती मणिश्रीजी महाराज का शरीर अस्वस्थ था। उनके बचने की कोई आशा न थी, उन्होंने गुरुवर्या से अनशन की याचना की, परिस्थिति की भीषणता का विचार करके गुरुवर्या ने एक एक दिन का प्रत्याख्यान कराया, उन्नीसवें दिन तो उनका अमर आत्मा नश्वर शरीर को त्याग कर दिव्यलोक में महा प्रस्थान कर गया।

आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी से ही अनशन आरम्भ हो गया था, आठ दिन छाछ का पानी लेते रहे और ग्यारह दिन तो केवल पानी के आधार पर ही थे। अन्त समय तक समाधिपूर्वक



चरितनायिका जयपुर मे शिष्याओं के साथ

आराधना करके सबसे क्षमायाचना करते हुए श्रावण शुक्ला तृतीया की रात्रि में उनका स्वर्गवास हो गया। श्रीसंघ ने धूम-धाम से अग्नि संस्कार किया, अष्टाह्निकोत्सव हुआ। ये बड़ी सेवाभावी और आत्मार्थिनी साध्वी जी थीं।

पर्यूषण का ठाठ भी अपूर्व था। आपके दर्शनार्थ और पर्यूषण करने कई नगरों से सैंकड़ों भक्त श्रावक श्राविका जयपुर पहुंचे थे। जयपुर श्रीसंघ की भक्ति भी बड़ी प्रशसनीय थी। श्री फूलचन्द जी साहब धांधिया की ओर से सारे चातुर्मास मे आने वाले लोगों के लिए भोजनशाला चल रही थी।

चातुर्मास के बाद आपने विहार का विचार किया। परन्तु जयपुर श्रीसंघ ने आपको वहीं एक चातुर्मास और करने का हार्दिक आग्रह किया। दूसरे आपके घुटने की पीड़ा भी नहीं मिट रही थी। इसका उपचार भी आवश्यक था।

छोटी विद्यार्थिनी साध्वियों के लिए अध्ययन की भी यहां पूर्ण सुविधा थी। जयपुर वाराणसी का लघु भ्राता है, ऐसी किंवदन्ती सुप्रसिद्ध है। सभी विषयों के दिग्गज विद्वान् यहां सुलभ हैं। शास्त्रीय अध्ययन के लिए पूज्य शिवजीरामजी महाराज विराजते ही थे। अतः आपने रहने में लाभ जान कर स्वीकृति प्रदान कर दी। संघ में आनन्द की लहर दौड़ गई, सभी इस संवाद से आह्लादित हो गये।

पंडित शिवदत्तजी, पं० दुर्गाप्रसादजी, पं० अम्बालालजी, पं० मनोहरलालजी शास्त्री, छात्रा साध्वियों को विभिन्न विषयों—(व्याकरण, काव्य, अलंकार, छन्द, न्याय) का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन कराते थे।

अध्यापकों को वेतन देना एक उदार व भक्त श्रावक श्री तेजकरण जी चुरड़ ने स्वीकार कर लिया था और वे ही अध्ययन का सारा व्यय प्रसन्नता से वहन कर रहे थे। वि० १६७२ के चातुर्मास में पूज्य मुनिवर्य श्रीमान् क्षेमसागर जी महाराज साहब, वीरपुत्र श्रीमान् आनन्द सागरजी महाराज साहब व श्रीमान् वल्लभ सागरजी महाराज साहब भी पधार गये थे। आप श्रीमानों के पधारने से संघ में और भी अधिक उत्साह बढ़ गया। चातुर्मास में सदा की भांति तपस्याएं, पूजाएं अष्टाह्निकोत्सव स्वधर्मि-वात्सल्य आदि पुण्य कार्य हुए और जयपुर श्रीसंघ ने अपनी न्यायोपार्जित लक्ष्मी का सद्व्यय करके महान् पुण्य लाभ लिया। पूज्य शिवजी रामजी महाराज भी कई दिनों से अस्वस्थ थे। कार्तिक शुक्ला ५ (ज्ञान पंचमी) की संध्या को उनका समाधि पूर्वक स्वर्गवास हो गया।

चातुर्मास पूर्ण होने पर उक्त पूज्य मुनिवर्य मण्डल ने मारवाड़ की ओर विहार कर दिया क्योंकि पूज्येश्वर गणाधीश्वर महोदय श्रीमान् त्रैलोक्यसागर जी महाराज साहब आदि फलोधी विराजते थे।

श्रीमती सौभाग्य श्रीजी म० सा० व श्रीमती ज्ञान श्रीजी महाराज साहब आदि को भी चरितनायिका ने मारवाड़ की ओर पूज्य गुरुवर्य के दर्शनार्थ भेज दिया। स्वयं के जाने का भी विचार था किन्तु घुटने के दर्द ने श्रीमती विजय श्रीजी महाराज की अस्वस्थता ने आपको जयपुर ही विराजने पर विवश कर दिया। और वि० स० १९७४ का वर्षावास भी जयपुर श्रीसंघ के सौभाग्य से वहीं हुआ।

श्रीमती विवेक श्रीजी म० सा० आदि को बीकानेर वालों की विनति से आपने बीकानेर भेज दिया था। वे सकुशल वहां पहुंच गये थे। किन्तु भावी प्रबल! आषाढी पूर्णिमा को श्रीमती कनक श्रीजी महाराज साहब का अकस्मात् हार्ट फेल हो जाने से स्वर्गवास हो गया। तार द्वारा ये समाचार जयपुर पहुंचे।

इधर विजय श्रीजी महाराज को राजयक्ष्मा हो गया था। उस युग में यह रोग असाध्य समझा जाता था। कोई दीर्घायु ही इस महाव्याधि से, समय रहते चिकित्सा का सुयोग मिलने पर बच जाता था। श्रीमती विजय श्रीजी म० की चिकित्सा सुव्यवस्थित न हो सकी, वे दिन २ घुलती जा रहीं थीं और अब तो उनका रोग असाध्य हो गया था। इस सुयोग्या साध्वी महोदया की करुण स्थिति ने चरितनायिका को भी चिन्तित कर दिया था। जयपुर के सुयोग्य श्रावकों ने अच्छे २ वैद्य, डाक्टरों की चिकित्सा भी करवाई, किन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ। हालत दिन २ बिगड़ती

गई और एक दिन का अनशन करके समाधि पूर्वक यह महान आत्मा श्रा॰ कृ॰ ११ को दिव्यलोक में प्रयाण कर गई। समुदाय को इनसे बड़ी २ आशाएं थीं, पर कराल काल की कुटिल गति ने किसकी अभिलाषाओं को नष्ट नहीं किया ? यह चक्र निरन्तर अव्यावाध रूप से गतिशील रहता है।

इधर लोहावट में विराजमान् गणाधीश महोदय श्रीमत् त्रैलोक्य सागरजी महाराज साहब का श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को समाधि पूर्वक स्वर्गवास हो गया। इस समाचार से आप जैसी महानुभावा को भी खेद हुआ। सारे खरतरगच्छ संघ में खेद की लहर दौड़ गई। देववन्दन किया गया। श्रीमती चरितनायिका आदि अन्त समय में दर्शन न कर सकीं इसका भी भारी पश्चाताप रह गया। भावी भाव प्रबल होता है।

चातुर्मास बाद फलोधी में एक विरागिनी की दीक्षा होने वाली थी और श्रीमती सौभाग्य श्रीजी महाराज साहब का शरीर अचानक भारी अस्वस्थ हो गया था। मस्तक में असह्य पीड़ा रहने लगी और कई उपचारों के बावजूद भी कम न हुई। इस समाचार से भी चिंता हो गई।

इधर जयपुर में भी प्लेग महामारी का जोरदार आक्रमण हुआ। लोग शहर छोड़ कर बाहिर जाने लगे। श्रावक लोगों के आग्रह करने पर भी आपने कार्तिक पूर्णिमा से पूर्व नगर बाहिर जाना स्वीकृत न किया। इसी बीच फलवर्द्धि में चरितनायिका

की प्रगुरुवर्या वयोवृद्धा पूज्येश्वरी श्रीमती लक्ष्मी श्रीजी महाराज साहिबा का कार्त्तिकी अमावस्या को अनशन व समाधिपूर्वक स्वर्गवास हो गया। अपनी परमोपकारिणी गुरुवर्या की अन्तिम सेवा व दर्शन से वंचित रह जाने का आपको अत्यन्त दुःख हुआ। आप घुटने के दर्द से विवश थीं। मारवाड़ जाने की तीव्र अभिलाषा होते हुए भी भाविभाववश जाना हो ही नहीं सका।

कार्त्तिक पूर्णिमा के पश्चात आप भी अपने शिष्या परिवार सहित दादावाड़ी पधार गईं। जयपुर श्रीसंघ के कई अग्रगण्य एवं आपके अनन्य भक्त व्यक्ति—श्री फूलचन्द जी साहब धांधिया, श्री महरचन्द जी साहब जरगड़, श्री नेमिचन्द जी जरगड़, श्री सूरजमल जी पटोलिया आदि भी सपरिवार दादावाड़ी में ही रहते थे। अत: आहार पानी के कष्ट का तो कोई प्रश्न ही न था। इन भक्तजनों ने अपना अहोभाग्य समझा क्योंकि तत्व चर्चा का अपूर्व अवसर इन्हें अनायास ही प्राप्त हो गया था। प्रातःकाल प्रभु पूजा आदि से निवृत्त होकर ये लोग व्याख्यान सुनते। मध्याह्न में भी तात्विक वार्त्तालाप चलता रहता, रात्रि मे भी दूर बैठ कर तत्व चर्चा करते रहते थे।

फलोधी में पौष कृष्णा दशमी को श्रीमती सौभाग्य श्रीजी महाराज साहबा का समाधिपूर्वक स्वर्गवास हो गया। ये समाचार

तार द्वारा दादावाड़ी में मिले। इस वर्ष ने कई मुख्य संयमशील महानुभावों को कालकवलित कर लिया तो कई नवीन संयम पथ के पथिक भी बने।

माघ कृष्णा में फलोधी से एक विरागिनी आपके दर्शनार्थ जयपुर आई।

ये फलोधी के ही श्री कन्हैयालाल जी गुलेच्छा की पुत्री और श्री हस्तिमलजी बरड़िया के पुत्र श्री गुलराज जी की धर्मपत्नी षोडशी केशरबाई थी। इन्हें अपने भ्राता श्री अमृतलालजी जो केवल १५ वर्ष के किशोर थे और छह मास विवाह को हुए थे उनका अकस्मात् स्वर्गवास हो जाने से संसार की असारता का विचार करने को बाध्य कर दिया। इस हृदयद्रावक असामयिक निधन से ये विरक्त हो गई थी और दीक्षा लेकर आत्मकल्याण करना चाहती थीं, परन्तु सौभाग्यवती युवतियों को इस पथ का अवलम्बन करने मे कितनी कठिनाइयों-विघ्न बाधाओं का सामना करना पड़ता है, यह भुक्तभोगी ही अनुभव कर सकते हैं। छः महीने के दृढ़ प्रयत्न, अदम्य साहस और तीव्र अध्यवसाय से इन्होंने अपने सम्बन्धीजनों से आज्ञा प्राप्त कर ही ली। दीक्षा से पूर्व गुरुवर्या के दर्शन करने जयपुर आईं। इनके इस अद्भुत साहस से चरितनायिका महोदया अत्यन्त प्रसन्न हुईं और हार्दिक धन्यवाद दिया। जयपुर के कई व्यक्तियों ने इन्हें बन्दोले जिमाये थे। कुछ दिन गुरुवर्या की

सेवा में रह कर ये फलोधी चली गईं और वि० सं० १९७४ की माघ शुक्ला त्रयोदशी को श्रीमती ज्ञानश्रीजी महाराज साहब से दीक्षा लेकर साध्वी बन गईं। उक्त श्रीमती जी ने इन्हें हमारी पूज्येश्वरी चरितनायिका की शिष्या घोषित किया और ये श्रीमती उपयोग श्रीजी म० के नाम से अलंकृत हुईं।

आपकी दीक्षा के शुभ प्रसंग पर लोहावट से वीर पुत्र श्रीमान् आनन्द सागरजी म० सा० आदि भी फलोधी पधार गये थे। इन्हीं की अध्यक्षता मे दीक्षा हुई थी।

ये बड़ी बुद्धिशालिनी उदार हृदया और सेवाभाविनी थीं। थोड़े ही दिनों मे विदुषी बन गई थीं। इनकी बुद्धि इतनी तीव्र थी कि एक घण्टे में २५ पद्य कण्ठस्थ कर लेती थीं, स्वर तो इतना मधुर और गभीर था कि अकेली गायन करतीं तो भी दूर से सुनने वालों को ऐसा भान होता था कि चार गा रही हैं। ये जीवन भर श्रीमती ज्ञानश्रीजी म० सा० की सेवा में संलग्न रहीं। प्र० ज्ञानश्रीजी म० सा० के प्रधान पद को सुशोभित करते हुए आपने अपनी कार्यकुशलता, विशालहृदयता, उदारता आदि से सभी की प्रशंसा प्राप्त की थी। आपके हृदय मे दया का समुद्र भरा था। किसी भी दुःखी को देखकर आपका हृदय द्रवित हो जाता था। उसका दुःख दूर कर देने का आप यथासाध्य प्रयत्न करती थीं। आप प्रसिद्धि न चाहने वाली समाज सेविका थीं।

किसी का कोई उपकार करके कभी प्रत्युपकार पाने की भावना उनके मन में आती ही न थी। गुप्त रूप से आप कई अभाव ग्रस्तों को सहायता दिलवाया करतीं थीं। अभिमान तो आपको छू भी न गया था। सरल हृदयता आप में आरम्भ से ही थी, मिलनसारिता आपका मुख्य गुण था, मधुर-स्मित भाषण स्वाभाविक प्रवृत्ति! तप संयम के प्रति अनन्य निष्ठा थी, आपने अपनी ४२ वर्ष की दीर्घ संयम यात्रा से पूर्व गृहस्थाश्रम में ही तद्देशीय रीत्यनुसार सोलियातप, पखवासातप, पति सहित अट्ठाई तप आदि तो किये ही थे। संयमी जीवन में प्रवेश करने के पश्चात् सामान्य तपस्याओं (तिथि आराधन) के अतिरिक्त विंशतिस्थानक तप, कल्याणक तप, नवपद ओलीतप, चतुर्विंशति-जिन ओलीतप, वर्षीतप, 'सोलह उपवास' वर्द्धमान तप की ७ ओली सौभाग्य कल्पवृक्ष तप, पंचरंगी में प्रत्येक वर्ष पंचोला चोला या तेला, शीतकाल में कई वार दशपच्चक्खाण तप किया करतीं थीं।

आपने अपने उपदेश द्वारा कइयों को प्रतिबोधित किया था। उनमें से ६ को आपने दीक्षित किया परन्तु अपनी शिष्याएं न बना कर पूज्य श्रीमती स्वर्ण श्रीजी म० सा०, हुल्लास श्रीजी म० सा०, प्र० श्रीमती ज्ञान श्रीजी म० सा० की शिष्याएं बनाईं। निःस्पृहता के ऐसे उदाहरण विरल ही मिलते हैं। इस तुच्छ लेखिका के ऊपर भी उनके अनन्त २ उपकार हैं। उन्हीं ने

गृहस्थावास से उवार कर संयम की सुखद शीतल छाया प्रदान की और योग्य बनाने का सदा प्रयास करती रहीं, असम्भव को भी सम्भव बनाने का उनका अद्भुत साहस था। यह चरित्र लेखन भी उन्हीं महोपकारिणी की सतत प्रेरणा का फल है। इसके प्रकाशन से पूर्व ही वे विक्रम संवत् २०१८ की कार्त्तिक शुक्ला ३ को इस नश्वर शरीर को त्याग कर दिव्यलोक को प्रस्थान कर गईं। उनका असामयिक और अकस्मात् निधन हो जाने से समुदाय में तो क्षति हुई ही है। लेखिका को भी प्रेरणा शक्ति के साथ ही संरक्षण शक्ति से भी वंचित होना पड़ा है। इसे दुर्भाग्य ही मानती हूं। अस्तुः-

इनकी दीक्षा के बाद लोहावट में भी दीक्षाएं हुईं। इधर माघ कृष्णा में ही हमारी गुरुवर्य्या महोदया दादावाड़ी से पुराना घाट नामक स्थान पर पधार गईं। सेठ राजमलजी साहब गोलेछा के उद्यान में आपने २० दिन निवास किया। सेठजी सपरिवार वहीं थे। शहर के और भी कितने ही परिवार वहाँ रहते थे।

प्लेग शान्त हो जाने पर आप पुनः शहर में पधार गईं। आपके घुटनों की पीड़ा जब तब उभर आती थी। श्रावक लोग वैद्यों को लेकर आते पर आप औषधि लेना स्वीकार ही न करती थीं। कर्मवाद पर दृढ़ आस्था थी आपकी! आपने अपने जीवन में औषधि का व्यवहार बहुत कम किया था। आपके जीवन में रोगों के आक्रमण भी कम ही हुए। साधारण अस्वस्थता कभी २ हो जाती थी और

औषधि का प्रयोग वे करती न थीं, उनकी श्रद्धेय औषधि केवल परमेष्ठी महामन्त्र था और इसी का वे सदा स्मरण करती रहती थीं।

अब उनका अधिक समय आध्यात्मिक विचारणा में ही व्यतीत होता था। विहार करने की भावना भी जब तब उत्पन्न हो जाती थी। परन्तु श्रध्दालु श्रावकश्राविका आपको विहार ही न करने देते थे। मुख्य मुख्य श्रावकों ने आपसे प्रार्थना की—अब तो आप जयपुर में ही विराजिये। यहाँ सर्व प्रकार की सुविधा भी है। आपका शरीर अब विहार योग्य नहीं है। हमारा अहोभाग्य है कि आप महासतियों की सेवा का हमें लाभ मिल रहा है।

आपसे तात्विक चर्चा करने अन्य समुदायों के भी कई जिज्ञासु व्यक्ति आया करते थे, जिनमें लेखिका के पिता श्री गुलाबचन्दजी लूनिया जौहरी, श्री गोपीचन्दजी बोहरा, केशरीचन्द जी मूसल, श्री गणेशलाल जी सींधड़ एवं सुजान मलजी खारेड़ मुख्य थे।

आपने भी विवशता से रहना स्वीकृत कर लिया। वि. सं- १६७५ की वैशाख शुक्ला १० को लोहावट में एक विरागिनी की दीक्षा हुई। श्रीमती विद्याश्रीजी म. सा. के करकमलों से वासक्षेप ली। इन्हें श्री चरितनायिका की शिष्या बना कर पवित्र श्रीजी नाम दिया गया।

ये लोहावट के भंशाली परिवार की सद्यो विधवा थीं। सोमेश्वर में श्री सूरजमल जी दूगड़ की धर्मपत्नी माङूबाई की

कूक्षी से इनका जन्म वि. १९५७ में हुआ था। नाम था रायकुंवर, अवस्था १८ वर्ष की।

इसी प्रकार अगवरी की एक विरागिनी श्री गजी बाई ने भी आषाढ़ शु. २ को दीक्षा ली। इनका नाम 'गीतार्थश्रीजी' दिया गया। ये श्रीमती रत्न श्रीजी म. सा. की शिष्या बनी थीं।

लोहावट से पत्र द्वारा उक्त शुभसंवाद प्राप्त हुआ। कोटा वाले सेठ साहब ने आपको कोटे पधारने की विनति की। सौ. सेठानीजी का विचार पौषदशमी व्रत का उद्यापन करने का था। आपने शारीरिक अस्वस्थतावश पधारने में असमर्थता प्रकट की और श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज साहबा को भेजने का विचार व्यक्त किया।

उद्यापन का मुहूर्त अभी दूर था, एक वर्ष बाद! आपने सुवर्ण श्रीजी महाराज सा. को अपने पास बुला लिया था। वे वि. सं. १९६७ के शिशिर में आपकी आज्ञा से अहमदनगर पधार गई थीं। वहां चातुर्मास करके आप पूना पधारे, चातुर्मास वहां भी किया। फिर बम्बई, सूरत, राधनपुर, पालीताना चातुर्मास करके आपने अच्छा सुयश उपार्जन किया था। अपनी इन सुयोग्य शिष्या पर गुरुवर्य्या का हार्दिक प्रेम था। भविष्य में समुदाय का भार इन्हीं को सौंपना था, अतः आपने सेठजी का अत्यन्त आग्रह होने पर ही इन्हें भेजना स्वीकृत किया। ये स्वयं किसी

प्रकार छोड़ कर जाने को प्रस्तुत न थीं और समझाने बुझाने तथा गुर्वाज्ञा का पालन आवश्यक होने से इन्होंने जाना स्वीकार किया ।

यों विक्रम सं. १९७५ का चातुर्मास भी जयपुर में सानन्द व्यतीत हो गया ।

फलोधी से श्रीमती विद्याश्रीजी म. सा. तथा श्रीमती ज्ञान-श्रीजी म. सा. आदि को भी आपने जयपुर आने का आदेश भेज दिया था। वे जोधपुर आ गये थे। वहां श्रीमती ज्ञानश्रीजी म. सा. को टाइफाइड हो गया। अतः कुछ साध्वियों को इनकी शुश्रूषा में रख कर श्रीमती विद्याश्रीजी म. सा. नवदीक्षिताओं को लेकर जयपुर चरितनायिका की सेवा में पधार गईं।

फागुन में श्रीमती सुवर्णश्रीजी म. सा. आदि को आपने कोटे विहार करा दिया, तथा मालव में विचरते हुए श्रीमती लाभ श्रीजी म. सा. को भी कुछ साध्वियों को कोटे भेजने का आदेश भिजवा दिया।

पूज्येश्वर गणाधीश श्रीमान हरिसागरजी म. सा. क्षेम सागरजी म. सा. श्रीमान् आनन्द सागर म, सा. आदि भी कोटे वालों की विनति से वहां पधार गये थे। वैशाख में धूम धाम से इस अवसर पर वहां एक विरागिनी की दीक्षा हुई। ये जैसलमेर के लालानी परिवार की थीं। इनका नाम अनुपमश्रीजी' स्थापित किया गया।

इस उद्यापन में सेठ साहब ने अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग करके महान् पुण्योपार्जन किया ।

चरितनायिका की सेवा में इस समय श्रीमती विद्याश्रीजी म. सा. श्रीमती ज्ञानश्रीजी म. सा. श्रीमती हुलास श्रीजी म. सा. श्रीमती कल्याणश्रीजी म. सा. सिद्धिश्रीजी म. मनोहर श्रीजी म. आदि २० साध्वीजी थे ।

वि स. १६७६ की आषाढ़ चातुर्मासी थी। इतने दिनों से गुरुवर्य्या महोदया के शरीर में घुटनों के दर्द के अतिरिक्त कोई विशेष व्याधि न थी। पारणे के दिन दूध आदि भी लिया था । पर उसी दिन से आपको अन्न से अरुचि हो गई। बड़ी कठिनता से थोड़ा आहार लेने का प्रयत्न किया भी जाता तो गले से उतरना कठिन हो जाता ! उबकाइयां आतीं, उपचार साधारण किया जाता रहा, डाक्टर की दवा तो आप लेती न थीं। वैद्यों की भी बड़ी कठिनाई से लेना स्वीकार करती थीं। शरीर धीरे २ अशक्त होने लगा। सारे संघ में चिन्ता की लहर दौड़ गई।

श्रीमती इन्द्रबाई साहबा, उनकी माताजी-सेठ राजमलजी साहब की दादीजी साहबा, श्रीमती शिखरबाई साहबा आदि कई भक्त श्राविकाएं तन मन धन से आपकी सेवा में संलग्न रहती थीं ।

कुछ दिन पश्चात् हमारी पूज्येश्वरी महानुभावा के अर्श तथा श्वास की तकलीफ और नई उत्पन्न हो गई, ज्वर भी रहने लगा।

उधर कोटे में विराजमान श्रीमती सुवर्णश्रीजी म० सा० आदि को भी गुरुवर्य्या की अस्वस्थता के समाचारों से भारी चिन्ता हो गई। चातुर्मास उतरते ही उन्हों ने कोटे से विहार कर दिया। जयपुर में वे माघ वदी में पधार गई थीं। पूज्य गणाधीश्वर महोदय आदि भी कोटे से जयपुर पधार गये थे।

आपकी अस्वस्थता दिन २ बढ़ती जा रही थी। उपचार कोई कारगर नहीं हो रहा था। श्वास का दौरा वार २ होता था, थोड़ा २ ज्वर भी रहता था।

पूज्येश्वर गणाधीश श्रीमान् हरिसागरजी म० सा० तथा वीर पुत्र श्रीमान आनन्दसागर जी म० सा० आदि प्रतिदिन आपको दर्शन देने पधारते रहते थे। प्रायः सभी मुनिराज आपके प्रति श्रद्धा रखते थे और आपका उचित सम्मान करते थे। आपकी सम्मति समुदाय के प्रत्येक कार्य में लिया करते थे। गुरुवर्य्या की अस्वस्थता से सभी को खेद हो रहा था।

वि. १६७६ फाल्गुन कृष्ण ५ को श्रीमान् गणाधीश महोदय की अध्यक्षता में ५ विरागिनयों की दीक्षा हुई।

इन में एक हैं कविकुलकिरीट यथानाम तथा गुण वाले उपाध्याय पदालंकृत श्रीमान् कवीन्द्रसागर जी महाराज साहब! ये पालनपुर के शाह निहालचन्दजी के पुत्र रत्न हैं। ये उस समय केवल ११ वर्ष के वालक थे। श्रीमती दयाश्रीजी महाराज की गृहस्थावस्था की वहिन वब्बूबाई इनकी माता हैं। श्रीमती रत्न श्रीजी म० सा०

समुदाय के वर्त्तमान आचार्य



कविकुलकिरीट श्रीमज्जिन कवीन्द्र सागर
सूरीश्वरजी म. सा.

की अव्यर्थ देशना ने इन्हें वैराग्य रंग से रंग दिया।

जयपुर श्रीसंघ ने इन सबकी दीक्षा बड़े समारोह पूर्वक करवाई। चरितनायिका का शरीर अशक्त होने से वे दीक्षा स्थान मोहनबाड़ी मे नहीं पधार सकीं।

साधु समुदाय में इस अप्रत्याशित वृद्धि से चरितनायिका को अत्यन्त हर्ष और संतोष हुआ।

आपकी शिष्याएं श्रीमती सुवर्णश्रीजी म० सा० श्रीमती कल्याणश्रीजी म० सा० आदि आपको आत्मप्रबोध आदि आध्यात्मिक ग्रन्थ सुनाया करती थीं। अब आपका अधिक समय आत्मचिन्ता में तथा समुदाय सम्बन्धी विचारणा में व्यतीत होता था। शरीर की स्थिति देखते हुए सभी को निराशा सी हो रही थी, मन ही मन आतङ्कसा छाता जा रहा था। श्वास का दौरा बार बार होता था फिर भी आपकी सहनशीलता, धैर्य और शान्ति अद्भुत थी।



महा प्रस्थान

सृजति तावदशेष गुणाकरं
पुरुषरत्नमलङ्करणं भुवः।
तदपितत्क्षणभङ्गि करोति चेद्,
अहह! कष्टमपण्डितता विधेः॥

भावार्थः- "बड़े दुख की बात है। यह ब्रह्मा की कैसी मूर्खता है कि पहले तो सारे गुणों की खान तथा पृथ्वी के भूषण नररत्न का निर्माण करता है, फिर उसी को क्षणभङ्गुर बनाता है। (उसकी सृष्टि स्थायी नहीं रहती)।"

इस संसृति सागर में जो आत्मा जन्म लेते हैं उन्हें अवश्य ही एक दिन मरण करना पड़ता है। जो पुष्प विकसित होकर अपनी सौरभ से वातावरण को मादक-मधुर बनाते हुए सुगन्धि से भर देते हैं, वे कुछ समय पश्चात् मुरझा कर सूख जाते हैं और धूल धूसरित होते हैं। जो दिनकर प्रभात में प्राची दिशा को अरुणाभ बनाते हुए अग जग को प्रकाशित कर देता है और मध्याह्न में अपनी प्रखर किरणावलि के प्रचण्ड ताप से तपाता है, उसे संध्या को सारी किरणें समेट कर अस्त हो जाना पड़ता है। यहां प्रत्येक दृश्य वस्तु क्षणिक और नश्वर है।

प्रत्येक द्रव्य उत्पादव्यय और ध्रौव्य युक्त है। द्रव्य में उत्पाद व्यय पर्याय हैं, ध्रौव्य से द्रव्य का अस्तित्व विद्यमान रहता है। पर्याय का परिवर्तन उत्पाद व्यय कहलाता है।

यद्यपि आत्मा अमर है, तथापि शरीर धारी आत्मा को एक शरीर त्याग कर दूसरा धारण करना पड़ता है, यह संसार में भ्रमण करने वाली आत्माओं का अटल नियम है। सकर्मा आत्माओं को इस चक्र में पिसना ही पड़ता है।

जन्म लेकर कोई न मरे, यह असम्भव है। तीर्थंकर हो या अवतार, उन्हें भी एक दिन अवश्य शरीर त्यागना पड़ता है। संसार को कोई भी शक्ति मृत्यु से रक्षा करने में अभी तक असमर्थ ही प्रमाणित हुई है। इसके आगे विज्ञान भी घुटने टेक देता है। इसका वारण्ट कभी लौटाया नहीं जा सकता, न रद्द किया जा सकता है। जीवन की ज्योति इस कालरूपी झञ्झावात के आते ही विलुप्त हो जाती है।

मृत्यु ! ओह ! कितना भीषण शब्द है। शब्द की भीषणता से भी अर्थ की भीषणता का विचार अत्यन्त भयावह है।

यमराज का वारण्ट आते ही क्षण भर में प्राणी क्या से क्या हो जाता है। एक ही क्षण में सारी चेष्टाएं बन्द हो जाती हैं, चलना, फिरना, बोलना, खाना, पीना, पढ़ना, लिखना, आदि सैकड़ों शारीरिक, और संकल्प विकल्प, चिन्तन, मनन आदि मानसिक क्रियाएं अपना कार्य संवरण कर लेती हैं। शरीर, मन निष्क्रिय

निष्पन्द नीरव हो जाते हैं। इन सबको सक्रिय रखने वाला आत्मा जब शरीर को त्याग देता है तब इनके सभी कार्य बन्द हो जाते हैं। आत्मारहित शरीर शीघ्र ही विशीर्ण होने लग जाता है, तथा उसे कोई रखना भी नहीं चाहता। अपनी २ रीति के अनुसार सभी देश-जातियां बहा देना, दफन कर देना, जला देना आदि के द्वारा उसका विसर्जन कर देती हैं।

सामान्य जीवों के लिये मृत्यु अत्यन्त विभीषिका है, परन्तु विशिष्ट व्यक्तियों को न जीवन से मोह होता है, न मृत्यु से भय।

साधारण प्राणी परिवार, परिजन, धन वैभव, भोग व शरीर में आसक्त रहता है। उनके छूट जाने का ख्याल उसे कंपा देता है। विशिष्ट व्यक्ति इन में आसक्त नहीं होता, उसके जीवन में केवल कर्त्तव्य ही लक्ष्य होता है। कर्त्तव्य का पालन करते करते वह प्रसन्नता से मृत्यु का आलिंगन कर लेता है। जो आत्म-स्वरूप और संसार की नश्वरता से परिचित हो, आत्मा को अमरत्व प्राप्त कराने की साधना में लीन हो, विश्वकल्याण की भावना से जिनका मन आप्लावित हो, जीवन का एक एक क्षण परोपकार में व्यतीत किया हो, उन्हें मृत्यु से क्या भय! नश्वर शरीर के छूटने का क्या दुख!!

ऐसे व्यक्ति जब तक जीवन धारण करते हैं, स्वकल्याण के साथ ही विश्व की श्रेय साधना में भी लगे रहते हैं और जब इस

लोक से परलोक में प्रयाण करते हैं तो जन जन का मानस इन के अभाव का अनुभव करता है, ऐसों का अभाव जनमानस में शाश्वत् चुभता रहता है। ऐसे प्राणी मर कर भी अमर ही रहते हैं। मृत्यु उनके स्थूल शरीर को नष्ट करती है, यशः काय को नहीं। जैन परिभाषा में ऐसा मरण 'पण्डित मरण' कहलाता है। यह उच्च कोटि का मरण है।

पुण्य चरितनायिका महोदया महत्तरा श्रीमती पुण्यश्रीजी महाराज साहिबा भी ऐसी ही एक विशिष्ट एवं उच्चकोटि की साध्वी श्रेष्ठा थीं। उन्होंने अपने दीर्घ संयमी जीवन में अहिंसा सत्य आदि की साधना की, भव्य जीवों का उद्धार करने के लिए मार्ग के कष्टों का, अनेक असुविधाओं का कोई विचार न करके भारत के विभिन्न प्रान्तों में भ्रमण करते हुए धर्मप्रचार मे संलग्न रहीं। जब तक शरीर काम देता रहा, उन्होंने स्थिरवास नहीं किया। रुग्णता की हालत में भी तत्वचर्चा और उपदेश बराबर चलता था। अप्रमत्तता आपमें स्वाभाविक थी, मधुर भाषण, स्मितमुख और त्याग वैराग्यमय देशना प्राकृतिक देन!

जैन समाज इन महीयसी महिला रत्न को, पुण्य के पवित्र पुञ्ज को, अभी और अपना नेतृत्व तथा पथ प्रदर्शन करते देखने की अभिलाषा रखता था, किन्तु काल ने कब किस की आशा, अभिलाषा के अनुकूल कार्य किया है? किसके सुख दुख, सुविधाओं, असुविधाओं समय, असमय का विचार किया? कब अल्पायु दीर्घायु

की ओर देखा है ? यह तो प्राणी की देह स्थिति पूर्ण होते ही प्राणों को अन्यत्र चला जाने का क्रूर आदेश दे देता है।

हमारी पूज्यवर्या अभी केवल जीवन की ६२ वीं सीढ़ी पार कर रही थीं। अभी पूर्व भारत की भूमि में विचर कर वहां के पवित्र तीर्थस्थलों के दर्शन करने व जन जागृति करने का विचार था, आगरे में ही कलकत्ता वाले राय बद्री दासजी साहब, श्रीबहादुर सिंहजी सिंघी, श्री मोतीचन्दजी साहब नखत आदि महानुभावों ने आपको पूर्व में पधारने की आग्रहपूर्ण विनति की थी, किन्तु जयपुर वालों की विनति पूर्व ही स्वीकृत कर लेने के कारण आपने उन्हें क्षेत्रस्पर्शना हुई तो भविष्य में आने का आश्वासन देकर सन्तुष्ट कर दिया था। कुछ लघुवयस्का नव दीक्षिता साध्वियों की शिक्षा भी अपने तत्वावधान में करा कर उन्हें सर्व प्रकार योग्य बनाने की हार्दिक वाञ्छा थी, किन्तु ये अभिलाषाएं पूर्ण न हो सकीं और वे अपने कार्य अधूरे ही छोड़ कर प्रयाण कर गईं।

फाल्गुन शुक्ला ५ की बात है, आपको दुर्बलता अनुभव होने लगा। सभी के वदन कमलों पर गहरी उदासी की छाया आ विराजी, हृदय जोरों से धड़क उठे, परमोपकारिणी गुरुवर्य्या के भावी वियोग की आशंका ने शिष्या वर्ग एवं भक्त मण्डल को प्रकम्पित कर दिया।

सारे शहर में यह बात वायुवेगवत् प्रसृत हो गई कि बड़े

गुरुणी साहब अत्यन्त अस्वस्थ हैं। श्रावक श्राविका के झुण्ड के झुण्ड दर्शनार्थ आने लगे। सभी को आप धर्मलाभ रूपी आशीर्वाद देती थीं। श्वास का जोर होने पर भी आप शान्ति से विराजमान थीं।

मुख्य २ श्रावकगण-श्रीराजमलजी साहब गोलेछा, श्रीइन्द्रचन्दजी साहब जरगड़, श्री गोकुलचन्दजी साहब पूंगलिया, आदि ने डाक्टरी चिकित्सा का प्रस्ताव रक्खा, परन्तु आपने अस्वीकार कर दिया। शहर के नामी गरामी वैद्य बुलाये गये। उन्होंने हालत देखकर औषधि लिखी, वह दी गई, पर कोई लाभ न हुआ। वास्तव में रोग नहीं था, यह काल था जो रोग रूप बन कर आया था। आपने अपने मन की भावना व्यक्त की-मेरा विचार अनशन करने का है, अब औषधि आदि मैं कुछ भी न लूंगी। श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज साहबा आदि ने अनशन न करने की प्रार्थना की, जिसे गुरुवर्या ने उनका मन रखने को स्वीकार कर लिया और उत्तराध्ययन सूत्र सुनने की इच्छा व्यक्त की। आपकी आज्ञानुसार श्रीमती कल्याणश्री जी म. उत्तराध्ययन सूत्र सुनाने लगीं। आपको बोलने में भारी कष्ट हो रहा था, श्वास तीव्रता से बढ़ता जा रहा था, परन्तु मुख पर अपूर्व शान्ति का साम्राज्य था, आपके हृदय में धैर्य का सागर लहरा रहा था। श्रावक वर्ग ने पूछा-गुरुणी साहब! आपके बाद समुदाय सञ्चालन का भार कौन वहन करेंगी? आपने श्रीमती सुवर्णश्री जी म. सा.

की ओर देखकर फरमाया-ये बैठी तो हैं। सर्वथा योग्य हैं, कुशलता से सञ्चालन कर लेंगी। इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं है। इस समय कोटा वाले सेठ साहब दीवान बहादुर श्री केशरी सिंहजी साहब भी संयोगवश उपस्थित थे। उन्होंने भी योग्य उत्तराधिकारिणी का निर्वाचन किया जाने पर सन्तोष व्यक्त किया।

साध्वीवर्ग सतत आपकी परिचर्या में संलग्न रहता था। आप उनसे कभी स्वाध्याय सुनतीं, कभी किसी विषय पर बातचीत होती, उस समय ज्ञानचेतना अत्यन्त निर्मल थी। स्मरण शक्ति तो अद्भुत थी ही। जहाँ स्वाध्याय श्रवण कराने वालों की अल्प सी भी स्खलना देखतीं आप फौरन टोक देतीं-ऐसे नहीं, ऐसे बोलो। आपकी प्रत्येक शब्दावली वैराग्यरस से ओतप्रोत रहती थी।

फाल्गुन शुक्ला ८ मी का दिन था। आपकी तबियत अधिक अस्वस्थ जान कर गणाधीश्वर श्रीमान् हरिसागर जी महाराज साहब आदि पूज्य वर्ग आपको दर्शन देने पधारे। आपने सब पूज्य मुनिवरों को वन्दना करके क्षमा याचना की। श्वास की गति कभी तीव्र होती थी, कभी मन्द हो जाती थी, वाणी क्षीण हो चली थी; फिर भी शान्ति का निर्झर प्रवहमान था। अनुमानतः २ बजे होंगे, आपने श्रीमती सुवर्णश्री म० सा० को कहा-मेरा शरीर अब अधिक दिन ठहरने वाला नहीं, रोग बढ़ता जा रहा है; जीवन का अब कुछ भरोसा नहीं। अभी मेरी चेतना शक्ति

विलुप्त नहीं हुई है। कौन जान सकता है कि कब क्या हो जाय। एक क्षण का भी विश्वास नहीं, न जाने कब वह क्षण आ जाय कि मुझे परलोक में प्रस्थान करना पड़े? अतः मेरी हार्दिक भावना है कि मैं अपने संयमी जीवन में लगे दोषों की आलोचना कर लूं और मिथ्या दुष्कृत देकर आत्मा को शुद्ध बना लूं तथा अनशन करूं?

श्रीमती सुवर्णश्रीजी म० सा० ने करबद्ध हो प्रार्थना की-पूज्येश्वरि! अभी कोई ऐसी बात नहीं है कि आप अनशन करें। हां! आलोचना कर लीजिये। आपने विधिवत् आलोचना की, मिथ्या दुष्कृत दिया। मन्दिर से भगवान् तथा समवसरण मंगाये गये, चतुर्विध संघ उपस्थित था। विधि पूर्वक आलोचना तथा साधु आराधना श्रवण की। आराधना के पश्चात् सभी बड़ी छोटी साध्वियों को आपने आशीर्वाद दिया और अन्तिम उपदेश या शिक्षा स्वरूप इस प्रकार फरमाया-'साध्वियों! तुम सब परस्पर प्रेमपूर्वक रहना, जिस उद्देश्य से तुमने धनवैभव, परिजन, परिवार आदि का परित्याग करके संयमी जीवन स्वीकार किया है, उस उद्देश्य-लक्ष्य से विचलित न होना, सदा सावधान रहना, तुम्हारी संयम यात्रा निर्विघ्न हो, यही हार्दिक आशीर्वाद देती हूं। वृद्धा साध्वियों की परिचर्या सेवा शुश्रूषा में त्रुटि न होने देना। अपने पवित्र साधु जीवन को किसी भी प्रकार कलंक कालिमा से मलीन न बनाना। जिस प्रकार मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन

किया, है उसी प्रकार तुम भी कर्त्तव्यनिष्ठ रहना। तुम सबने मेरी जीवन यात्रा में सहयोगिनी बन कर मुझे भारी सहायता दी है। दीक्षा धारण करने से आज पर्यन्त तुमने मेरी आज्ञा शिरोधार्य की है. अब इन सुवर्णश्रीजी को मेरी स्थानापन्न समझ कर इनकी आज्ञा का पालन करना। आज तक तुम अपना पृथक स्वत्व न बनाकर मुझे ही सब कुछ समर्पण करती रही हो। तुम सब जैसी सुयोग्य शिष्याएं प्राप्त करके कोई भी गुरुणी अपने आप को भाग्यशालिनी अनुभव कर सकती हैं। इतनी सुदीर्घ संयम यात्रा में मेरे द्वारा कहीं कोई कटु वाक्य कहा गया हो या अवांछनीय व्यवहार किया गया हो तो मैं सब के साथ सरल हृदय से क्षमा याचना करती हूं।"

अशक्तता से वाणी क्षीण हो रही थी, परन्तु विचारों का प्रवाह निरन्तर प्रवहमान था। आन्तरिक उज्जवल भावनाओं से मुख प्रदीप्त था। सभी निकटवर्तिनी साध्वियां ये बातें सुन कर हतप्रभ सी हो गईं, आंखों में अश्रु बिन्दु छलक आये, कण्ठ अवरुद्ध हो गये, कुछ ने साहसपूर्वक करबद्ध हो इस प्रकार प्रार्थना की-भगवति! आप यह अन्तिम विदा जैसा सन्देश क्यों दे रही हैं? क्या हमें निराश्रय करके जाने की इच्छा कर रही हैं? अभी ऐसा कोई लक्षण नहीं है। करुणा सरिते! क्षमा मांगने की अधिकारिणी तो हम हैं? हम वर्षों आपकी छत्रछाया में सानन्द रही हैं। इतने दीर्घकाल में हम अधमाओं-द्वारा जो भी

अविनय आशातना या आज्ञा की अवहेलना हुई हो अथवा प्रमादवश कोई आदेश विरुद्ध कार्य हो गया हो, आप श्रीमतीजी के तथा जैनशासन के गौरव के प्रतिकूल कुछ भी आचरण हुआ हो तो हम सभी विनम्रभाव से हार्दिक क्षमा याचना करती हैं। आप पूज्येश्वरी क्षमा प्रदान करके हमें कृतार्थ करें।

चरितनायिका महोदया ने निकटस्थ सभी शिष्याओं की ओर स्नेह सिक्त दृष्टि डालते हुये कहा-इस में घबराने जैसी कोई बात नहीं है। जो होनहार है वह हो कर ही रहता है। जीवन मरण किसी के वश का नहीं है। कहा भी है :-

"हानि-लाभ जीवन मरण, यश अपयश विधि हाथ।" जब तक जीवन के क्षण शेष हैं, कोई मर नहीं सकता। तुम्हें मेरे नश्वर शरीर पर मोह न करके मेरी आत्मा के श्रेय का ध्यान रखना तथा अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहना चाहिये। इस विश्व में किसी का जीवन स्थायी नहीं रहता, एक दिन सभी को मृत्यु आती है। तुम सब सदा मेरी आज्ञा के पालन में तत्पर रही हो। मुझे विश्वास है कि तुम अपने निर्मल संयम युक्त आचरण से समुदाय व जैनशासन की कीर्त्ति को समुज्ज्वल बनाती हुई स्वपर श्रेय साधन करती रहोगी। अपने उत्तरदायित्व का सदा ध्यान रखोगी। मेरा तथा शासन का गौरव रखना अब तुम्हीं लोगों के हाथ है।

रात्रि शान्ति पूर्वक व्यतीत हो गई, कुछ विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। नवमी का दिन भी स्वाध्याय सुनते, शिष्याओं को सत्य-

रामर्श देते व्यतीत होता जा रहा था। श्वास का जोर कभी २ वढ़ जाता था। अत्यधिक प्रार्थना करने पर भी आपने कुछ लेना स्वीकार न किया।

अपराह्न में सभी साध्वीवर्ग आपकी सेवा में उपस्थित था। उस समय अनुमानत: चालीस साध्वीजी जयपुर आप के दर्शनार्थ पधार गई थीं। दर्शनार्थियों की भीड़ का उपाश्रय में समावेश नहीं हो रहा था। अवसरज्ञ मुख्य श्रावक श्राविकाओं ने सभी से विनम्र प्रार्थना की-कृपया आप लोग दर्शन करके ही वाहर पधार जायें। अन्य दर्शनार्थियों को अन्तराय न हो।

चरितनायिका कभी मौन हो जातीं, कभी वार्तालाप करने लगतीं, सान्ध्य प्रतिक्रमण शान्ति से हो गया। नवमी की रात्रि भी समाधि शतक, पुण्यप्रकाश स्तवन आदि श्रवण करते शेष हो गई। दशमी को प्राभातिक नित्य नियम प्रतिक्रमण आदि आवश्यक कार्य सावधानी से सम्पन्न कर लिए गये।

श्वास का दौरा क्षण क्षण में वृद्धिगत हो रहा था। आप वायीं करवट से सन्थारे (शय्या) पर शयन किये हुए श्री उत्तराध्ययन सूत्र के छत्तीसवें अध्ययन का श्रवण कर रही थीं। दक्षिण कर शंखावर्त्त जाप कर रहा था। कभी २ नयनोन्मीलन होता था। सारा शिष्या मण्डल शोकाच्छन्न दशा में अवस्थित था। भाषा वर्गणा के पुद्गल समाप्त हो चुके थे। आपने चिर मौन धारण कर ली। श्वास तीव्रता से चल रहा था, अन्तर में सावचेत थीं।

यह लेखनी क्या अब उस अन्तिम पटाक्षेप का दृश्य भी अंकित करेगी ? देखा नहीं पर सुना हुआ ही लिखना तो पड़ेगा ही न ? हृदय अवसन्न हो रहा है। हाथ कम्पायमान हो रहे हैं, लेखनी भी लिखने में असमर्थ सी हो रही है, किन्तु कर्त्तव्य पालन कितना निर्मम ! कैसा कठोर है ? मन से या बिना मन लेखक को हृदय द्रावक दृश्य भी अंकित करने ही पड़ते हैं। उन्हें लिखे बिना कहां छुटकारा ! अधूरा कार्य छोड़ना भी तो कर्त्तव्य च्युत होना है।

विक्रम संवत् १९७६ की फाल्गुन शुक्ला दशमी का सूर्य उदासीन वातावरण में उदय हो कर एक प्रहर चढ़ चुका था। उपाश्रय में या उपाश्रय के आस पास ही नहीं, जयपुर के श्वे. मूर्त्तिपूजक संघ के घरों में भी गहरी उदासी छायी हुई थी। गत अष्टमी की सन्ध्या को किया हुआ सन्थारा चल ही रहा था। छत्तीसवाँ अध्ययन समाप्तप्राय था, अरिहन्त सिद्ध साधू और केवली प्ररूपित धर्म का शरण सुनते २ इन महान् आत्मा के प्राण दिव्यलोक में प्रयाण करने को सन्नद्ध हो गये, शरीर निश्चेष्ट निष्पन्द हो गया।

> फाल्गुन शुक्ला दशमी का दिन एक प्रहर चढ़ चुका था, ठीक दश बज कर दश मिनिट पर आप चिर निद्रा में-गाढ़ शान्ति के अंक में जा विराजीं।

कौन जानता था कि यह महान् साध्वी रत्न इस प्रकार सबको मंझधार में छोड़ कर असमय में ही अपनी ऐहिलौकिक

लीला संवरण कर लेगी ? किन्तु काल की कराल क्रीड़ा निरन्तर अविच्छिन्न रूप से होती रहती है, यह सबकी आशा अभिलाषाओं पर तुषारपात करता हुआ अपना कार्य-यह क्रूर क्रीड़ा करता ही रहता है।

यह जीवन का वह आखिरी क्षण है जिस के सम्मुख जगत की बड़ी से बड़ी शक्तियां पराजय स्वीकार कर लेती हैं।

अस्तु ! अन्तिम समय में इन साध्वी शिरोमणि विदुषी आर्यारत्न के मुखमण्डल पर दिव्य तेजः पूर्ण शान्ति विराज रही थी, वेदना का लेश मात्र चिन्ह भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। ऐसा भान होता था कि एक वीराङ्गना जीवन संग्राम में विजयिनी बन शान्ति और सन्तोष से अन्तिम विदा ले रही हैं। उन का संयमी जीवन तो आदर्श रहा ही था, मृत्यु भी कम आदर्श न थी, ऐसा पण्डित मरण भाग्यशालियों को ही उपलब्ध होता है।

दश बज के दश मिनिट पर इस नश्वर शरीर का परित्याग करके वह पुण्य पुनीत तपः पूत आत्मा स्वर्गलोक को पवित्र बनाने प्रयाण कर गईं।

जिन भाग्यशालियों ने उनकी वह अन्तिम छवि देखी उनके नयनों में वह सदा के लिये अंकित हो गई। कितनी भव्यता थी उस मुख मण्डल पर ! कैसी अपूर्व स्निग्ध कान्तिमय शान्ति थी उनके वदन कमल के ऊपर ! ! कैसी दिव्य समाधि थी ! ! !

दर्शन करने वाले कृत कृत्य हो गये। मस्तक स्वतः झुक गये इन संयम और तप : पूत भगवती के चरणों में !

पुण्यशालिनी पूज्येश्वरी महोदया के स्वर्गवास का समाचार विद्युत् वत् सारे नगर में फैल गया। संघ पर शोक की कृष्ण कादम्बिनी छा गई। जैन प्रजा के लिए इन स्वनामधन्या गुरुणी साहवा के निधन का दुःसंवाद वज्रपात सदृश था। दूर-दूर निवास करने वाला जैन समुदाय अन्तिम दर्शनों के लिए उमड़ पड़ा। भक्त श्रद्धालु जन अपने हृदय को दृढ़ वना कर आते और महत्तरा महानुभावा के गतप्राण शरीर का दर्शन करके अश्रु-धारा का अर्घ्य चढ़ा कर चले जाते थे। जयपुर के श्रीसंघ को ऐसा अनुभव हुआ मानो काई जैन शासन की अमूल्य निधि नष्ट हो गई हो। और वे सचमुच अमूल्य रत्न ही थीं।

आवाल वृद्ध नर-नारी, धनी-निर्धन, शिक्षित अशिक्षित, प्राय: सभी के मुख पर गहरा विषाद था। सब की जिह्वा पर एक ही बात थी और एक ही प्रश्न था-पूज्य गुरुणी साहव के वियोग से जैन संघ की अत्यधिक और दुष्पूर्य क्षति हुई है। भविष्य में इस क्षति की पूर्त्ति हो सकेगी या नहीं ?

दशमी का अपराह्न काल है। जयपुर की सारी जैन संस्थाएं वन्द रहीं। सब ओर शोक समुद्र की लहरें उमड़ रही थीं। जरीयुक्त चांदी का विमान तैयार था। शव का अन्तिम स्नानादि संस्कार कर के केशर चर्चित शुभ्र, केशरिया छांटने वाले

वसनों से अलंकृत करके पूज्येश्वरी का पुण्य पुनीत शव विमान में स्थापित किया गया। गणाधीश महोदय ने विसर्जन विधि सम्पन्न की। हाथी, घोड़े, बैण्ड, राजकीय लवाजमा आदि सब तैयार थे। लगभग एक बजे शवयात्रा प्रारम्भ हुई।

"जय-जय नन्दा, जय-जय भद्दा" "जैन धर्म की जय" "भगवान महावीर की जय" गुरुणी साहब पुण्यश्रीजी महाराज की जय" के गगन भेदी नारों के साथ श्रावकों ने विमान उठा कर कन्धों पर रख लिया और शव के अन्तिम संस्कार-अग्नि संस्कार के लिए चल पड़े। आगे २ उछाल होती जा रही थी। इस समय का दृश्य बड़ा ही करुण और हृदयद्रावक था। जनसमूह की आंखों से अश्रु धारा प्रवाहित हो रही थी, वातावरण विषादपूर्ण और गम्भीर था। हजारों की मानवमेदिनी साथ चल रही थी। शहर के मुख्य जौहरी वाजार, माणकचौक, रामगंजवाजार से होता हुआ यह जुलूस सूर्यपोल की ओर चला जा रहा था।

त्याग तप और ज्ञान की यह स्थूल देहयष्टि आज जयपुर के वाजारों में होकर अन्तिम विहार कर रही थी। भक्त श्रावक मण्डली आज अपनी इस महान् श्रद्धेया नेत्री को भग्न हृदय से विदाई दे रही थी और शोक भारावनत बनी हुई धीरे धीरे चल रही थी। यथा समय शव यात्रा मोहन वाड़ी नामक स्थान पर पहुंची। पूज्य शिवजीरामजी महाराज की समाधि के पृष्ठ भाग में चन्दन नारियल आदि से चिता चयन हुआ। उन

महान् आत्मा का निष्प्राणदेह चिता पर रख कर अग्नि प्रज्वलित कर दी गई। चिता से ऊंची २ ज्वालाएं उठ कर आकाश की ओर लपलपाती चली जा रही थीं। इधर शत शत कंठों से निकली हुई जयध्वनियां चरितनायिका के चरणों में मानो स्वर्ग पर्यन्त पहुँचने का प्रयत्न कर रही थी। देखते देखते वह स्थूल शरीर भस्मसात् हो गया। सभी लोग शोक की जङ्गम प्रतिमा बने हुए शहर में लौट आये। स्नात हो विशुद्ध वस्त्र धारण कर उपाश्रय में आकर मांगलिक श्रवण करके अपने २ घर चले गये। शिष्या मण्डली ने भी शोकपूर्ण हृदय से आवश्यक विधिविधान-देववन्दनादि सम्पन्न किये। प्रायः सभी के उपवास थे।

दूसरे दिन से अष्टाहिकोत्सव आरम्भ हुआ, जो एक मास तक चलता रहा। फलोधी, लोहावट, जोधपुर, बीकानेर, रतलाम, कोटा आदि कई स्थानों पर तार द्वारा पूज्येश्वरी के दिवंगत होने का शोक संवाद पहुंचा, तो वहां भी शोक छा गया। देववन्दन, शोक सभाएं, पूजाएं, अष्टाहिकोत्सव महोत्सव आदि यथायोग्य किये गये।

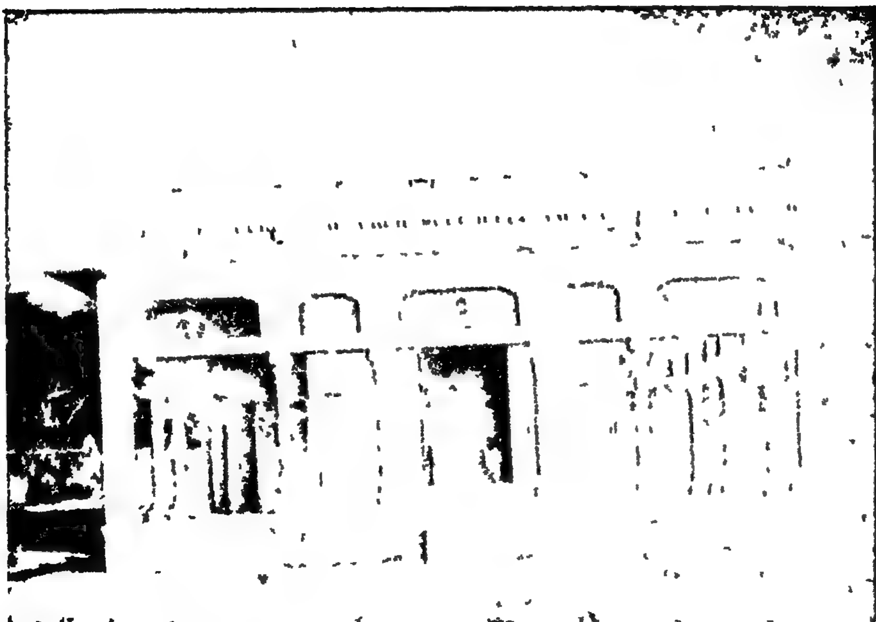
जयपुर की मोहन वाड़ी में आपके अग्निसंस्कार के समय ही स्थानीय श्रावक वर्ग ने वहां स्मारक बनाने का निश्चय कर लिया था। तदनुसार उस स्थान पर श्री संघ की ओर से भव्य समाधि मन्दिर बनाया गया जिसका चित्र यहां प्रस्तुत है।

आपका प्रारम्भिक जीवन आदर्श और उज्ज्वल था। उस में दिनों दिन वृद्धि होते २ वह प्रतिष्ठा के सर्वोच्च शिखर पर पहुंच

कर अब विरमित हो गया। मुक्ति पथ की इस महान् पथिका को कोटिशः नमस्कार हो। जैसा आपका जीवन पवित्र और आदरणीय था वैसी ही देह विसृष्टि (मृत्यु) भी उच्चकोटि की थी। आपने किशोर वय में जिस साधना पथ पर चलना आरम्भ किया था उसी साधना के पुनीत पथ पर वीरतापूर्वक चल कर अपना अन्तिम लक्ष्य-समाधि मरण प्राप्त किया। अन्त मे यह उन पवित्र पुण्यशीला महान् आत्मा की प्रशिष्या उन्हें यही प्रार्थना करती है कि उनकी पुनीत साधना का किञ्चिद् अंश मुझ मे भी प्रस्फुटित हो कि मैं भी उनके पद चिह्नों का अनुसरण करने योग्य बन सकूं।

कोटि कोटि अभिवन्दन हो उन श्रेष्ठतम आत्मा के चरणों में !





जयपुर मे मोहनबाड़ी स्थित पुण्य समाधि मन्दिर का विहंगम दृश्य

चरितनायिका के कुछ विशिष्ट गुणों की झलक

मानव की वास्तविक परीक्षा केवल उसके शारीरिक रूपरंग या आकार प्रकार से नहीं होती, उसके आन्तरिक गुणों से ही सही मूल्यांकन किया जा सकता है। अमुक व्यक्ति कैसा है? यह उसके प्रत्येक आचार व्यवहार, चालढाल, बोलचाल आदि से ही जाना जा सकता है। उसकी प्रत्येक प्रवृति में गुणांश कितना है, इसी पर से अनुमान किया जा सकता है। विशिष्ट विवेकवान् व्यक्ति की दृष्टि उसके बाह्य चिन्हों पर केन्द्रित न रह कर व्यवहार पर भी जाती है।

परमश्रद्धेया चरितनायिका का आकार प्रकार तो विशिष्ट था ही, उनके प्रत्येक व्यवहार में दिव्य गुण झलकते थे। उनके जीवन का कुछ वृत्त मैंने लिखने का प्रयत्न किया है, पर क्या मैं उसमें वास्तविकता अंकित कर सकी हूं? मेरा अन्तःकरण इसे स्वीकृत नहीं कर रहा है। उस अमर जीवन के विराट् रूप को यह अल्पज्ञा कैसे लिपिबद्ध कर सकती है?

इस लेखिका ने न तो उन महीयसी महानुभावा के चरणों में निवास करने का सौभाग्य लाभ किया और न उनके दर्शन का ही। उनका यशः सौरभ ही केवल मेरे लिए संवल स्वरूप प्राप्त

हुआ है। हाँ जिन्हें उनके पवित्र चरणों में रहने का सुयोग मिला है उनसे सुनकर ही मैं हृदयङ्गम कर पाई हूं।

उस यशः सौरभ से मैंने इस चरित्र को सुवासित करने का प्रयत्न किया है। सम्भव है यह सौरभ कहीं न आ सकी हो। इसलिए मैं यहा उनके कुछ विशिष्ट गुणों की झलक दे देने का लोभ-संवरण नहीं कर सकती।

विनय

"विणयोमूलो धम्मो" धर्म विनयमूल कहा गया है। विनय का महत्व जीवन के सभी क्षेत्रों में स्वीकार किया जाता है। गार्हस्थ्य जीवन से भी त्यागी जीवन में विनय का स्थान सर्व प्रथम है। विनीत साधक ही सिद्धि प्राप्त कर सकता है। इस एक गुण के विकसित होते ही आत्मा में अन्य गुण इसके अनुगामी बने हुए स्वतः ही आ जाते हैं। चरितनायिका को यह तथ्य अवगत था। उनमें बाल्यावस्था से ही यह गुण विद्यमान था। वे अपने मातापिता की विनयी सन्तान थीं। इस विनय कर्त्तव्य के पालनार्थ ही उन्होंने अपनी आन्तरिक ध्वनि को दबाकर विवाह करना स्वीकार किया था। साधु जीवन में प्रवेश करने के पश्चात् गुरुजनों का वे सतत विनय करती रहती थीं। उन्होंने आज्ञा के विरुद्ध कभी कोई ऐसा आचरण नहीं किया कि उपालम्भ का प्रसङ्ग उपस्थित हो। इस अप्रतिम विनयगुण ने ही उन्हें योग्य बनाया और वे प्रतिष्ठा के उच्च शिखर पर विराजमान हो सकीं।"

चरित्रनिष्ठता

साधक के जीवन में सर्वाधिक चरित्रबल अपेक्षित है। वह नर हो या नारी, साधु हो या गृहस्थ उसका चरित्र उज्ज्वल होना चाहिए। चरित्र जितना ही निर्मल निष्कलंक होगा वह उतना ही आध्यात्मिकता के सर्वोच्च शिखर पर आरोहण कर सकेगा। भारतीय संस्कृति में महत्व का मापदण्ड केवल उज्ज्वल चरित्र है,

पूज्येश्वरी चरितनायिका की चरित्रनिष्ठा बहुत उच्च श्रेणी की थी। वैवाहिक जीवन के आरम्भ में ही उन्हें वैधव्य का सामना करना पड़ा। युवावस्था, गृहस्थ जीवन में होने वाले रागरंग उन्हें अपने चरित्र से कभी नहीं डिगा सके। बाल्यवय से ही वे अपना लक्ष्य निर्धारित कर चुकी थीं। यह पाठक पढ़ चुके हैं। साध्वीजीवन में भी उन्हें कई बार अनुकूल प्रतिकूल संयोगों से सामना करना पड़ा, बड़े २ परिषहों की दुर्गम घाटियाँ उनके संयम-पथ में आईं, पर वे अव्याबाध गति से चलती रहीं चलती रहीं। उनके ४६ वर्ष का दीर्घ संयमी जीवन विशुद्ध रहा।

निरभिमानिनी आर्या

किसी उच्च पद को पाकर गर्व न करना साधक जीवन की विशिष्टता है। चरितनायिका प्रारम्भ से निरभिमानिनी थी। गर्व उन्हें कभी स्पर्श न कर पाया। आपकी पूज्य गुरुवर्याओं ने सर्वथा योग्य देखकर ही तरुणावस्था में आपको नेत्री बना कर पृथक

विचरने का आदेश प्रदान कर दिया था। तभी से आप आज्ञानुसार पृथक् चातुर्मास करने लगी थीं। नेतृत्व पाकर भी आपको कभी अभिमान न आया। छोटी से छोटी साध्वियों के साथ भी आपका व्यवहार सदा प्रेम और नम्रता का रहा। बड़ों के साथ तो इतना विनयपूर्ण व्यवहार था कि आपको कभी अपने पूज्यवरों से उपालम्भ मिलने का प्रसङ्ग ही उपस्थित न हुआ।

दयार्द्र हृदय

मानव जीवन की विशिष्टता है दयालु स्वभाव। साधक हृदय में करुणा का स्रोत निरन्तर प्रवाहित होता रहे, यह अनिवार्य आवश्यक गुण है। जिसके अन्तःकरण में जीवमात्र के प्रति करुणा का सागर लहराता हो, वही परम पथ पर चलने का अधिकारी होता है।

हमारी परमादरणीया चरितनायिका का हृदय करुण रस से छलकता हुआ सरोवर था। क्षुद्र से क्षुद्र प्राणी के प्राणों की रक्षा की भावना ने ही आपको त्यागी जीवन में रहने की प्रेरणा दी। किसी भी जीव का कष्ट देख कर आपका हृदय द्रवित हो जाता था। आप अपने उपदेश द्वारा कई असमर्थ दीन प्राणियों को सहायता दिलवा कर उनका दुःख दूर करने का प्रयत्न किया करती थीं और कई असहाय श्रावक श्राविकाओं के भरण पोषण का बन्ध अपने भक्तजनों से करवाया था।

धीरता

संकट के समय धीरता रखना मानव जीवन का विशिष्ट गुण है। मनुष्य के उच्च व्यक्तित्व का द्योतक उसका धैर्य है। आपको बाल्यावस्था में ही अपनी भावना के विरुद्ध वैवाहिक बन्धन में आबद्ध होना पड़ा। अभी हल्दी का रङ्ग भी न गया था कि आप पर वैधव्य का वज्र टूट पड़ा, पर आपका धैर्य अद्‌भुत था।

साधु जीवन धारण करने के समय भी आपने धैर्य से काम लिया। दीर्घ संयमी जीवन में कई बार आपको बीहड़ पथों में आहार पानी और उचित आश्रय स्थान के अभाव का सामना करना पड़ा परन्तु आपका धैर्य विचलित न हुआ।

पालनपुर, रतलाम, जयपुर आदि में प्लेग फैलने पर आपके धैर्य का दिग्दर्शन पिछले पृष्ठों में कराया गया है और अन्तिम समय का धैर्य तो जिन्होंने अपनी आंखों से देखा है वे आज भी आश्चर्य कर रहे हैं। घोर पीड़ा में भी कभी आपके मुख से उफ न निकला था।

शान्ति की जङ्गममूर्ति

साधु जीवन में शान्ति परमावश्यक है। संसार की विषय-कषायाग्नि से सन्तप्त प्राणी शान्ति की खोज में साधुओं की शरण में आते हैं। वहां उन्हें शान्ति की शीतल छाया मिलती है।

हमारी महामान्या चरितनायिका के मुख मण्डल पर सर्वदा शान्ति विराजमान रहती थी। आपके सम्पर्क में आने वालों की तामसी वृत्तियां शान्त हो जाती थीं।

चाहे कैसा ही क्रोधी व्यक्ति हो आपकी शान्त मूर्ति देखते ही उसका क्रोध शान्त हो जाता था। आपकी स्नेहसिक्त उपदेश वाक्यावलि उसके हृदय में प्रवेश करते ही वह शान्तरस में मग्न हो जाता था।

पाठकों ने पिछले पृष्ठों में पढ़ा है, श्री शत्रुञ्जय की यात्रार्थ प्रयाण करते हुए पथ में एक लम्पट उद्भट पुरुप का सामना हो गया था। आपकी शान्त निर्विकार मुखमुद्रा के दर्शनमात्र से ही उसके विकृत मनोभाव में तत्काल परिवर्तन हो गया और सच्चा भक्त बन कर उसने आपको आगे के गांव तक पहुंचाया।

प्रभावशालिता

चरितनायिका की प्रभावशालिता के विपय में तो कुछ कहना सूर्य को दीपक से दिखाने के समान हैं। अद्भुत प्रभावशाली मुखमुद्रा थी, वाणी में तो ऐसा चमत्कार था कि कदाचित् ही कोई देशना निष्फल जाती थी। दो चार भव्यात्माएं त्याग वैराग्य की ओर अवश्य अग्रसर होती थीं। प्रतिवर्ष आपके शिष्या परिवार में वृद्धि होती रही है, ऐसा पाठक पिछले पृष्ठों में पढ़ चुके हैं। आपके प्रभाव से कई स्थानों में वर्षों से चले आने वाले

जातीय झगड़े मिनिटों मे शान्त हो गये। आपके प्रभाव से कुन्देरा का उपेक्षित मन्दिर सैंकड़ों का उपासना स्थान बना एवं तत्रस्थ अनेक भ्रान्त श्रावक सही मार्ग पर आये, यह क्या सामान्य प्रभाव था ? बड़े २ आचार्य, तत्वज्ञ श्रावक एवं अन्य सम्प्रदायों वाले भी आपकी प्रभावशालिता के कायल थे। लेखिका ने अपने पिता, प्रसिद्ध तेरहपन्थी, साहित्यसेवी श्री गुलाबचन्दजी लूनिया से कई बार श्रवण किया था कि हमने उनके जैसी प्रभावशालिनी शास्त्रज्ञा एवं मधुरभाषिणी अन्य साध्वीजी नहीं देखी ? वे खुले दिल से चरितनायिका की प्रशंसा किया करते थे। आपसे मिलकर बड़े २ दिग्गज पण्डित भी प्रभावित हुए बिना न रहते थे। आपका व्यक्तित्व कुछ ऐसा अद्भुत था कि एक बार भी आपके साथ जिसका वार्तालाप हो जाता वह आपकी योग्यता, शास्त्रज्ञता, सरलता, स्पष्टवादिता आदि दिव्य गुणों से आकर्षित होकर बार २ आने को बाध्य हो जाता था। सिरोही राज्य के लोग तो ऐसा कहते रहते थे कि ये साध्वीजी तो रजोहरण में मानो उस्तरा ही लिए फिरती हैं, जहां जाती हैं, इनके पास दो चार दीक्षाएं अवश्य होती हैं।

स्वावलम्बिता

यह गुण भी प्रत्येक साधक जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। परावलम्बनता या पराश्रयता मनुष्य को आलसी और निकम्मा बना देती है। शताधिक शिष्याओं की नेत्री बन जाने पर भी

आप विहार में अपने उपकरण-वस्त्र, पात्र, दर्शन माला आदि की झोली. स्थापनाचार्य आदि स्वयं वहन करती थीं। शिष्याएं प्रार्थना करतीं—पूज्यवर्ये ! अब आपको ये सब भार उठाना शोभा नहीं देता, पर आप हंस कर उत्तर देतीं–नहीं, नहीं, ये तो साधु जीवन की शोभा है इसे अशोभन कैसे कहती हो ? आपका यह हास्यपूर्ण स्वावलम्बन का पाठ उन्हे स्वयं को स्वावलम्बी विनयी और श्रमशील बनने में बड़ा सहायक प्रमाणित होता था। दूसरे आप का यह विशुद्ध बर्त्ताव शिष्यावर्ग को आपकी ओर अत्यधिक आकर्षित करके विनम्र भक्त बना देता था।

तपस्या के प्रति अनन्य श्रद्धा

तपस्या साधु जीवन का भूषण है। सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चारित्र के साथ ही सम्यग् तप भी हो तो साधक की साधना में चार चांद लग जाते हैं। इन चारों की सम्यक् साधना ही आत्मा को अविलम्ब स्वरूप प्राप्ति में महान् सहायिका सिद्ध होती है। हमारी चरितनायिका इस तथ्य को हृदयङ्गम कर चुकी थीं। उनके जीवन में हम इन चारों की समान आचरणा अवलोकन करते आ रहे हैं। त्याग तप और संयम की इन जागृत ज्योति ने अपनी संयम यात्रा में तप का पाथेय लेने में त्रुटि नहीं की। दीर्घ तपस्याओं के अतिरिक्त आपने ४५ तो अट्ठाइयां ही की थीं। तिथियों की आराधना, विंशतिस्थानक तप, कल्याणकतप, चतुर्विंशतिजिन आवलिका तप, नवपद

आवलिकातप आदि कई तप आराधन किये थे। प्रायः पौरुषी तो नित्य ही करती थीं। स्वयं तपस्या करना, दूसरों को प्रेरणा करना और अनुमोदना करना ये तीनों ही आपके जीवन में पद पद पर दृष्टिगोचर होते हैं। तपस्वियों की प्रकृति प्रायः उग्र हो जाती है पर आप इस की अपवाद थीं। उग्रता स्वभाव में थी ही नहीं। तपस्या में तो आपकी शान्ति में अत्यधिक वृद्धि हो जाती थी। आप तपस्या काल में भी व्याख्यान देती रहती थीं। प्रमत्तता को आपने कभी पास न फटकने दिया। निरन्तर श्रमशीलता-स्वाध्याय, जप तात्विक वार्त्तालाप आदि आपके जीवन के मूल मन्त्र थे। तपस्याकाल में भी सुखशील कभी न बनीं।

उपसंहार

पूज्यवर्या महत्तरा श्रीमती पुण्य श्रीजी महाराज माहृया आत्म-विकास की उस श्रेणी पर पहुंची हुई साध्वी श्रेष्ठा थीं जहां आत्मा के ज्ञान दर्शन चरित्रादि गुण विराट बनने की भूमिका पर होते हैं। उनका जीवन त्याग, तप, शील, उदारता, सरलता, सौजन्य आदि गुणों से ओतप्रोत था। उन में शास्त्रोक्त वे सभी गुण विद्यमान थे जो साधक जीवन के लिए अनिवार्य माने गये हैं। उन महान् आत्मा के विषय में जितना भी लिखा जाय थोड़ा है। मुझ अल्पज्ञ में इतनी शक्ति कहां ? अनुभव कितना ? मैंने केवल भक्तिवश इस उज्ज्वल चरित्र का आलेखन किया है। उन महान् आत्मा के प्रति केवल अपनी आन्तरिक श्रद्धा को मूर्त्त रूप देने का मेरा यह स्वल्प प्रयास है।

卐 इति शुभम् 卐

ॐ

तवो गुण पहाणस्स, उज्जुमइखंति संजमरयस्स ।
परिसह जिणंतस्स, सुलहा सुगइतारिसगस्स ॥

अर्थ :—

तपगुण प्रधान, सरल बुद्धि, शान्ति, क्षमा, गुण से युक्त सांसारिक विषय वासना से मुक्त होकर अपने निजी संयम गुणों में लीन तथा परिषहों को जय करने वाले महान साधुओं के लिए सद्गति सहज है ॥

दशवैकालिक
४ अध्ययन
२७ गाथा



॥ श्री ॥

श्री वीतरागायनमः

परिशिष्ट सं. १

अभिनन्दन--पत्र

शिखरिणी वृत्तम्

दधानां ध्यानानां निचयमिह नानांऽचित मतिम्,
जनानां जैनानां ततिमवि पुनानां गतिरतिम् ।
ददानां ज्ञानानां नरवहुविधानां च सरणिम्,
सभानां पुण्य श्री विलसदभिधानां नभमणिम् ॥

दोहा

स्वस्ति श्री पहिले लिखु सिद्धहोत सवकाज ।
पार्श्वजिनहि प्रणमु सदा नितमंगल महाराज ॥

सकल नगर निवासी जैनी साधर्मिक भाइयों से जाहिर किया जाता है कि श्री श्री १००८ श्रीमान् छगन सागरजी महाराज साहब के सिंघाडे की खरतरगच्छीय श्रीमती जी गुरुणीजी साहबा श्री लक्ष्मी जी महाराज मगन श्रीजी महाराज के आज्ञानुसारिणी गामानुगाम विचरते हुवे परमपूज्य पुण्य श्री जी महाराज ठाणा १४ से शहर सिरोही में चातुर्मासी की वहां खुद श्रीमती जी साहबा ने अष्ट कर्मों को नाश करने वाली ऐसी अट्ठाई की और

चम्पा श्रीजी महाराज ने ३१ उपवास तथा भक्ति श्री जी महाराज ने २६ उपवास किये। उस वक्त यहां के साधर्मिक भाइयों की तरफ से पूजा आदि औत्सव वहुत ही अच्छा हुवा तथा वहां पर जालोर निवासी हांसी वाई ने वड़े ही भारी महोत्सव पूर्वक मार्ग शीर्ष शुक्ल एकादशी के रोज भव वंधन से मुक्त कराने वाली प्रव्रज्या को धारण करी तथा उन्हीं दिनों में इन ही श्रीमतीजी साहवा की शिष्या लाभ श्री जी महाराज ने शहर जोधपुर में भंडारी सूरज राज जी की कंवारी लड़की केशर जिनकी कि उम्र नव वर्ष की थी तथा उन की माता अर्थात् सुरज राज जी वहु ने और एक वाई यानी लाभ श्री जी के गृहस्थाश्रम की मातुश्री इन तीनों को अत्यन्त जुलुस के साथ दीक्षा दी। फिर वहां से लाभ श्री जी महाराज आदि सव ठाणे विहार करते हुवे सिरोही पधारे तथा वहां कुल ३६ ठाणे होते हुवे।

वाद में वहां से साहवा विहार कर सिरोही से तीन कोस पाडी गांव है, वहां पधारे। सव ठाणे सहित तथा अनेक तरह से उपदेश देकर श्रावक श्राविकाओं में नवरंगी तपस्या कराई और सिरोहीवत् वहां भी वहुत कुछ साधर्मिक भाइयों ने औत्सव कराया।

तत्पश्चात् उक्त श्रीमती जी ने अपनी विदुषी शिष्या विवेक श्री जी महाराज को जावाल और कनक श्री जी को डोडुवे भेजे। इन दोनों जगह पर भी पचरङ्गी तपस्या हुई तथा पूजा प्रभावना आदि वहुत औत्सव हुआ—

उसके बाद परम कृपालु इन साहबा के दर्शन का उत्कंठित ऐसा जो कालन्दरी का संघ वह इन महाराज के दर्शन कर तथा अर्ज करने लगा कि हे दयालु हम अत्यन्त तृषातुर को आप चातुर्मास कर तृप्त कीजियेगा।

यह विनती सुनकर अनहद उपगार के कर्ता ऐसे श्रीमती जी ने कालन्दरी में चतुर्मास की विनती मंजूर कर तथा सब ठाणों से पृथ्वी को भूपित करते हुए पधारे। वहां जैन धर्म का निहायत उमदा तौर व्याकरण संस्कृत टीका दृष्टान्त युक्ति सहित उपदेश किया जिसके जरिये से नवरंगी तपस्या वगैरह नीचे लिखे मुआफिक हुए और बहुत सी पूजा व नौकारसी वगैरह सभी वात्सल्य मानिन्द पर्युषणा के हुये।

उपवास

९	८	७	६	५	४	३	२	१	कुल संख्या २०२१
२९	२५	२८	३५	६३	७१	५१	७५	२५२	
२६१	२००	१९६	२१०	३१५	२८४	१५३	१५०	२५२	

आप साहबा के इस हमारी जन्मभूमि में पधारने से जैन धर्म की उन्नति और उद्योत अत्यन्त ही हुआ जो कि जबान बयान नहीं कर सकती तथा उक्त महासतियों के विचरने से लाश, लाय,

खरूडवा इत्यादि अनेक गांवों में जैन धर्म का उद्योत हुआ जो कि लेखनी से वाहर है।

आजकल के जमाने में हमारी इस जन्मभूमि (सिरोही रियासत) में ऐसी विद्यावान् साध्वियों ने पधार कर इस जन्मभूमि को पवित्र नहीं किया और न मौजूदा दुनिया में ऐसी विद्यावान भली और तारीफ लायक साध्वियां सुनी गई-जैसे कि ये श्रीमती जी साहवा तथा इनकी शिष्यायें वुद्धिमान् हैं।

आप में से वहुत सी साध्वियें व्याख्यान देने में ऐसे होशियार हैं जो कि सहस्रों मनुष्यों की सभा में आपका शुद्ध शब्द सुनने वालों को अमृत समान मालूम होता है।

आपकी समझाइस ऐसी भली है कि सुनने वाले का दिल अपने धर्म पर कटिवद्ध होता चला जाता है। याने जैसा आपकी जवान से फरमान होता है वैसा ही सुनने वाला खुशी के साथ करता है-जैसे-हम लोगों के ३५ साल से दो तड थे, यानी चन्द घर एक तरफ तथा दूसरे दूसरी तरफ, यह हम लोगों को उम्मीद नहीं थी कि कुसंप रूपी नाव से तरकर संप रूपी नाव पर वैठ जायेंगे। मगर आपकी विदुषी शिष्या सुवर्ण श्री जी महाराज ने इसी संप और कुसंप के विषय में व्याख्यान दिया कि जिससे हम ही लोगों ने सहर्ष उस तड को तोड दी और संप रूपी नाव पर वैठना इक्त्यार किया। इसी ही तरह के नाना प्रकार के गुण

आप में विराजमान हैं जो कि लेखनी के बाहर हैं—इन सब साध्वियों में यह एक गुण बड़ा ही चमत्कारी है कि आजकल हम लोग सगे भाई कोई शामिल नहीं रह सकते—मगर आप सर्व साध्वियें भली तौर से शामिल रहती हैं और अपने गुरु के हुक्म बिना कोई भी काम नहीं करती हैं। हाल के युग संप ने इनके दर्मियान अच्छा फैलाव किया है। बन्धुगणों! सज्जनों! यह एक बड़ा हर्ष का स्थान है, धन्य है इनके माता पिता को जिनकी ऐसी पुत्रियें हुईं और धन्य है इनको कि जिन्होंने संसार को त्यागा और अरिहन्त देव को पहिचानने की कोशिश करी तथा हम अज्ञानियों को उपदेश करते हैं। फिर धन्य हैं इनके गुरुजनों को जिन्होंने इनको अच्छा उपदेश दिया—यह हमारा हर्ष परमेश्वर की प्रार्थना करता है कि-हे परमेश्वर, इन हमारे गुरुजनों को दिन-बदिन सुकृत काम में पूरी पूरी मदद देओ और इनकी बुद्धि व विद्या बढ़ाओ और इनके संप रूपी वृक्ष को दिन प्रति दिन बढ़ाने की योजना करो। प्रियवर जैनी भाइयों! इस मौके पर केवल हमको ही हर्ष नहीं है बल्कि आप लोगों को भी इस पत्र के पढ़ने से अत्यन्त ही आनन्द प्राप्त होगा और इनके दर्शन की अभिलाषा रहेगी। क्योंकि इस दुनिया में साधु लोग तो विद्यावान होकर व्याख्यान देते हैं, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। लेकिन इन साध्वियों में सूत्रादि पढ़ने से व्याख्यान की विचक्षणता अत्यन्त पाई जाती है। यह ही बड़ा आश्चर्य है और साधु विद्यावान् होने पर भी

आपस में संप नहीं रखते हैं मगर यह साध्वियें विद्वत्ता को धारण करते हुए भी आपस में एक संप रखती हैं और जैन धर्म का पूरा ज्ञान रखती हैं।

इस कालन्द्री में जो कुछ औत्सव पूजा प्रभावना वगैरह हुए सो सब इन ही श्रीमती जी के उपदेश से हुआ है मगर हमारे बन्धु मोदी कुशलचन्द जी सिरोही निवासी ने इन कामों के करने कराने में पूरी २ मदद दी है। इसलिए इस मौके पर हम उनको भी धन्यवाद देते हैं। यह साहबा की जिस कदर तारीफ हमने बयान की है उससे भी अत्यन्त तारीफ करने लायक हैं और इनके तथा इनकी गुरु श्री जी के सब ठाणे मिलकर अन्दाजन १२५ हैं–जिनके दर्शन करके आप लोग भी लाभ लेंगे–और इनकी अनुमोदना करेंगे। भूल चूक माफ करेंगे। ता० ५ फरवरी सम्वत् १९६२ माघ शुक्ला ११

१. मोदी	सोनमल जी	सिरोही
२. ,,	भूताजी	कालन्द्री
३. पोरवाल	हिन्दुजी	,,
४. संघी	समरथमल जी	सिरोही
५. दवाणी	दलेचन्द जी	,,





स्व० प्रवर्तिनी श्रीमती सुवर्णाश्रीजी म० सा० साध्वीवर्ग के मध्य में

परिशिष्ट सं० १

बृहद् खरतरगच्छीया साध्वी शिरोमणि प्र. श्रीमती सुवर्णश्रीजी महाराज साहवा का जीवन परिचय :

अहमदनगर निवासी ओसवाल जाति भूषण श्रीमान् सेठ योगीदासजी वोहरा एक बड़े ही व्यापार कुशल सज्जन थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम श्रीमती दुर्गादेवी था। वे बड़ी सचरित्रा, धर्म परायणा, उदार और आदर्श पतिव्रता थीं। इन्हीं देवी जी के गर्भ से सम्वत् १९२७ की ज्येष्ठ कृष्णा द्वादशी के दिन हमारी चरित-नायिका ने शुभ जन्म ग्रहण किया। वालिका के अद्भुत रूप लावण्य देखकर ही माता पिता ने आपका नाम सुन्दर वाई रखा। सुन्दर वाई केवल रूप में ही सुन्दर नहीं थीं, उनमें गुण भी वहुत से थे। वचपन से ही बड़ी उदार और उच्च भावनापन्न थीं। विद्या-लाभ करने की ओर भी उनकी वचपन से रुचि और प्रवृत्ति थी। कुमारावस्था में ही सुन्दर वाई ने अच्छी शिक्षा प्राप्त कर ली और खूब विद्याध्ययन कर लिया। इतनी अल्पावस्था में इतनी योग्यता शायद ही कोई लड़की प्राप्त कर सकती। जब सुन्दर वाई की अवस्था प्रायः ११ वर्ष की हुई तब आपकी माता आपका विवाह करने की इच्छा से आपको लेकर जोधपुर रियासत के पीपाड़

नामक स्थान में आई। यहीं सुन्दर वाई को साधु साध्वियों के समागम का संयोग प्राप्त हुआ। उसी समय वैराग्यपूर्ण देशनाएं सुन सुन कर सुन्दर वाई का चित्त संसार से विरक्त होने लगा। परन्तु कर्मान्तराय से आपको गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना था। इसलिये संसार त्याग करने का अवसर नहीं मिला।

संवत् १६३८ की माघ शुक्ला तृतीया के दिन नागौर निवासी श्रीमान् प्रतापचन्द्रजी भण्डारी के साथ आपका शुभ विवाह हुआ।

वृहत् खरतरगच्छ सम्प्रदाय के गणाधीश्वर सुखसागर जी महाराज के समुदाय की जगत विख्यात् शांतमूर्ति, गम्भीरता आदि गुणों से अलंकृत श्रीमती पुण्य श्री जी महाराज संवत् १६४५ में नागौर पधारीं। श्री सुन्दरवाई जी उनका उपदेश श्रवण करने के लिए उनके पास नित्य आने लगीं। प्रतिदिन श्रीमती पुण्य श्रीजी म. अपनी देशना में संसार की असारता का विशद वर्णन करती थीं।

नित्य वैराग्यमयी वातें सुनते-सुनते सुन्दर वाई का हृदय वैराग्य-रस से परिपूर्ण हो गया। अवके श्रीमती पुण्य श्री जी म० की मधुर देशना ने सोने में सुहागे का सा काम किया। आपका वैराग्य भाव वहुत ही पुष्ट हो गया। आपने उसी समय गुरुणी जी महाराज से दीक्षा ग्रहण करने का विचार प्रकट किया।

जव सुन्दर वाई ने वहुत आग्रह किया तो इनका हार्दिक (रा)ग्य भाव देखकर श्री गुरुणी जी ने कहा—अच्छा, यदि तुम्हार

इच्छा दीक्षा लेने की इतनी प्रबल है तो पहले अपने घरवालों से इसके लिए आज्ञा मांग लो।

पहले तो लोगों ने हमारी चरित-नायिका के दीक्षा ग्रहण करने में बड़ी २ अड़चनें डालीं, प्रतापमल जी साहब ने भी ऐसी सर्वथा सुयोग्या पत्नी को आज्ञा देने में बहुत आनाकानी की। रोकने का जितना प्रयत्न करना था, सब कर लिया। पर सुन्दर बाई जैसी तीव्र वैराग्य भावना वाली कब रुकने वाली थी। सबको अनेक प्रकार से समझा कर आखिर सबसे आज्ञा प्राप्त करके उन्होंने संवत् १६४६ की मार्गशीर्ष शुक्ला पञ्चमी बुधवार के दिन प्रातः। काल ८ बजे गृहस्थ धर्म को छोड़कर गुरुणी जी से दीक्षा ले ली। उसी दिन से भगवान् महावीर स्वामी के बतलाये हुये सत्यमार्ग को ग्रहण कर वे आत्मकल्याण का साधन करने लगीं। दीक्षा लेने पर आपका नाम सुवर्णश्री जी हो गया। तब से आप इसी शुभ नाम से प्रसिद्ध हुईं।

दीक्षोपरान्त वे सदा-सर्वदा ज्ञान ध्यान में ही अपना समय बिताने लगीं। ज्ञान पढ़ने के साथ ही साथ आपकी ध्यान शक्ति भी क्रमशः इतनी बढ़ गई कि उस समय दिन रात के चौबीस घण्टों में से १३-१४ घण्टे आपके ध्यानावस्था में ही व्यतीत होते थे। आपमें आत्मिक ध्यान करने की अपूर्व शक्ति विद्यमान थी। जब से आपने दीक्षा ली तब से अनेक प्रकार की तपस्याएं करने लगीं। आप अट्ठाई, नवपद जी की ओली और विशस्थानक

तप करने के साथ २ कठिन-सिद्धि-तप का भी आराधन कर चुकी थीं। उपवासों की तो कोई गिनती ही नहीं है। आप एक ही समय में लगातार नौ, दस, ग्यारह, सत्रह, उन्नीस और इक्कीस उपवास तक कर चुकी थीं।

श्री १००८ श्री पुण्य श्री जी महाराज साहब की शिष्या-मंडली में, जिसमें प्रायः सवा सौ साध्वियाँ विद्यमान थीं, उस समय आप ही सब में प्रधान थीं। आपका प्रथम चौमासा बीकानेर में हुआ। वहाँ साधु-विधि प्रकरण, जीव-विचार, नव-तत्व और कर्म-ग्रंथादि सब कंठस्थ किये। आप पढ़ते थोड़ा, मगर मनन इतना करते थे जैसे छाछ से मक्खन निकालना। आपकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। आपकी स्मरण शक्ति अद्भुत थी। प्रथम चौमासे में ही आपने १७ उपवास की कठिन तपस्या की थी। दूसरा चौमासा फलौदी मारवाड़ में हुआ। वहां आपको श्रीमान् ऋद्धिसागर जी महाराज साहब का संयोग हुआ। उनके पास व्याकरण का अभ्यास, सूत्र वांचनादि आवश्यक ज्ञान हासिल किया। भगवती सूत्र भी सुना। २१ उपवास की बड़ी तपस्या की।

तीसरा चौमासा नागौर में हुआ। दिन प्रति दिन आपका अभ्यास बढ़ता गया। शासन सेवा करने की योग्यता तथा गुरु-भक्ति में आप सर्व प्रधान थीं। इस साल भी आपने १६ उपवास की बड़ी तपस्या की थी। चौथा चौमासा नया शहर (ब्यावर) में किया। पांचवाँ चौमासा फलोदी मारवाड़ में, छठा चौमासा शत्रुं-

जय तीर्थ पर हुआ। वहाँ आपने सिद्धितप किया। १५ उपवास, १० उपवास तथा ६ उपवास किये। तीन अट्ठाई की। छोटी तपस्या की तो गिनती करना ही कठिन है। सम्पूर्ण पर्व तप-जप से आराधन किये। किसी पर्व को नहीं छोड़ा।

६ चौमासे तो आपने पुण्य श्री जी म० सा० के संग किये और दसवाँ चौमासा उनके हुक्म से बीकानेर किया।

आपका बाइसवाँ चौमासा आपकी जन्मभूमि (अहमदनगर) में हुआ। खरतर गच्छीय साध्वीजी म० का शहर में यह सर्वप्रथम आगमन था। वहां से आप पूना शहर पधारे, पूना से २४ वां चौमासा बम्बई शहर में किया। आगे सब एक से बढ़कर एक उन्नतिशाली चौमासे हुए। आपके तमाम चातुर्मासों में से बम्बई का चातुर्मास बड़ा प्रभावशाली हुआ।

जब आपकी दीक्षा हुई थी तब केवल १५ या २० साध्वीजी ही थीं। फिर बाद मे आपके उपदेश एवं त्याग, वैराग्य के प्रभाव से करीबन १००-१५० की संख्या में सुयोग्य साध्वी समुदाय बढ़ा। हर एक चौमासे में आपके हाथ से व उपदेश से दो-चार दीक्षाएं होती थीं। सबको आपने विद्या पढ़ाकर योग्य बनाया।

संवत १६७६ फाल्गुन सुदी १० को प्रातः आपकी गुरुवर्या पुण्य श्री जी म. सा. का जयपुर में स्वर्गवास हुआ। आप भी उस समय वहीं थीं। आपने ही अन्तिम समय में गुरु सेवा का लाभ लिया। गुरुवर्या के स्वर्गवास के बाद आप पर ही समुदाय संचा-

लन का भार आया, जिसे आप प्रवर्तिनी रूप में निभा कर सबके स्नेह एवं श्रद्धा के पात्र बनीं।

जयपुर चातुर्मास के बाद स्वर्गीय गुरुवर्या के आदेशानुसार आपने दिल्ली और उत्तरप्रदेश की ओर विचरण किया। इस प्रदेश में आपश्री के उपदेश से स्थान २ पर अनेक महत्वपूर्ण कार्य हुए हैं, जिनका विस्तृत वर्णन यदि किया जाये तो एक स्वतंत्र पुस्तिका ही बन जाये। अतः संक्षेप में ही लिखना पर्याप्त होगा।

(१) हापुड़ में सेठ श्री मोतीलाल जी बुरड़ द्वारा नव मन्दिर निर्माण हुआ।

(२) आगरा में दानवीर सेठ लक्ष्मीचन्द जी वैद्य द्वारा बेल-नगंज में भव्य मन्दिर जी तथा विशाल धर्मशाला बनाई गई।

(३) आगरा के निकट शौरीपुर तीर्थ का उद्धार कार्य करा कर वहां की सुन्दर व्यवस्था कराई। गुरुवर्या का यह कार्य चिरस्मरणीय रहेगा।

(४) दिल्ली में महिला समाज की उन्नति हेतु "साप्ताहिक स्त्री सभा" का आरम्भ किया।

(५) जयपुर में सं. १९८४ का. शु. ५ (ज्ञान पंचमी) को धूपियों की धर्मशाला में "श्राविकाश्रम" की स्थापना की जो अब "वीर बालिका विद्यालय" के रूप में सुसंचालित है। ५०० बालिकाएं पढ़ रही हैं।

(६) वृद्धावस्था एवं अशक्त होते हुए भी आप आगरे वाले सेठ, लूणकरण जी सेठिया तथा वीरचन्दजी नाहटा की माताजी के

अति आग्रह पर बीकानेर पधारीं। और वहां बीस स्थानकजी का उद्यापन महोत्सव बड़े समारोह पूर्वक कराया।

(७) बीकानेर उदरामसर देशनोक आदि क्षेत्रों में श्वेताम्बर, मुनिराजों का पदार्पण बहुत कम होता था। आपने इस ओर खूब धर्मोद्योत किया।

(८) अन्तिम अवस्था जान आपने बीकानेर में वर्तमान आचार्य वीर पुत्र श्री आनन्द सागर जी सूरीश्वर जी म० की सम्मति से श्री ज्ञानश्रीजी म० को प्रवर्तिनी पद विभूषित कर संघ संचालन सौंपा।

इस प्रकार आपश्री द्वारा जीवन के अन्तिम क्षण तक लोकोपकारार्थ तथा धर्मोद्योत हेतु कई महत्वपूर्ण कार्य होते रहे थे।

ऐसी महान उपकारी महान् पूजनीया साध्वी शिरोमणि गुरुवर्या श्री सुवर्ण श्री जी म. सा. की वह दिव्य ज्योति सं० १९९१ माघ कृष्णा ९ को सांयकाल पांच बजे इस लोक से सदा के लिये अन्तर्धान हो गई।

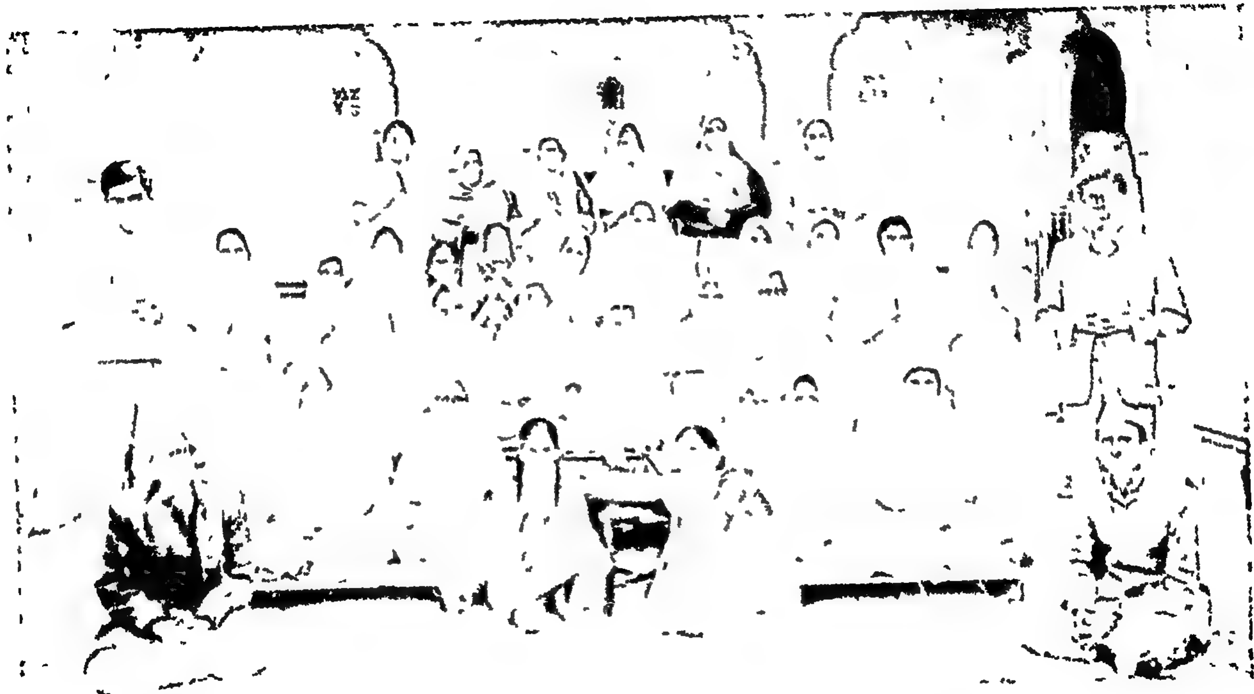
सर्वत्र शोक की काली घटाएं छा गईं। जयपुर, दिल्ली आदि बड़ी-बड़ी दूर से हजारों मानव मेदिनी एकत्रित थीं। दूसरे दिन प्रातः काल बीकानेर के गोगा दरवाजे के बाहर रेल दादावाड़ी में बड़े समारोह पूर्वक दाह संस्कार किया गया।

चिरस्मृति हेतु इसी स्थान पर रेल दादावाड़ी में "श्री सुवर्ण समाधि मन्दिर" स्थापित किया गया।

आज भी उस महान् विभूति की स्मृति परम आह्लादित बनाती हुई सबको श्रद्धावनत बनाती है।

आपश्री की पट्टधर सुयोग्या शांत स्वभावी श्री ज्ञानश्री म. सा. संघ संचालन कर रही हैं और अनेक शिष्य प्रशिष्य परिवार जैन शासन की शोभा बढ़ा रहा है। मेरे ऊपर भी आपश्री का अनन्त उपकार है, जिससे मैं जन्म जन्मान्तर में भी अनृण नहीं हो सकती। सश्रद्धा भव-२ में इनके ही शरण में स्थान इच्छती हुई उन्हीं भव्यात्मा को अनन्त बार वंदना करती हूं।





लेखिका की गुरुवर्या वर्तमान प्रवर्तिनी महोदया श्रीमती ज्ञानश्रीजी म० सा० व्याख्यान भारती जैन

प्रवर्तिनीजी श्री ज्ञानश्रीजी महाराज साहबा

श्री जैन खरतरगच्छ नभोमणि श्रीमद् सुखसागर जी महाराज की समुदाय की प्रसिद्ध साध्वी श्रेष्ठा प्रवर्तिनी जी श्रीमती पुण्यश्रीजी महाराज की साध्वी समुदाय की वर्तमान प्रवर्तिनी जी श्रीमती ज्ञानश्रीजी महोदया का जन्म फलोदी (मारवाड़) में सं० १६४२ की कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी को हुआ। गृहस्थावस्था में आपका शुभ नाम गीता कुमारी था।

आपका विवाह भी तत्कालीन रिवाज के अनुसार ६ वर्ष की बाल्यवय में ही फलोदी निवासी श्रीयुत् विसनचन्द जी वैद के सुपुत्र श्रीयुत् भीखन चन्द जी के साथ कर दिया गया। दैव की लीला, एक वर्ष में ही आप विधवा हो गईं। आबाल ब्रह्मचारिणी साध्वीरत्न श्रीमती रत्न श्रीजी म० सा० की वैराग्य रसमय देशना से आपकी हृदय भूमि में वैराग्य का बीजारोपण हो गया। उक्त श्रीमती जी अपनी गुरुवर्या श्रीमती पुण्य श्रीजी म० सा० के साथ फलोधी में पधारी हुई थीं।

वैरागिनी गीताबाई की दीक्षा अन्य सात वैरागनियों के साथ फलोदी में ही, गणाधीश श्रीमद् भगवानसागर जी म० सा०,

तपस्वीवर श्रीमान् छगनसागरजी म. सा. त्रैलोक्य सागरजी म० आदि की अध्यक्षता में वि. सं. १९५५ की पौष शुक्ला सप्तमी को शुभ मुहूर्त में समारोह पूर्वक हो गई। आप श्रीमती पुण्यश्रीजी म० की शिष्या घोषित की गईं, और 'ज्ञान श्रीजी' नाम स्थापन किया गया।

आपने अल्प समय में ही व्याकरण, न्याय, काव्य, कोष, अलंकार छंद, एवं जीवविचार, नवतत्व संग्रहणी, कर्मग्रन्थ एवं जैनागमों में प्रवीणता प्राप्त कर ली।

संयम पालन में एकनिष्ठता, गुरुजनों के प्रति अनन्य भक्ति एवं समानवयस्काओं के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार तथा लघुजनों पर वात्सल्य भाव आदि गुणों के कारण आपके साथ सभी का व्यवहार बड़ा प्रेमपूर्ण था। २१ वर्ष की अवस्था में तो अग्रगण्या बना कर आपको अलग चातुर्मास करने भेज दिया गया था।

आपने ४० वर्ष तक विभिन्न प्रान्तों (मारवाड़, मेवाड़, मालवा, गुजरात, काठियावाड़, उत्तर प्रदेश आदि) में विहार करके जैन जनता को जागृत करते हुए शत्रुंजय, गिरनार, आबू, तारंगा, खम्भात, धुलेवा, मांडवगढ़, मक्सी, हस्तिनापुर, आदि तीर्थों की यात्राएं की हैं। कई स्थानों पर ज्ञानप्रचारक संस्थाओं की स्थापना करवाई है। संघ निकलवाए हैं। वि० सं. १९९४ की साल से शारीरिक अस्वस्थता और अशक्तता के कारण आप जयपुर में ही विराज रही हैं। पूज्या प्रवर्तिनी जी स्वर्गीय श्रीमती सुवर्ण श्री जी

म० सा० ने सर्व सम्मति से १६८६ में श्रीमती पुण्यश्रीजी म० के साध्वी समुदाय का भार आपको दे दिया था। उसी वर्ष वसन्त पंचमी को पूज्य प्रवर वीर पुत्र आनन्द सागरजी म० सा० ने मेड़ता शहर में आपश्री को प्रवर्तिनी पद प्रदान किया था। तब से आप ही समुदाय की अधिष्ठात्री हैं, और शताधिक साध्वियों का संचालन कुशलता पूर्वक कर रही हैं। आपका विशेष समय मौन व जाप में ही व्यतीत होता है।

परमादरणीया अनन्त उपकारिणी गुरुवर्या महोदया की शान्ति पूर्ण मुख मुद्रा के दर्शन जो भी एक वार कर लेता है, वह प्रभावित हुए विना नहीं रहता। आप बहुत कम बोलती हैं, खास आवश्यक कार्य हो तभी संक्षेप में उत्तर देती हैं। जीवन भर सत्य आचरण करने से आपकी वाणी सिद्धि का निवास हो गया है। कई वार ऐसा अनुभव हो चुका है कि जिस कार्य के लिए आप अस्वीकार कर दें वह कभी पूर्ण नहीं होता।

आपके जीवन में उत्कृष्ट त्याग, अप्रतिम संयम और तलस्पर्शी ज्ञान की त्रिवेणी का अद्भुत संगम है। द्रव्यानुयोग की सूक्ष्म जानकारी जैसी आपको है वैसी विरलों को ही होती है। कई शास्त्रीय बातें आपको कण्ठस्थ हैं।

आपकी जीवनचर्या अनुकरणीय है। आपके द्वारा ११ शिष्याएं प्रव्रजित हुईं। जिन में से शीतल श्रीजी म., जीवनश्रीजी म., सज्जन श्रीजी, जिनेन्द्र श्रीजी तथा शशिप्रभा श्रीजी विद्यमान हैं।

आप श्री के जयपुर में विराजने से धर्म कार्य-त्याग, तपस्या, पूजा, प्रतिष्ठाएं, उपधान, व्रतग्रहण, उद्यापन आदि होते ही रहते हैं।

आप बड़ी शान्त स्वभावा हैं। आपश्री की सतत प्रेरणा ने चरित्र रचना में मुझे प्रेरित किया है।

आपश्रीमती जी चिरकाल जयवन्त रह कर समुदाय सञ्चालन करती रहें यही शासन देव से हार्दिक प्रार्थना है।



ं
।
।
॥

नेम
ंर
रम
ार
। मं
ावन
पूर

मे

नेमि
ंगा

।
मीच
नी
मीर
े ।
पुत्र
। है
ाहि

वेवि
गुरु